॥ ॐ ॥

स्वर्गीय प्रॉफेसर डॉ. तपस्वी शम्भुचन्द्र नान्दी-स्मृतिव्याख्यानमाला

(पुष्पम् – 3)

आयोजकः
संस्कृत एवं भारतीयविद्या विभाग,
हेमचन्द्राचार्य उत्तर गुजरात युनिवर्सिटी,
पाटण



॥ कालिदास-प्रणीतम् अभिज्ञानशकुन्तला नाटकम् ॥

(पुनर्गठित एवं प्रथम अनुमित पाठ के सम्पादक)

एतद्विषयक

स्मृति-व्याख्यान के प्रस्तोता

वसन्तकुमार म. भट्ट
शास्त्रचूडामणि, संस्कृत विभाग,
हेमचन्द्राचार्य उत्तर गुजरात युनिवर्सिटी, पाटण

16 जून, 2018

Abhijnanas'akuntalamNatakam
(Reconstructed& Restored Text Edition)
Ed. Prof. Vasantkumar M. Bhatt
"Shastra-Chudamani", (2017-19)
Department of Sanskrit,
Hemachandracharya North Gujarat University,
Patan(Gujarat)
v.k.bhatt53@gmail.com

Publisher :
Department of Sanskrit &BharatiyVidya,
Hemachandracharya North Gujarat University,
Patan

First Edition :-- June, 2018

Printer :--
Vinod Printery
"Maha Gujarat" Near Three Gate, Patan.
Phone : 02766-230111/12, Mo. 9898576011

प्रकाशकीय निवेदन

श्री हेमचन्द्राचार्य उत्तर गुजरात युनिवर्सिटी, पाटण (स्थापना वर्ष – 1986) का यह परमसौभाग्य है कि यहाँ प्रति वर्ष कलिकालसर्वज्ञ आचार्य हेमचन्द्र सूरि की पुण्य-स्मृति में "हेमचन्द्राचार्य संस्कृत समारोह" का आयोजन होता है । इसी परम्परा में, दिनांक 16-17-18, जुन 2018 के दिनों में इसका सोत्साह आयोजन किया जा रहा है । यह परम्परा विगत 17 वर्षों से निरन्तर चलती आ रही है, और समग्र देश के विभिन्न प्रदेशों से संस्कृत-प्राकृत विद्या से जुडे नामाङ्किकत विद्वानों ने यहाँ आ कर अपनी ज्ञान-साधना से हमारे छात्रों को लाभान्वित किये हैं ।।

हमारी इस युनिवर्सिटी में"संस्कृत एवं भारतीय विद्या विभाग" का सन 1992 में बीजारोपण करनेवाले आद्य अध्यक्षवर्य प्रातः स्मरणीय प्रॉफेसर डॉ. श्री तपस्वी नान्दी महोदय की पावनकारी स्मृति में एक व्याख्यान-माला भी शूरु की गई है । जिसमें प्रतिष्ठित संस्कृत विद्वानों को निमन्त्रण दिया जाता है, और वे अपने तपःपूत अधीत-पुष्प को इस व्याख्यान-माला में गुम्फित करते हैं । वर्ष 2016 में डॉ. वसन्तकुमार म. भट्ट (गुजरात युनिवर्सिटी, अहमदावाद) ने "अभिज्ञानशकुन्तला नाटक की पाँच रंगावृत्तियाँ" शीर्षक से जो व्याख्यान दिया था, वह इस स्मृति-माला का प्रथम-पुष्प था । इसी परम्परा में, वर्ष 2017 में डॉ. अजित ठाकोर (सरदार पटेल युनिवर्सिटी, वल्लभ-विद्यानगर, गुजरात) ने "करुणरस : विभावना एवं काव्यप्रयोजना" विषयक द्वितीय अधीत-पुष्प समर्पित किया था ।।

डॉ. तपस्वी नान्दी स्मृति-व्याख्यान-माला के प्रथम पुष्प के रूप में डॉ. वसन्तकुमार भट्ट ने अभिज्ञानशाकुन्तल नाटक की विविध वाचनाओं में संचरित हुआ पाठ केवल "रंगावृत्ति का पाठ" है ऐसा विचार प्रस्तुत किया था । तत्पश्चात् उसी विचार-बिन्दु को लेकर उन्होंने कालिदास के इस सर्वश्रेष्ठ नाटक की काश्मीरी-मैथिली-बंगाली-दाक्षिणात्य-देवनागरी जैसी पाँचों वाचनाओं का पङ्क्तिशः तुलनात्मक अध्ययन करके, उसके निष्कर्ष के रूप में, जो पुनर्ग्रथित एवं अनमानित पाठ हो सकता है वह यहाँ प्रस्तुत किया है । दो वर्षों की अविरत संशोधन-प्रक्रिया का यह परिपाक है । उसको प्रकाशित करने का सौभाग्य हेमचन्द्राचार्य उत्तर गुजरात युनिवर्सिटी, पाटण को प्राप्त हो रहा है- उसका हमें गौरव एवं हर्ष है ।।

डॉ. वसन्तकुमार भट्ट आज "डॉ. तपस्वी स्मृति-व्याख्यान-माला" में अभिज्ञानशकुन्तला नाटक के पाठोद्धार विषयक संशोधन को तृतीय पुष्प के रूप में गुम्फित करेंगे । इस व्याख्यान के माध्यम से "प्राचीन काल के संस्कृत ग्रन्थों की पाठसमीक्षा कैसे की जाती है और कैसे अधिकृत एवं अधिक श्रद्धेय

पाठ निर्धारित किया जाता है ?" उसका मार्गदर्शन नवोदित शोधार्थियों को प्राप्त होगा – ऐसी हम आशा करते हैं ।।

हमारा संस्कृत एवं भारतीय विद्या विभाग स्व. डॉ. तपस्वी नान्दी जी के परिवार के सद्गृहस्थ सदस्यों का आभारी है कि उन्होंने हेमचन्द्राचार्य उत्तर गुजरात युनिवर्सिटी, पाटण में एक लक्ष रूप्यक की धनराशि स्थायी फण्ड के रूप में रखी है, जिसमें से यह स्मृति-व्याख्यान-माला प्रवर्तित की गई है । मैं संस्कृत एवं भारतीय विभाग की ओर से श्रीमती हर्षा तपस्वी नान्दी जी एवं उनकी सुपुत्री सौभाग्यवती डॉ. चिन्मयी राली का हृदय से आभार प्रकट करता हूँ । (इस राशि का हे. उ. गु. युनि. की कार्यवाहक समिति ने दिनांक 07-03-2015 की बैठक में, ठराव क्रमांक 74 से स्वीकार किया है ।)

हमें आशा है कि कुलपतिश्री प्रॉफेसर श्री बी. ए. प्रजापति जी के मार्गदर्शन में एवं उनकी आशिषों से हम हेमचन्द्राचार्य संस्कृत समारोह का आयोजन करते रहेंगे, और देश-विदेश के प्रतिष्ठित संस्कृत विद्वानों की सारस्वत-साधना का लाभ इस पाटण की भूमि को मिलता रहेगा ।।

प्रॉफेसर डॉ. देवसिंह राठवा
अध्यक्ष, संस्कृत एवं भारतीय विद्या विभाग, पाटण, (गुजरात)

अनुक्रमणिका

।। अभिज्ञानशकुन्तला नाटक के पाठ का पुनर्गठन ।।

(प्रथम अनुमित पाठ[1] के सम्पादन का पहला प्रयास)

वसन्तकुमार म. भट्ट

[1]

भूमिकाः- महाकवि कालिदास का "अभिज्ञानशाकुन्तल" नामक नाटक समग्र संस्कृत साहित्य की सर्वोत्तम कृति है, और विश्व नाट्यसाहित्य का अनुपेक्ष्य कुतूहल है । यह अभिप्राय सब को एकमति से मान्य होगा । किन्तु उसी नाटक की कोई भी उक्ति या श्लोक को लेकर, उसमें कितने पाठभेद हैं ? ऐसा विचार आरम्भ करेंगे तो निश्चित रूप से हमारे सामने एकाधिक पाठभेद आ जायेंगे । संस्कृत नाट्य-साहित्य का यह एक ऐसा नाटक है कि जिसके पाठ्यांश में शीर्षक से लेकर भरतवाक्य पर्यन्त प्रायः सर्वत्र अनेक पाठभेद मिलते हैं । इस नाटक के पाठभेदों में न केवल शब्द-परिवर्तन ही दिखते हैं, उनमें तो उक्तियों एवं श्लोकों के प्रक्षेप एवं संक्षेप का खिलवाड़ भी दिखता है ! एवञ्च रंगसज्जा, वेशभूषा तथा संवादो (उक्तियों / dialogue) को बोलनेवाले पात्रों में भी बदलाव प्राप्त होता है । जिनको देख कर सहसा दो-तीन प्रश्न उपस्थित होते हैं :--

(क) प्रथम प्रश्न है कि इस नाटक का मूल पाठ क्या रहा होगा, जो कवि ने अपने हाथ से लिखा होगा ?

(ख) दूसरा प्रश्न होता है कि सहस्राधिक पाण्डुलिपियों में इस नाटक का जो पाठ संचरित हुआ है, और विद्वानों ने जिनकी पहचान पाँच वाचनाओं / शाखाओं में प्रवाहित पाठ के रूप में की है, वह पाठ किस स्वरूप का दिखता है ? । इस प्रश्न के सन्दर्भ में त्रिविध सम्भावनाएं हो सकती हैं :--

1. समीक्षात्मक दृष्टि से परस्पर में पृथक् पृथक् हो ऐसी पञ्चविध स्वतन्त्र वाचनाओं के ये पाठ है ? । या,

2. अलग अलग रंगकर्मियों की, परस्पर में पृथक् हो ऐसी, पाँच स्वतन्त्र रंगावृत्तियाँ प्राप्त हो रही है ? । या,

3. जो कवि-प्रणीत हो ऐसे एक ही पाठ में अनेक प्रदेशों के रंगकर्मियों द्वारा किये सुधार / विकार का सांकर्य हुआ दिखता है ? ।।

[1] इस नाटक का डॉ. एस. के. बेलवालकर द्वारा पुरस्कृत "नातिदीर्घ एवं नातिह्रस्व" पाठ, जो साहित्य अकादमी, दिल्ली, 1965 से प्रकाशित किया गया है, उसको पुनर्गठित पाठ नहीं कहा जा सकता । तत्पश्चात् डॉ. दिलीप-कुमार काञ्जीलाल (1980) ने भी यद्यपि "Reconstructed Text" ऐसे शब्द का प्रयोग किया है, तथापि वह भी पुनर्गठित पाठ नहीं कहा जा सकता । उसमें बंगाली वाचना के पाठ को ही मौलिक पाठ मान लेने की गुजारीश की गई है । मैंने यहाँ जो अनुमानित पाठ पुरस्कृत किया है उसमें पहले जिन पाँचों रंगावृत्तियों का पङ्क्तिशः तुलनात्मक अभ्यास किया है, उन सब पाठों का विनियोग करते हुए यह पुनर्गठित किया गया पाठ है, अत उसको मैंने "प्रथम पुनर्गठित पाठ" कहा है । तथा यह भी, मेरा प्रथम प्रयास है । भविष्यति काले दूसरा, तीसरा अनुमान भी पेश करने की आवश्यकता एवं उम्मीद है ।

(ग) तथा तीसरा प्रश्न होता है कि स्वयं कालिदास के द्वारा लिखे गये मूल पाठ में इन परिवर्तन तथा परिवर्धन (पाठभेद, संक्षेप एवं प्रक्षेप) आदि किस क्रम में पैदा हुए होंगे ? अर्थात् पाठविचलन की आनुक्रमिकता में कौन सा पाठ प्राचीनतम, प्राचीनतर या उत्तरवर्ती काल का सिद्ध होता है ? ।।

इन में से पहले प्रश्न का उत्तर ही हमारी उत्कृष्ट एवं चरम जिज्ञासा का विषय है । किन्तु लगता है कि कवि-प्रणीत मूल पाठ को हम कथमपि पुनः प्राप्त नहीं कर सकेंगे । बहुविध एवं सैंकड़ों प्रयासों के बाद जो भी हासिल किया जाएगा वह केवल पुनर्गठित आनुमानिक पाठ ही होगा और वह सम्भवतः विवादास्पद भी होगा । अतः, उपर्युक्त तीन प्रश्नों में से कम से कम दूसरे एवं तीसरे प्रश्न का उत्तर मिल जाने पर भी हम अपने आप को बड़-भागी मानेंगे । प्रस्तुत प्रयास इस दिशा में अग्रेसर होना चाहता है ।

***** ***** ***** ***** ***** ***** ***** *****

उपर्युक्त दूसरे एवं तीसरे प्रश्न के उत्तर प्राप्त करने के लिए जिन पाँचों रंगावृत्तियों के पाठों का तुलनात्मक अध्ययन अन्यत्र किया गया है- उससे कुछ प्रधान बिन्दु हमारे सामने आ रहे हैं । जैसे कि, (क) कवि के मूलपाठ की प्रतिलिपिभूत एक भी पाण्डुलिपि शायद आज हमारे सामने मौजूद नहीं है । एवमेव, (ख) पाँच तथाकथित वाचनाओं के पाठों में से किसी एक में ही कविप्रणीत पाठ की सीधी धारा संचरित हो कर आयी हो- ऐसा भी नहीं है । बल्कि यह निश्चित है कि इन पाँचों पाठों में जो पाठ संचरित हुआ है वह विभिन्न प्रदेश एवं विभिन्न कालखण्ड के अनेक अज्ञात रंगकर्मियों द्वारा बनाये रंगावृत्ति के ही ये पाठ हैं । (ग) इन रंगावृत्तियों के पाठो में, परस्पर से भिन्न हो ऐसे, ये अलग अलग रंगावृत्ति के पाँच स्वतन्त्र पाठ भी नहीं हैं । बल्कि ऐसे प्रकट प्रमाण मिलते हैं कि प्राचीनतम काश्मीरी रंगावृत्ति के पाठ को ही आधार बना कर, उसमें ही मिथिलादि प्रदेश के रंगकर्मियों ने संशोधन, परिवर्तन, परिवर्धन, संक्षेपादि करके अपनी अपनी रंगावृत्तियों के ये पाठ बनाये हैं । अर्थात् मैथिली, बंगाली, दाक्षिणात्य तथा देवनागरी रंगावृत्तियाँ काश्मीरी रंगावृत्ति की ही वंशज रंगावृत्तियाँ कही जा सकती हैं । अतः कवि-प्रणीत पाठ में ही अनेक अज्ञात रंगकर्मियों ने किये सुधार / विकार का सांकर्य हुआ दिखता है । (घ) इन पाँच रंगावृत्तियों के आविष्कार का कालानुक्रम जानने के लिए यद्यपि कोई दस्तावेजीय / पुरातात्त्विक प्रमाण तो उपलब्ध नहीं होते हैं, तथापि इन रंगावृत्तियों के पाठों में ही सर्वत्र बिखरे हुए अन्तःसाक्ष्यों से, निश्चयात्मक रूप से, सिद्ध किया जा सकता है कि – वर्तमान में उपलब्ध हो रही इन पाँचों में से सब से प्रथम क्रमांक पर 1. काश्मीरी रंगावृत्ति खड़ी है, द्वितीय क्रमांक पर, (विक्रमादित्य बिरुदधारी साहसाङ्क चन्द्रगुप्त-2 के समय में तैयार की गई) 2. मैथिली रंगावृत्ति आती है ।, तत्पश्चात् तृतीय क्रमांक पर 3. बंगाली रंगावृत्ति आकारित हुई है ।, तथा चतुर्थ एवं पञ्चम क्रमांक पर 4. दाक्षिणात्य एवं 5. देवनागरी रंगावृत्तियों का स्थान आता हैं ।।

प्रस्तुत तुलनात्मक अध्ययन से, उपर्युक्त बिन्दुओं के उपरान्त, सविशेष रूप से यह भी ज्ञात हो रहा है कि इन पाँच रंगावृत्तियों में से जो प्रथम पायदान पर खडी प्राचीनतम काश्मीरी रंगावृत्ति का पाठ है, उसीमें ही अनेक स्थानों पर आन्तरिक सम्भावनायुक्त पाठ सुरक्षित रहा है । एवं काश्मीरी रंगावृत्ति के अनेक पाठान्तर अधिक श्रद्धेय एवं मौलिकता के नजदीक है ऐसा कृतिनिष्ठ अन्तःसाक्ष्यों से एवं प्राचीनतर अलंकारशास्त्रीय उद्धरणों से प्रमाणित हो रहा हैं । तथा काश्मीरी पाठ के जिन जिन स्थानों में संक्षेप एवं परिवर्तन हुए हैं, उन स्थानों का पाठोद्धार मैथिली-आदि रंगावृत्तियों के सहारे भी हो सकता है । क्योंकि इन

पाँचों रंगावृत्तियों के तुलनात्मक अध्ययन से यह जाना गया है कि मूलगामी हो सकता हो ऐसे पाठ्यांश आंशिकतया कहीं न कहीं सुरक्षित पड़ा है ।। इतनी जानकारी हस्तगत होने के बाद उसके सहारे इस नाटक के अनुमानित मूलगामी अथवा सर्वाधिक श्रद्धेय पाठ को पुनर्गठित करके सम्पादित किया जा रहा है ।।

[2]

प्रस्तुत प्रयास में, व्यापक तुलनात्मक अध्ययन के बाद, कालिदासीय अभिज्ञानशकुन्तला नाटक का जो पाठ सम्पादित किया गया है, **उसमें क्या नहीं है ? वह प्रथम सोपान** पर कहना आवश्यक हैः—

1. पाँचों रंगावृत्तियों के पाठों में जिन जिन पाठ्यांशों की सर्वत्र प्राप्ति हो रही है- उन निर्विवाद एवं सर्व साधारण पाठ्यांशों का संग्रह करके, यह सामान्य ∕सर्वमान्य पाठ का सम्पादन नहीं है ।
2. पाँचों रंगावृत्तियों में से बहुसंख्य रंगावृत्तियों में उपलब्ध हो रहा पाठ भी पुनर्गठित पाठ के रूप में यहाँ नहीं रखा गया है । अर्थात् संदोहन पद्धति से किया गया यह पाठ-सम्पादन नहीं है ।
3. जिन पाठ्यांशों में सविशेष नाट्यक्षमता है, एवं जिससे ध्वनिविशेष की अभिव्यक्ति हो रही हो – उन पाठ्यांशों का चयन करके भी यह पाठ सम्पादित नहीं किया गया है । अतः इसको मधुकर-वृत्ति से किया गया पाठ-सम्पादन भी नहीं कहा जा सकता है ।
4. संदिग्ध पाठ्यांश (पाठान्तरों) में कहीं पर "अनुलेखनीय सम्भावना" एवं "पाठ-सुधारणा" के नाम पर, कल्पनाजनित नवीन शब्दावली की रचना करने का भी प्रयास / साहस नहीं किया है[2] ।
5. काश्मीरी रंगावृत्ति का पाठ प्राचीनतम होने के कारण, अथवा उसमें बहुशः आन्तरिक सम्भावना वाला पाठ मिलता है, इसी लिए उसीको ही साद्यन्त (यथावत् रूप में) नहीं स्वीकारा गया है ।।

[3]

अनुमानतः जो कवि-प्रणीत हो ऐसे **मूलगामी पाठ (** Ur-Text **) की पुनःस्थापना एवं पुनर्गठन** करने के लिए पाठालोचना[3] के चतुर्थ चरण पर (= उच्चतर पाठसमीक्षा के लिए) निम्नोक्त दृष्टि-बिन्दु अनिवार्यतया ध्यानास्पद माने गये हैं :-- (क) अभिज्ञानशकुन्तला नाटक के प्रस्तुत किये जा रहे इस पाठ्यांश में कहीं पर भी कृतिनिष्ठ आन्तर विरोध (any contradiction) नहीं होना चाहिए, (ख) पुनरुक्ति (repetition) वाला पाठ्यांश नहीं होना चाहिए, तथा (ग) विषयान्तर (digression) के रूप में सिद्ध होनेवाला पाठ्यांश भी नहीं होना चाहिए ।। (घ) ई. स. प्रथम शताब्दी को कालिदास का प्रादुर्भाव-काल मान कर,

---

[2] उदाहरणतया डॉ. रेवाप्रसाद द्विवेदी जी ने नान्दी-पद्य में "प्रपन्नाँस्तनुभिः" ऐसा पाठभेद कल्पित किया है ।

[3] पश्चिमी विद्वानों ने प्राचीन एवं मध्यकालिक ग्रन्थों की पाठालोचना करने के लिए चार सोपानवाली प्रक्रिया बताई है : (1) अनुसन्धान (Heuristics)- जिसमें पाण्डुलिपियों एवं सहायक सामग्री का एकत्रीकरण, तथा उनमें उपलब्ध होनेवाली सभी अशुद्धियों एवं पाठान्तरों का संतुलन-पत्रिकाओं में निरूपण करना है ।, (2) संशोधन (Recension)- जिसमें प्राप्त की गई पाण्डुलिपियों का आनुवंशिक सम्बन्ध स्पष्ट करने के लिए उनका वंशवृक्ष सोचा जाता है, जिससे वाचना-निर्धारण एवं लुप्त मूलादर्श-प्रति के पाठ तक पहुँचने का मार्ग / दिशा निश्चित हो सकती है । (3) पाठ-सुधारणा (Emendation)- पाण्डुलिपियों में प्रविष्ट हुए अशुद्ध / व्याकरण-विरुद्ध / असम्बद्ध पाठान्तरों में से जब एक भी पाठान्तर पूर्वापर सन्दर्भ में सुसंगत प्रतीत नहीं होता है, तब अगतिकतया आंशिक पाठ-सुधारणा की जाती है । यहाँ तक की प्रविधि को प्राथमिक या निम्न स्तरीय (Lower Criticism) पाठालोचना कही जाती है ।।

उनसे पुरोगामी काल में हुए भरत मुनि के नाट्यशास्त्र-सम्मत अर्थोपक्षेपक के रूप में (नाटक के लिए केवल) "प्रवेशक" एवं "आत्मगतम्" जैसे पारिभाषिक शब्दों का सर्वत्र एक समान प्रयोग होना चाहिए । उसी तरह से, पिङ्गल-निर्दिष्ट छन्दो-बंधारण का परिपालन होना चाहिए । (उत्तरवर्ती काल के छन्दःशास्त्रीय ग्रन्थ एवं दशरूपकादि का प्रभाव अमान्य करना चाहिए ।) एवञ्च, (ङ) नाट्यशास्त्रानुसारी शौरसेनी एवं मागधी के नियमों के अनुकूल प्राकृत उक्तियों का स्वरूप होना चाहिए । अथवा यथासम्भव प्राकृत-व्याकरणकारों द्वारा दिये नियमों (एवं इस नाटक के ही उद्धृत उदाहरणों) के अनुसार होना चाहिए[4] । (एवञ्च, अनिर्णयात्मक स्थिति में प्राचीनतम काश्मीरी प्राकृतपाठ सुरक्षित रहना चाहिए) । (च) तथा प्राचीन से प्राचीनतर अलंकारशास्त्रीय ग्रन्थों के उद्धरणों से यदि स्वीकृत / अनुमानित पाठ को समर्थन मिलता है, तो उसको भी पादटिप्पणी में यथासम्भव निर्दिष्ट करना है । (छ) डॉ. एस. के. बेलवालकर जी ने 1923 में अभिज्ञानशाकुन्तल की उच्चतर समीक्षा करते समय कहा था कि इस नाटक में शकुन्तला एक निसर्ग-कन्या के रूप में प्रस्तुत की गई है । इस केन्द्रवर्ती बिन्दु को दृष्टि-समक्ष रखते हुए पाठनिर्धारण करना अतीव आवश्यक है[5] । (द्रष्टव्यः- The Application of a few canons of Textual & Higher Criticism to Kalidasa's S'akuntala, Asia Major, Vol.-2, Leipzig, Germany, 1923, pp. 79 to 104) । इसी तरह से, (ज) यह भी ध्यातव्य है कि इस नाटक के सभी प्रसंगों के आलेखन में एक रूप के सामने दूसरा प्रतिरूप खड़ा करने की निरूपण-विधा का साद्यन्त विनियोग किया गया है । (जिसका निरूपण हमने अभिज्ञानशकुन्तला नाटक की काश्मीरी वाचना का समीक्षित पाठसम्पादन- ग्रन्थ की प्रस्तावना में (पृ. 361 से 364) किया है ।) अतः उस तरह की निरूपणविधा को भी उच्चतर समीक्षा के एक मानदण्ड के रूप में स्वीकारनी होगी ।। (जैसे कि, तृतीयांक में पुष्प की पराग-रज से कलुषित हुए शकुन्तला के नेत्र को दुष्यन्त ने अपने वदनमारुत से प्रमार्जित कर दिया है । इस दृश्य के सामने, षष्ठांक में कवि ने, "शृङ्गे कृष्णमृगस्य वामनयनं कण्डूयमानां मृगीम्" शब्दों से दुष्यन्त का संकल्पित चित्र रखा है । जब हम सोचते हैं कि विरही दुष्यन्त के मन में मृग के सींग पर अपना वामनेत्र खुजलाती हुई मृगी चित्रित करने की चाहत कैसे, कहाँ से पैदा हुई होगी ? तो उसका उत्तर केवल तृतीयांक का वही प्रसंग दे सकता है कि जिसमें दुष्यन्त ने शकुन्तला के कलुषित हुए नेत्र का वदनमारुत से प्रमार्जन कर दिया था ।) तो इस तरह की निरूपण-विधा से प्रस्तुत हुए तृतीयांक के उस दृश्य की मौलिकता प्रमाणित हो जाती है । उसी तरह से (उसी तृतीयांक के अन्दर), शकुन्तला के मृणालवलय को वक्षःस्थल पर चिपकाते हुए दुष्यन्त ने जो उसको हृदयस्य निगडमिव कहा है, और उस मृणालवलय को वापस लेने के लिए आई शकुन्तला को देख कर दुष्यन्त ने उसे जीवितेश्वरी कही है । उसका प्रतिध्वनि षष्ठांक के गोत्रस्खलन के निर्देश में प्राप्त होता है । अतः मृणालवलय पहनाने के प्रसंग का भी मौलिकत्व निःशंक हो जाता है ।) (झ) कवि कालिदास ने प्रस्तावना में ही अपने इस नाटक के लिए "अपूर्वम् नाटकम्" एवं "नवेन नाटकेन" ऐसे दो विशेषण रखे हैं । अतः जहाँ द्विविध प्रसंगालेखन मिल रहा हो, वहाँ जिस पाठान्तर से नाटक की अपूर्वता की रक्षा हो रही हो- ऐसे ही पाठ को मूलगामी पाठ मान कर, उसीका स्वीकार करना चाहिए । उदाहरणतया, इस नाटक की काश्मीरी रंगावृत्ति में पूर्वपरिणीता रानी कुलप्रभा ईर्ष्या-कषायिता

---

[4] डॉ. रिचार्ड पिशेल के द्वारा परिष्कृत एवं सम्पादित बंगाली पाठ में प्राप्त होनेवाली शौरसेनी प्राकृत भाषा स्वीकारनी चाहिए- ऐसा भी अभिप्राय किसी का हो सकता है । किन्तु उसमें मेरा मतभेद है । क्योंकि उन्होंने आर्यपुत्र के लिए "अज्जउत्त", तथा खलु के लिए क्खु ऐसा जो ध्वनिरूप माना है, उसमें महाराष्ट्री प्राकृत की छाया संनिहित है । अतः उसका त्याग करके, इतिहासानुक्रम से जो प्राकृत ध्वनिरूप पहले प्रचार में आये हुए हैं, (परिशिष्ट -2), उनको पुनः प्रतिष्ठित (restored) करना चाहिए ।।

[5] I must here advert to one another point of higher criticism without a due appraisal of which a true understanding of the play and even a final fixing of its text is to my mind altogether impossible : I mean the philosophy of Nature which forms the ground-work of the play. (page-99)

नहीं दिखाई है । उसके प्रतिपक्ष में मैथिली-आदि सभी रंगावृत्तियों में पूर्वपरिणीता रानी वसुमती राजा की दासी मेधाविनी के साथ सीधी स्पर्धा में आती है । विदूषक भी ज्येष्ठा नायिका के संघर्ष को अन्तःपुर का कलह, कालकूट-आदि कहता है । इनमें से कौन सा प्रसंगालेखन मौलिकता के नजदीक होगा ? उसका निर्णय करते समय हमें याद रखना है कि कवि ने अपने पहले दो नाटकों में पूर्वपरिणीता रानियों का संघर्ष बहुविधतया आलिखित किया ही है । लेकिन जब वे अभिज्ञानशकुन्तला जैसे रचना करते हैं, तो उसमें उन्होंने जो दुर्वासा के शाप का विनियोग किया है, वह एक अपूर्व योजना है । कवि ने इस शाप रूप नवीन संघर्ष प्रवर्तित किया है तो उसके साथ में पूर्वपरिणीता रानी का संघर्ष भी निरूपित करना आवश्यक नहीं है, क्योंकि ऐसे संघर्ष में कोई अपूर्वता नहीं है । यदि मैथिली पाठ का यहाँ स्वीकार करेंगे तो मालविकाग्निमित्र एवं विक्रमोर्वशीय में दिखाये गये संघर्ष का ही पुनरावर्तन हो जायेगा । अतः नाटक की अपूर्वता बनाये रखने के लिए उन मैथिलादि रंगावृत्तियों के पाठों में जो पूर्वपरिणीता रानी का संघर्ष भी दाखिल किया गया है, वह यहाँ अस्वीकार्य एवं त्याज्य ही होगा ।।

इतनी सैद्धान्तिक पूर्व-पीठिका के अनुसन्धान में पाठसम्पादन के लिए जो नियम यहाँ स्वीकारे गये हैं, वे निम्नोक्त हैं :-- (1) शारदा-लिपि-निबद्ध काश्मीर की रंगावृत्ति का जो पाठ प्राचीनतम सिद्ध हो रहा है, तथा उसी पाठ में अनेक स्थान पर आन्तरिक सम्भावना-युक्त पाठ मिल रहा है- ऐसा बहुशः देखा गया है, इस लिए उसीको प्राथमिक स्तर पर वरणीय माना गया है, अर्थात् मूलाधार सामग्री के रूप में उसीका पाठ लिया गया है । (इस शारदा-पाठ की मेरी समीक्षितावृत्ति राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, दिल्ली, 2018 में प्रकाशित हुई है ।) (2) उस प्राचीनतम काश्मीरी रंगावृत्ति के पाठ में जिन श्लोकों एवं पाठ्यांशों को "विरासत में मिले प्रक्षिप्त अंश" के रूप में पहचाना गया है, (आन्तरिक सम्भावना की दृष्टि से जो मौलिक नहीं हो सकते हैं) वे हटाये गये हैं । (3) कालिदास के द्वारा प्रयुक्त किये गये "अपि च" एवं "अथवा" निपातों के प्रयोग का स्वारस्य ढूँढ कर, उस प्रमाण के आधार पर, इस नाटक के श्लोकों में रंगकर्मियों के द्वारा संक्षेपीकरण कार्य किया गया है, या कविंमन्यमान व्यक्तियों ने जो प्रक्षेप का खिलवाड़ किया है- उसको बहुशः पहचाना गया है[6] । (4) काश्मीर के स्थानिक रंगकर्मियों द्वारा किये हुए वे प्रक्षेप एवं परिवर्तन, जो आन्तरिक सम्भावना के विरुद्ध सिद्ध किये गये हैं- उनको मैथिली (या बंगाली) रंगावृत्ति के पाठ के आधार पर पुनर्गठित किया गया है । (जैसे कि, काश्मीरी पाठ के तृतीयांक में प्रयुक्त सहकार-अतिमुक्त लता, एवं चित्रा-विशाखावाले दो उपमान प्रक्षिप्त घोषित करके, मैथिली एवं बंगाली पाठ की साहाय्य लेकर वहाँ अधिक श्रद्धेय पाठ को पुनर्गठित किया है ।) ऐसे स्थानों पर, मैथिली (या बंगाली) रंगावृत्ति के पाठ्यांशों को आन्तरिक सम्भावना का निश्चित समर्थन मिल रहा है, ऐसा देखने के बाद ही, उसे स्वीकार्य रखे गये हैं । (5) यदि कुत्रचित् बृहत्पाठवाली तीनों रंगावृत्तियों से भी प्रामाणिक एवं सुसंगत पाठ नहीं मिला है, तो दाक्षिणात्य (एवं देवनागरी) रंगावृत्ति के पाठ की ओर देखा गया है, तथा उसका चयन वहाँ से भी किया गया है । उदाहरणतया, माधवीलता से सम्बद्ध संवाद को निकाल ने के बाद, शकुन्तला जब नवमालिका को

---

[6] इस सन्दर्भ में कार्ल कैप्लर ने जो सम्पादन किया था, उसमें "अपि च", एवं "तथाहि" निपातों से अवतारित सभी श्लोकों को प्रक्षिप्त मान कर हटा दिया है । (द्रष्टव्य- Kalidasa's Sakuntala : Kurzer Textform, mit kristischen und erklarenden, Anmerkungen hrsg. Von Carl Cappeller, Kalidasa, Leipzing, H. Haessel, 1909) यद्यपि यह सही है कि उक्त निपातों से प्रस्तुत किये गये श्लोकों में प्रक्षेप होने की शक्यता है, तथापि ऐसे सभी श्लोकों को प्रक्षिप्त घोषित करने से पहले, कुछ विवेक की आवश्यकता भी थी । इस विषय में हमने बंगाली पाठ की विस्तृत एवं कड़ी आलोचना करते समय विवेक प्रस्थापित किया है, उसके लिए द्रष्टव्य हैः- अभिज्ञानशकुन्तलम्, (सन्दर्भदीपिका टीका-समेतम्), सं. वसन्तकुमार म. भट्ट, राष्ट्रिय पाण्डुलिपि मिशन, दिल्ली, 2013, (पृ. 32 से 46), एवं धीमहि, वॉ.-3, एर्णाकुलम्, 2012, पृ. 76 से 89.

गले से लगा कर उससे बिदाई लेती है, तब वहाँ का (चतुर्थांक की उक्ति-संख्या 111से 117 पर्यन्त का) पाठ दाक्षिणात्य पाठानुरूप रखा है । (6) इस नाटक की कथावस्तु महाभारत के आदिपर्वान्तर्गत सम्भवपर्व के शकुन्तलोपाख्यान (अ. 62 से 69) से ली गई है । अतः उसमें दुःषन्त शब्द का प्रयोग हुआ है- इस बात को ध्यान में रखते हुए, प्रस्तुत पुनर्गठित पाठ में सर्वत्र दुःषन्त ऐसी ही वर्तनी का स्वीकार किया गया है । क्योंकि कालिदास के सामने तो वही शब्द स्वरूप रहा होगा । (बंगाली पाठ परम्परा में भी उसी दुःषन्त शब्द को ग्राह्य रखा है ।) इस दृष्टिबिन्दु से दुष्ष्यन्त, दुष्यन्त, या दुष्मन्त / दुष्वन्त जैसे नामान्तरों को अस्वीकार्य माना गया है । (7) काश्मीरी पाठ में यद्यपि कण्व मुनि का दूसरा नाम काश्यप भी बीच बीच में प्रयुक्त हुआ है, किन्तु यहाँ सर्वत्र "कण्व" नाम ही स्थापित किया है । (8) इस नाट्य-कृति के तीन शीर्षक मिलते हैं । ये तीनों ही शीर्षक मौलिक होने का दावा एक समान रूप से कर सकते हैं । यानि तीनों की सम्भावना बराबर हो सकती है, अतः निर्णयात्मक प्रमाणान्तर के अभाव में, प्राचीनतम होने के नाते काश्मीरी शारदा-पाण्डुलिपियों में उपलब्ध हो रहा "अभिज्ञानशकुन्तला नाटकम्" ऐसा शीर्षक स्वीकार्य रखा गया है । (9) इस नाटक की पात्रसृष्टि के नामों के विषय में, (क) जो नाम अन्धकार में चले गये थे, जैसे कि- मारीचाश्रम की दो कन्याएँ अनुक्रम से संयता एवं सुव्रता है, वे पुनः प्रतिष्ठित किये हैं । (ख) जिस नाम में विकृति ने प्रवेश किया था, जैसे कि- उद्यानपालिकाओं परभृतिका एवं मधुकरिका में से मधुकरिका, जो बंगाली पाठ में मधुरिका बनाई गई है- वह मूल रूप में पुनः प्रतिष्ठित की गई है । (ग) जहाँ नवीन नामान्तर पेश किया गया है, जैसे कि- मेधाविनी को बंगाली पाठ में चतुरिका बनाया गया है, एवं दाक्षिणात्य पाठ में पिङ्गलिका को तरलिका बनाया गया है । तो उन दोनों को अपने प्राचीनतम परम्परागत नामों में स्थिर किया गया है । (10) संस्कृत भाषानिबद्ध पादटिप्पणियों में (क) जिन पाठ्यांशों को काश्मीरेतर पाठ में से लिया गया है, उसका सन्दर्भ उक्ति-क्रमांक के साथ दिया गया है , (ख) जिस काश्मीरी पाठ्यांशों को "विरासत में मिले प्रक्षेप" के रूप में पहचाना हैं, तथा अन्यान्य वाचनाओं में जिन श्लोकों का प्रक्षेप हुआ है- उन सब का "प्रक्षिप्त-श्लोक-संख्या" के साथ निरूपण किया है, (ग) "स्वगतम्" जैसी नाट्यशास्त्रेतर रंगसूचना का विनियोग करके जिन उक्तियाँ एवं श्लोकों का प्रक्षेप किया गया है- उनका निर्देश पाद-टिप्पणियों में किया गया है । (घ) जिन काश्मीरी पाठों को कृतिनिष्ठ अन्तःसाक्ष्य से समर्थन मिलता है- उनका सूत्रात्मक रूप से समुचित परामर्श किया गया है । (ङ) बृहत्पाठ के जो श्लोक को प्राचीनतर अलंकार-शास्त्रीय ग्रन्थों में उद्धृत किये गये हैं, उनका सन्दर्भ-निर्देश भी प्रायः किया गया है । (जिससे उस श्लोक की प्रामाणिकता / प्राचीनतमता या उसके प्रचलन का काल-निर्धारण करने में सहायता मिलेगी ।) निष्कर्षतः उच्चतर समीक्षा की अपेक्षा के अनुसार, प्रस्तुत प्रयास में, आन्तरिक सम्भावना-युक्त एवं कृतिनिष्ठ अन्तःसाक्ष्य से समर्थित हो रहे पाठ को ही प्राधान्येन पुरस्कृत किया गया है । तथा परस्पर में (पूर्वापर सन्दर्भों में) विरुद्ध होनेवाले पाठ, विषयान्तर या पुनरुक्ति रूप सिद्ध होने वाले पाठ, या असम्बद्ध / विसंगत पाठ को (एवं ऐसी रंगसूचनाओं को, तथा उत्तरवर्ती काल के पारिभाषिक शब्दों को भी) हटाया गया है । तदनन्तर तृतीय क्रम पर, काश्मीरी रंगावृत्ति का पाठ (अपने साद्यन्त रूप में सम्पूर्णतया श्रद्धेय नहीं होते हुए भी) कुत्रचित् अगतिकतया प्राचीनतम होने के कारण ग्राह्य रखा गया है ।।

[4]

आर्या छन्द में निबद्ध गाथाओं के पुनर्गठन की कोशिश करने से पहले अधिक समुचित समाधान की प्रतीक्षा करनी आवश्यक लगती है । डॉ. दिलीपकुमार काञ्जीलाल जैसे विद्वान् पिङ्गल-प्रोक्त लक्षणानुसारिणी ही आर्या गाथा होनी चाहिए- ऐसा मानते हैं । तथा उपलब्ध पाँचों पाठों में से केवल बंगाली पाठ में ही वह लक्षण घटित होता है, अतः सार्वत्रिक रूप से बंगाली पाठ को ही ग्राह्य बताते हैं । किन्तु आर्या छन्द का विनियोग प्राकृत गाथाओं के निबन्धन में जब होता है, तब प्राकृत भाषा में प्रादेशिक एवं कालिक सन्दर्भों के कारण हो रहे परिवर्तनों की भी हम उपेक्षा नहीं कर सकते हैं (जैसे कि,

पिङ्गलप्रोक्त आर्या के लक्षण से हट कर, कदाचित् उत्तरवर्ती काल के श्रुतबोध में दिये गये आर्या के लक्षण का परिपालन भी दिखता है ।) तथा राघव भट्ट ने आदिभरत के नाम से जिस द्विपदी गीति आर्या का निर्देश किया है, वह भी विचारणीय है । एवमेव, यदि इन सभी में विभिन्न कालखण्ड के रंगकर्मियों का ही खिलवाड़ हो तो, उनका पुनर्गठन करने में मार्गदर्शक हो सके ऐसे सिद्धान्तों की सोच शुरू करनी बहुत आवश्यक लगती है ।।

[5]

किसी भी खण्डित या बहुशः परिवर्तित या संमिश्रित पाठ्यग्रन्थ (Text) के पुनर्गठन में, या फिर विविध पाठान्तरों में जब सर्वत्र समान सम्भावना दिखती हो तो वहाँ पाठचयन में 1. आन्तरिक सम्भावना का समर्थन होना चाहिए- यह तो उच्चतर समीक्षा का प्रधान नियम है । किन्तु, इस तरह के समर्थन के अभाव में, 2. प्राचीनतम पाठ का आदर, या स्वीकार करने में सलामती ज्यादा है, एवं ज्यादा बुद्धिमानी है । क्योंकि इस नाटक का पाठ पुनर्गठित करने का जो मेरा प्रथम प्रयास है, उसमें कहीं कहीं ऐसे भी स्थान ध्यान में आ रहे हैं कि जहाँ पर परम्परागत सभी पाठ दुर्बोध या दुःसाध्य एवं कुत्रचित् संदिग्ध प्रतीत होते हैं । इन स्थानों की दुरुस्ती होने के लिए कुछ अनुपयुक्त अज्ञात पाण्डुलिपियों को प्रकाश में आने की हमें प्रतीक्षा करनी होगी । या फिर, उनके अभाव में कुछ नये तर्कों, अनुमानों की राह लेनी होगी । उदाहरणतया, (क) पुत्र सर्वदमन को जिस ऋषि का खिलौना देने का प्रस्ताव है, उस ऋषि का नाम मङ्कणक, मार्कण्डेय, या शालंकायन बताया जा रहा है । किन्तु इन तीनों पाठभेदों में से एकान्तिक निर्णय नहीं किया जा सकता है । (ख) काश्मीरी पाठ के सप्तमांक के आरम्भ में दो नाकलासिकाएँ जिस गाथा को प्रस्तुत करती हैं, वह प्राकृतभाषा में है । परन्तु उसमें एकाधिक शब्द दुर्बोध या दुःसाध्य है । इस लिए अज्ञात एवं अप्राप्य पाण्डुलिपियाँ मिलने की प्रतीक्षा करनी होगी । उससे पहले उस गाथा के दुर्बोध होने मात्र से उसको प्रक्षिप्त घोषित करनी की चेष्टा हानिकारक सिद्ध हो सकती है । इतने अंश में, हम उसको "डिप्लोमेटीक टेक्स्ट" सम्पादन के नाम से पहचान सकते हैं । 3. नेपाली पाण्डुलिपियों के आधार पर श्रीडमरुवल्लभ पन्त ने जो अभिज्ञानशाकुन्तल 1871 में प्रकाशित किया था, उसमें कतिपय नवीन श्लोक भी मिलते हैं । अतः इस नाटक की नेपाली पाठपरम्परा का भी अन्वेषण करना आवश्यक है । तथा उत्कलीय पाठपरम्परा से भी मैं अनभिज्ञ हूँ ।। इति दिक् ।।

[6]

इस नाटक के प्रथम अनुमानित पाठ को प्रस्तुत करें, उससे पहले प्रत्येक अंक की श्लोक-संख्या बताना जरूरी है । क्योंकि बंगाल के कुछ संस्करणों में 230 या 232 श्लोकवाला बृहत्तम पाठ प्रकाशित हुआ है । डॉ. रिचार्ड पिशेल ने 221 श्लोकवाला समीक्षित बंगाली पाठ दिया है । मैथिल पाठ में 225 श्लोक मिलते हैं । दाक्षिणात्य एवं देवनागरी पाठों में अनुक्रमतः 193 एवं 191 श्लोकोंवाला संक्षिप्त लघुपाठ मान्य किया गया है । इन सब के सामने इस पुनर्गठित पाठ में 204 श्लोकों को श्रद्धेय पाठ के रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है । (पादटिप्पणी में जो श्लोकों को प्रक्षिप्त मान कर, अस्वीकार्य घोषित किये हैं, उनकी संख्या 34 होती हैं ।) अब प्रत्येक अंक के किन किन प्रसंगों में, दृश्यों में, श्लोकों के विषय में, एवं रंगसूचना-आदि में पुनर्गठन करने का प्रयास किया गया है उनका शृङ्ग-ग्राहिकतया परिगणन करके दिखाना उपकारक होगाः—

प्रथमांक की दृश्यावली में मुख्यतया निम्नोक्त स्थान पर परम्परागत पाठ को पुनर्गठित किया हैः- (क) शारदा-पाण्डुलिपियों में संचरित हुआ पाठ प्राचीनतम सिद्ध हो रहा है- उस आधार पर इस नाटक का शीर्षक "अभिज्ञानशकुन्तला नाटकम्" स्वीकारा गया है । (ख) नाटक के प्रस्तावना-भाग में, 1. नटी-गीत की "खण-चुम्बिआइं भमरेहिं0" गाथा के शब्दों में आन्तरिक सम्भावना दिख रही है- उस लिए उसका पाठ मान्य

रखा है । (यहाँ आर्या के लक्षणों की पूर्ति को ही एकमात्र मानदण्ड नहीं माना है ।) 2. उसी तरह से सूत्रधार के "कतमत्प्रकरणमाश्रित्य" शब्दों में ही आन्तरिक सम्भावना होने से, वे मान्य किये हैं । तथा "कतमं प्रयोगम् आश्रित्य" वाला पाठभेद अमान्य किया है । (ख) मृगयाविहारी राजा दुष्यन्त के प्रवेशदृश्य में मैथिली-आदि में प्राप्त होनेवाला "न खलु न खलु बाणः0" श्लोक पुनरुक्तिदोषग्रस्त होने के कारण प्रक्षिप्त घोषित किया है । (ग) वैखानस के आशीर्वाद-प्रदान दृश्य में दाक्षिणात्य एवं देवनागरी पाठों द्वारा प्रक्षिप्त किया "जन्म यस्य पुरोर्वंशे युक्तरूपमिदं तव0" श्लोक भी अमान्य किया गया है । (घ) काश्मीरी रंगकर्मियों ने शकुन्तला के वल्कल शिथिली-करण-प्रसंग के पाठ में जो स्थानान्तरण किया है- उसको अमान्य किया है । तथा उसके स्थान पर मैथिल-पाठानुसारी पाठयोजना पुरस्कृत की गई है । (यद्यपि डॉ. बेलवालकर जी ने इस प्रसंग में काश्मीरी पाठ को ही मौलिक कहा है । (द्रष्टव्यः- The Original S'akuntala, Published in Sir Ashutosh Mookherjee Silver Jubilee Vol. 3, Orientalia, part-2, Calcutta, 1925, pp. 349 - 359) किन्तु उसमें "शुद्धान्त-दुर्लभम्0" श्लोक में रहा बहुवचनान्त प्रयोग उनके मत से विरुद्ध जा रहा है । अतः उनका अभिप्राय कथमपि ग्राह्य नहीं है । (ङ) शकुन्तला के वल्कल को लेकर जो संवादमाला परम्परागत पाठों में है, उनमें से अथवा-निपात से सुसम्बद्ध "इदम् उपहितसूक्ष्मग्रन्थिना0" तथा "सरसिजमनुविद्धम्0" श्लोकों को मान्य रखा है । तथा "कठिनमपि मृगाक्ष्या वल्कलं कान्तरूपम्0" को अमान्य किया है । किन्तु "इदम् उपहितसूक्ष्मग्रन्थिना0" श्लोक का राजा के मुख से उच्चारण होने के पूर्व जो उक्ति हैः- "सम्यगियमाह प्रियंवदा" । उसके स्थान में "सम्यगियमाह शकुन्तला" ऐसा परिवर्तन करना सन्दर्भोचित लगता है । (च) वृक्षों को जलसिंचन करने का जो प्रसंग है उसमें माधवीलता से सम्बद्ध पूरा संवाद कृतिनिष्ठ आन्तरिक प्रमाणों से प्रक्षिप्त सिद्ध होता है, इस लिए उसको निरस्त किया गया है । (यह बात डॉ. दिलीपकुमार काञ्जीलाल के ध्यान में नहीं आयी है । हाँ, डॉ. बेलवालकर जी ने इस विषय को लेकर एक रोचक बात यह बताई है कि श्रीहर्षदेव की रत्नावली नाटिका का अनुकरण करते हुए किसीने उस माधवीलता का यहाँ प्रक्षेप किया है ! द्रष्टव्यः- S'r.garic Elaboration in S'akuntala Act-3, 1929, pp. 187 to 192) । (छ) अंक के अन्त भाग में, शकुन्तला-निष्क्रमण के दृश्य का पाठ निश्चित करने के लिए द्वितीयांक के "दर्भांकुरेण चरणः क्षत इत्यकाण्डे0" (2-12) श्लोक के शब्दों को ध्यान में लेना आवश्यक है । यहाँ काश्मीरी पाठ की अपेक्षा से मैथिली पाठ अधिक वरणीय प्रतीत हुआ है ।।

द्वितीयाङ्क की दृश्यावली में मुख्यतया निम्नोक्त स्थान पर परम्परागत पाठ को पुनर्गठित किया हैः- (क) विदूषक का मूल नाम माधव्य है, दाक्षिणात्य एवं देवनागरी पाठों में संस्कृतभाषी राजा के मुख से भी उसे "माढव्य" नाम से सम्बोधित करवाया जाता है, जो परवर्ती काल का पाठान्तर होने से अस्वीकार्य है । (ख) विदूषक ने रंगमंच पर पधार रहे राजा को बाणासनगृहीत यवनियों से परिवृत बताया है- उसी तरह की मंचन-योजना ही कवि को मान्य थी । यह बात आगे आनेवाले राजा के "(परिजनमवलोक्य) अपनयन्तु भवन्तो मृगयावेषम्, रेव(त)क ! त्वमपि स्वनियोगमशून्यं कुरु ।" वाक्य से, (यानि कृतिनिष्ठ अन्तः साक्ष्य से ही) समर्थित होती है । अतः, यहाँ मैथिल एवं बंगीय पाठ "हृदयनिहितप्रियजन0" अग्राह्य सिद्ध होता है । (ग) विदूषक ने अपने कष्टों के लिए राजा स्वयं ही दोषी है- ऐसा सूचित करने के लिए दो नहीं, एक ही उपमा का प्रयोग किया हैः- "स्वयमेवाक्षीण्याकुलीकृत्याश्रुकारणं पृच्छसि" । अन्यथा राजा मन्दबुद्धि सिद्ध होगा । (घ) विदूषक ने राजा के प्रणयालाप पर रोक लगाने के लिए त्रिविध हेतु प्रस्तुत किये थे, जिसका यहाँ काश्मीरी पाठ के आधार पर, पुनःप्रतिष्ठापन किया गया है । (इन तीन उक्तियों में संक्षेप करने के लिए ही ललितान्यसम्भवा0 श्लोक में पाठभेद करना शूरु हुआ है ।) (ङ) शकुन्तला के पास किस उपाय से जाया जाय- यह सोचने के लिए राजा के कहने पर विदूषक रंगभूमि पर समाधि लगाता है । यह दृश्य केवल काश्मीरी पाठ में ही सुरक्षित रहा है । अन्यत्र ऐसा दृश्य ही नहीं है । किन्तु विक्रमोर्वशीय नाटक के द्वितीयांक में भी इसी तरह के शब्दों के साथ विदूषक समाधिमग्न होता है । अतः इस दृश्य की सम्भावना को नकारा नहीं जा सकता है ।।

तृतीयाङ्क की दृश्यावली में मुख्यतया आठ स्थानों पर परम्परागत पाठ को पुनर्गठित किया हैः- (क) कुसुमास्तरणवाले शिलापट्ट पर शकुन्तला को जो लम्बे समय तक लेटी हुई अवस्था में प्रस्तुत करने की मूल कविसंकल्पित दृश्य-योजना थी, उसका पुनः प्रतिष्ठापन किया गया है । [जो दृश्य-योजना प्राचीनतम काश्मीरी रंगावृत्ति से ही अपने मूल रूप में से विचलित होना शुरू हुई थी, (और अद्यावधि दुनिया भर के किसी भी पाठालोचक एवं पाठसम्पादक का उसकी विचलित हुई दुर्दशा की ओर ध्यान ही नहीं गया था,) उसको अपने मूल रूप में पुनः प्रतिष्ठित किया गया है । जिसमें मदनलेख लिखते समय एवं मदनलेख के शब्दों को सुन कर, सखियों के सामने दुष्यन्त प्रकट होने के बाद भी रंगमंच पर शकुन्तला लेटी हुई अवस्था में ही रहती है । तथा (दोनों सखियाँ के वहाँ से चली जाने के बाद) उसी शिलापट्ट पर समीप में बैठे नायक के द्वारा जब उसके पद्मताम्र वर्णी पाद को अपनी गोदी में लेकर, उनका संवाहन करने का प्रस्ताव रखा जाता है, तब ही वह शयनावस्था को छोड़ती है ।] (ख) काश्मीरी रंगावृत्ति को विरासत में मिले सुरुचि का भङ्ग करनेवाले / अश्लीलता से भरे चार प्रक्षिप्त श्लोकों को हटाया गया है । (ग) मैथिली रंगावृत्ति द्वारा प्रक्षिप्त किये अन्य तीन श्लोकों को भी निरस्त किया गया है, जिनमें से एक "गान्धर्वेण विवाहेन बह्व्यो मुनिकन्यकाः0" श्लोक भी है । कृतिनिष्ठ आन्तरिक प्रमाण से ही वह श्लोक प्रक्षिप्त सिद्ध हो रहा है । तथा च, बंगाली पाठ में प्रक्षिप्त हुआ "शशिकरविशदान्यस्याः0" श्लोक भी हटाया गया है । (घ) तीन सखियों के लिए प्रयुक्त किये गये चित्रा-विशाखे एवं शशाङ्कलेखा के उपमानों को हटाया गया है । (ङ) शकुन्तला को बिठाने के लिए प्रयुक्त मेघनादाहत मयूरी का उपमान भी हटाया गया है । (च) दाक्षिणात्य एवं देवनागरी रंगावृत्तियों में संक्षेपीकरण के आशय से हटाये गये दो दृश्य सप्रमाण पुनःप्रतिष्ठित किये गये हैं[7] । जैसे कि, 1. दुष्यन्त और शकुन्तला के एकान्त मिलन को (आन्तरिक सम्भावना के तर्कबल पर) जो लम्बे समय तक (मध्याह्न से सायंकाल पर्यन्त) चलता रहा हो- उसको मान्य रखा गया है । इस दृश्य के दौरान दुष्यन्त ने शकुन्तला के हाथ में मृणालवलय को पहनाया है । इसको इसी तृतीय अंक के उपान्त्य श्लोक में विद्यमान "हस्ताद् भ्रष्टं बिसाभरणम्" शब्दों से (=कृतिनिष्ठ अन्तःसाक्ष्य से) समर्थित किया गया है । तथा इस एक रूप के सामने दूसरा प्रतिरूप खडा करने की निरूपण-विधा, जो इस नाटक में साद्यन्त प्रयुक्त हुई है, उसको मानदण्ड बना कर देखने से- 2. पुष्प की पराग-रज से कलुषित हुए शकुन्तला के नेत्र को नायक अपने वदनमारुत से प्रमार्जित कर देता है- उस तृतीयांक के दृश्य को भी षष्ठांक के "शृङ्गे कृष्णमृगस्य वामनयनं कण्डूयमानां मृगीम्0" शब्दों का समर्थन मिल रहा है । इस तरह से उसकी भी मौलिकता प्रमाणित की गई है ।। (छ) नायक-नायिका के एकान्त मिलन को रोकने ने के लिए, रंगावृत्तियों में उपलब्ध हो रही द्विविध (नेपथ्योक्ति की) व्यवस्थाओं में समान सम्भावनाएँ होते हुए भी मैथिली पाठानुसारी व्यवस्था अधिक स्वीकार्यतर मानी हैं । क्योंकि पूरे नाटक में शकुन्त-ला के लिए परभृतिका, चक्रवाकादि पक्षियों के भी प्रतीकों का विनियोग किया गया है । (ज) और अंक के अन्त भाग में जब गौतमी आ कर, शकुन्तला को अपने साथ ले जाती है तब उस गौतमी के साथ में दोनों सखियों का आगमन नहीं दिखाया है ।।

चतुर्थाङ्क की दृश्यावली में मुख्यतया निम्नोक्त दस स्थानों पर परम्परागत पाठ को पुनर्गठित किया हैः- (क) दुर्वासा-शाप-प्रसंग के अवसर पर शाप-मोचन की याचना करने के लिए सखी अनसूया जाती है, और शाप-वृत्तान्त को शकुन्तला से संगोपित रखने का प्रस्ताव प्रियंवदा ने किया है- ऐसी काश्मीरी पाठ योजना

---

[7] डॉ. एस. के. बेलवालकर ने 1929 में लिखा है कि इस नाटक के तृतीयांक के बृहत्पाठ की प्रसिद्धि सम्राट् हर्षवर्धन के (ई. स. 650) समय में भी थी । किन्तु संक्षेपीकरण के लिए हटाये गये दो दृश्यों की मौलिकता कैसे कृतिनिष्ठ अन्तःसाक्ष्यों से सिद्ध होती है ?- यह नहीं बताया है । द्रष्टव्यः- S'r.garic Elaboration in S'akuntala Act-3, Published in Indian Studies in Honour of C. R. Lanman, Harvard University Press, 1929, pp. 187 to 192.

ही आन्तरिक सम्भावना की दृष्टि से संरक्षणीया है । (ख) प्रातःकाल का वर्णन करते समय शिष्य के मुख से कितने श्लोक निकले हैं एवं वे कौन कौन से श्लोक हैं ? इस विवाद को समुच्चयार्थक "अपि च" निपातयुग्म के प्रयोग का स्वारस्य ध्यान में लेकर ही किया जा सकता है । तदनुसार कर्कन्धूनाम्0 तथा पादन्यासं क्षितिधर0 श्लोक ही मान्य हो सकते हैं । (ग) सखियों के आगमन से पूर्व, दो-तीन अज्ञात नामधारिणी तापसियाँ आकर शकुन्तला को महादेवी होने का, भर्ता को बहुमता होने का एवं वीरपुत्र-प्रसविनी होने का आशीर्वाद बारी बारी पर देती हैं- उस पाठ्यांश का निष्कासन किया गया है । (घ) काश्मीरी पाठ के अनुसार "क्षौमं केनचित्0" श्लोक के पीछे जो प्रियंवदा की उक्ति है कि- अनयाभ्युपपत्या भर्तुः गृहेऽनुभवितव्या राजलक्ष्मीः0,-तत्पश्चात् उसके पीछे लज्जावती शकुन्तला कहती है कि- "कोटरसम्भवेव मधुकरी पौष्करमुखम्-अभिलषसि0", वही स्वीकार्य है । यहाँ मैथिली-बंगाली-पाठानुसारी योजना मान्य नहीं है, क्योंकि उनमें प्रियंवदा के सख्य एवं सद्भावना की परिरक्षा नहीं होती है । (ङ) नेपथ्य से कोकिलरव पैदा करने के लिए मैथिल-रंगकर्मियों ने जो श्लोक-क्रमांक परिवर्तित किया है, उसने एक गम्भीर शंका पैदा की है । क्योंकि, सोचने पर लगता है कि- 1.शाङ्र्गरव के मुख में रखे गये "अनुमतगमना शकुन्तला0" श्लोक और गौतमी की उक्ति में पुनरुक्ति-दोष आ रहा है । 2. इस श्लोक के छन्दो विषय में भी विवाद है । एवं 3. कण्व की तपोवनदेवताओं से की गई अभ्यर्थना एवं नेपथ्य से उठी "रम्यान्तरः0" श्लोक की गुञ्ज के साथ ही गौतमी की उक्ति का सच्चा सम्बन्ध बैठता है । अतः हो सकता है कि "अनुमतगमना शकुन्तला0" वाला श्लोक प्रक्षिप्त ही हो । यद्यपि यह श्लोक काश्मीरी पाठ में भी है, तथापि उसको बीच में से उठा लिया जायेगा तो भी भाव की और पाठ की संगति अक्षुण्ण बनी रहती है । (च) पिता कण्व के मुख से "अभिजनवतो भर्तुः श्लाघ्ये स्थिता गृहिणीपदे0" श्लोक के बाद, "अपि च" निपात से अवतारित "यथा शरीरस्य शरीरिणश्च पृथक्त्वमेकान्तत एव भावि0" श्लोक का पुनःप्रतिष्ठापन भी करना अनिवार्य है । क्योंकि बिदाई ले रही पुत्री शकुन्तला का मन उभयत्र विभक्त / चिन्तित होना स्वाभाविक है । (छ) प्रथमांक की तरह यहाँ चतुर्थांक में से भी, माधवीलता से बिदाई लेने का प्रसंग निष्कासित करना अनिवार्य है । क्योंकि कण्व के "कान्तं समीपसहकारमिमं करिष्ये" ऐसा वचन कृतिनिष्ठ अन्तःसाक्ष्य के विरोध में जा रहा है । (ज) शकुन्तला अपने को "मलय-पर्वतोन्मूलिता चन्दनलता" का उपमान नहीं देती है, किन्तु "करिसार्थपरिभ्रष्टा करेणुका" का उपमान देती है- उसका पुनःस्थापन किया गया है । यहाँ एक मात्र काश्मीर पाठ में ही आन्तरिका सम्भावना सिद्ध होती है । (झ) बिदाई के सन्दर्भ को निरूपित करनेवाली तीन प्राकृत-गाथाएँ, जिनमें विशेष रूप से चक्रवाक-पक्षी सम्बन्धी गाथा का पुनः प्रतिष्ठापन करना भी सन्दर्भोचित है । परवर्ती काल में, संक्षेपीकरण के व्यामोह में इसी स्थान में कटौती की गई है । (ञ) "अर्थो हि कन्या परकीय एव0" अन्तिम श्लोक में न्यास शब्द के स्थान में, कृतिनिष्ठ अन्तःसाक्ष्य (उक्ति-116) से, धरोहर अर्थवाले "निक्षेप" शब्द का पुनः प्रतिष्ठापन किया गया है । "धरोहर" अर्थ में प्रयुक्त होनेवाला जो निक्षेप शब्द है, वह विक्रमोर्वशीय नाटक में (2-13 के नीचे) भी प्रयुक्त हुआ है । तथा कालिदास की अन्य कोई भी कृति में धरोहर अर्थ में न्यास शब्द का प्रयोग हुआ ही नहीं है- ऐसा डॉ. श्रीरेवाप्रसाद द्विवेदी जी के "कालिदासशब्दानुक्रमकोश" (पृ. 258) से ही मालूम होता है ! (ट) काश्यप शब्द के स्थान में, सार्वत्रिक रूप से कण्व शब्द का ही प्रयोग किया गया है ।।

पञ्चमाङ्क की दृश्यावली में मुख्यतया निम्नोक्त स्थानों पर परम्परागत पाठ को पुनर्गठित किया हैः- (क) इस अंक की प्रारम्भिक दृश्यावली का क्रम परम्परागत पाँच पाठों में अलग अलग है । किन्तु काश्मीरी पाठ प्राचीनतम होने के साथ साथ अधिकतर श्रद्धेय प्रतीत हो रहा है । अतः उसी का मान्य पाठ के रूप में रखा गया है । जैसे कि, पहले कञ्चुकी की उक्ति, (जिसमें आकाशभाषित का भी विनियोग होता है), उसके बाद में राजा और विदूषक का प्रवेश हो जाने के पश्चात् हंसवतिका का गीत-श्रवण, तृतीय क्रम में वैतालिकों का श्लोक-गान होता है, (जिससे क्लान्तमना राजा नवीभूत होते हैं), ततः चौथे क्रम पर, कण्वाश्रम के ऋषिकुमार एवं शकुन्तला के साथ गौतमी का प्रवेश होता है । इस तरह की दृश्यानुक्रमिकता में कञ्चुकी की

वार्धक्यवशात् हो रही विस्मृति की दशा के सामने राजा की शापवशात् हुई विस्मृति का विरोध आकारित होता है । (जो दाक्षिणात्य एवं देवनागरी पाठों में नहीं है ।), एवं हंसवतिका-गीत के बाद आ रहे वैतालिकों के श्लोक-गान से राजा की धर्मबुद्धि को जागृत तथा सतेज करने का प्रयोजन सिद्ध होता है । (इस तरह की फलप्राप्ति मैथिली एवं बंगाली पाठों में से नहीं होती है ।) सारांशतः काश्मीरी पाठ में नाटकीय-प्रयोजनों की संसिद्धि सर्वाधिक होती है, और उसीमें गुणपक्ष का आधिक्य एवं दोषपक्ष का अभाव होने से वही मान्य पाठ के रूप में स्थापित किया है । (ख) हंसवतिका के गीत को सुन कर दुष्यन्त के मुख से जो प्रतिभाव निकला है, "वयस्य, सत्कृत-प्रणयोऽयं जनः । तदस्याः कृते कुलप्रभामन्तरेण समुपालम्भम् उपागतोऽस्मि । तन्मद्वचनात्0" इत्यादि, उसको काश्मीरी पाठ के अनुसार यथावत् रखा है । क्योंकि मैथिली एवं बंगाली पाठों में से पूर्वपरिणीता रानी का (कुलप्रभा, या वसुमती) नाम हटा कर, हंसवती ही रखा है । उस तरह का पाठान्तर रखने में ऐसा लगता है कि उन्होंने हंसवतिका-गीत के अर्थघटन के साथ जुड़े विवाद को दूर या कम करने का प्रयास किया है । अतः प्राचीनतम होने के कारण काश्मीरी पाठ को संग्राह्य माना गया है, (जिसमें लघुपाठों का भी परोक्ष समर्थन सम्मिलित हुआ है) । (ग) शकुन्तला-प्रत्याख्यान प्रसंग में, रंगसज्जा के रूप में (मैथिल-पाठानुसार) होमधेनु नहीं, किन्तु कपिला धेनु को स्थान देना उचित समझा गया है । क्योंकि अग्निशरणालिन्द में खडे राजा के परिसर में होमधेनु न होने से भी, (काश्मीरी पाठक्रम से) वैतालिकों के श्लोक-गान से वह प्रयोजन सिद्ध किया ही गया है । अतः यहाँ काश्मीरी पाठ के अनुसार यदि कपिलाधेनुवाले पाठ को मान्य रखते हैं, तो वह कपिला-धेनु दयनीय शकुन्तला का प्रतीक भी बन सकती है । (घ) कण्वाश्रम से शाङ्र्गरव एवं शारद्वत के साथ भागुरि नाम का कोई तीसरा व्यक्ति भी, काश्मीरी पाठ में उपस्थित होता है । लेकिन उसको पुनर्गठित पाठ में अमान्य किया है । क्योंकि चतुर्थाङ्क में शकुन्तला को लेकर जब दो ऋषिकुमार एवं गौतमी निकले थे, तब उसका कोई निर्देश नहीं किया गया है । यानि कृतिनिष्ठ आन्तरिक प्रमाण के अभाव में उसका निष्कासन करना आवश्यक है । (ङ) राजा के साथ वाद-विवाद करते समय, तीनों बृहत्पाठों में शकुन्तला के मुख में "तुम्हे य्येव पमाणं जाणध0" ऐसी गाथा मिलती है । किन्तु उसका अस्वीकार किया गया है । क्योंकि वह निसर्ग-कन्या शकुन्तला के स्वरूप से विरुद्ध है । (च) एवमेव, शकुन्तला के स्वाभाविक कोप को देख कर राजा दुष्यन्त उसकी भ्रूलताओं का वर्णन करने के लिए दो श्लोक नहीं, केवल एक ही श्लोक बोले वह प्रसंगोचित है । अन्यथा दो श्लोकवाला पाठ काव्यत्व-प्रदर्शन मात्र सिद्ध होगा । जब दुष्यन्त के सामने खडी शकुन्तला के लिए जीवन-मरण का संघर्ष पराकाष्ठा पर पहुँच चूका है, तब राजा के द्वारा दो श्लोकों का काव्यालाप अप्रासंगिक एवं सर्वथा अनुचित कहा जायेगा । अतः "न तिर्यगवलोकि चक्षुरतिलोहितं0" वाला एक ही श्लोक मान्य हो सकता है । किन्तु "मय्येवमस्मरणदारुण0" वाला मैथिल श्लोक अग्राह्य है ।।

षष्ठाङ्क की दृश्यावली में मुख्यतया निम्नोक्त स्थानों पर परम्परागत पाठ को पुनर्गठित किया हैः- (क) प्रवेशक के दृश्य में धीवर-प्रसंग आता है । उसमें पाठनिर्धारण की दृष्टि से कुछ स्थान ध्यानास्पद हैं । 1. धीवर ने राजमुद्रा की कहीं से चोरी नहीं की है, बल्कि मछलीमारी करते हुए उसको वह किसी मत्स्य के उदर से प्राप्त हुई है । इस बयान की सच्चाई प्रमाणित करने के लिए परम्परागत पाठों में त्रिविध पाठान्तर मिलते हैं । जिनमें से प्राचीनतम काश्मीरी पाठ तर्कसंगत लगता है । नागरिक (श्याल) ने अंगूठी अपनी नासिका से लगाई और सूँघने का अभिनय करके बताया कि धीवर की बात ठीक लगती है । अंगूठी में से ही ऐसी दुर्गन्ध आ रही है कि वह मत्स्य के उदर में रही हो । किन्तु धीवर की मुखाकृति से वह "घोराकृति" दिखता है, अथवा वह "गोधादी" हो ऐसी दुर्गन्ध उसके शरीर से निकल रही है, अतः उसका बयान ठीक है- ऐसी प्रस्तुतियाँ निश्चित तया परवर्ती काल की सिद्ध होती हैं । 2. जब राजा ने बताया कि धीवर का बयान सच्चा है, और उसको बन्धन से मुक्त किया जाय । तो उसके प्रतिभाव में, काश्मीरी पाठ के अनुसार "यमवसतिं गत्त्वा गुडखण्डं च दत्त्वा प्रतिनिवृत्तः ।" ऐसा वाक्य मिलता है, जो संग्राह्य पाठ लगा है । (ख)

प्रथम दृश्य में जो दो उद्यानपालिकाएँ आती हैं, उनको सभी पाठों में चेटी या दासी का सामाजिक दरजा दिया गया है । किन्तु लगता है कि कवि की मूल अवधारणा तो निसर्ग के / वसन्त ऋतु के ही प्रतिनिधिभूत मधुमक्षिका (मधुकरिका) एवं कोकिला (परभृतिका) को ही उद्यानपालिकाओं के नाम से प्रस्तुत करने की रही होगी । जो विचार शताब्दियों से अन्धकाराच्छादित रहा है । अतः हमने उनको चेटियाँ न कह कर, उद्यानपालिका के नाम से ही पुनर्गठित पाठ में रखा है, जिससे उनकी वेशभूषा भी तदनुरूप निश्चित होगी । (ग) कञ्चुकी के मुख से निकलनेवाला श्लोक "चूतानां चिरनिर्गतापि कलिका बध्नाति न स्वं रजः0" को, एवं तदनुगामिनी दो उक्तियाँ को प्रक्षिप्त घोषित करने की आवश्यकता है । क्योंकि कञ्चुकी के निषेध करने से पहले तो परभृतिका (कोकिला) ने चूतमञ्जरी का भङ्ग कर लिया है, और उसको कामदेव को समर्पित भी कर दिया है ! तथैव च, आगे चल कर जो विदूषक की उक्ति है कि- "साम्प्रतं शिशिरविच्छेदे रमणीयेऽस्मिन् प्रमदवने सुखं विहरिष्यामः" उसके साथ भी कञ्चुकी-निर्दिष्ट निषेधात्मक परिस्थिति के साथ विरोध पैदा हो रहा है । यद्यपि कञ्चुकी की इस उक्ति का सर्वत्र स्वीकार हुआ है, तथापि यह कृतिनिष्ठ आन्तरिक विरोध पैदा करनेवाला पाठ होने से अग्राह्य बनता है । (घ) उसी दृश्य में प्रथमा (परभृतिका) एवं द्वितीया (मधुकरिका) की आरम्भिक उक्तियों के क्रम में भी परम्परागत पाठों में विकृति पैदा हुई है, जिसको मैथिल पाठ के सहारे तर्कसंगत बनाया गया है । (ङ) शकुन्तला के चित्रफलक प्रसंग में, मैथिली पाठ से प्रविष्ट हुए 1. दीर्घापाङ्गविसारिनेत्र0, 2. अस्यास्तुंगमिव स्तनद्वयम्0, 3. यद्यत् साधु न चित्रेऽस्मिन्0 ।, तथा 4. उपहितस्मृतिरंगुली0 श्लोकों को प्रक्षिप्त घोषित करके हटाया गया है । क्योंकि वे आन्तरिक सम्भावना के विरुद्ध जा रहे हैं । (च) मिश्रकेशी के मुख से निकलने वाले अमुक वाक्यों को भी, विषयान्तर पैदा करनेवाले होने से निरस्त करना आवश्यक समझा गया है । (छ) राजा की दासी का नाम मेधाविनी और रानी की दासी का नाम पिङ्गलिका ही संग्राह्य है, क्योंकि बंगाली पाठ से ही उसमें परिवर्तन आना शुरू हुआ है- ऐसा सिद्ध हो रहा है । (ज) मैथिली पाठशोधकों द्वारा दाखिल किया पूर्वपरिणीता रानी का संघर्ष सर्वथा अग्राह्य है । क्योंकि उसके कारण नाटक की अपूर्वता एवं नवीनता पर आघात हो रहा है । यानि कि यह पाठ्यांश कविप्रतिज्ञा विरुद्ध जा रहा है । दुर्वासा के शाप रूप एक नवीन संघर्ष को रखने के बाद इसकी आवश्यकता नहीं रहती है । एवञ्च, उस तरह का विरोध जिसमें न आता हो ऐसे पाठ की उपलब्धि भी प्राचीनतम काश्मीरी पाठ में से हो ही रही है । अतः उसकी पुनःप्रतिष्ठा होनी ही चाहिए । (जिसके कारण बहुमानगर्विता वसुमती, अन्तःपुरकलह, अन्तःपुरकालकूट, अन्तःपुर वागुरादि पाठान्तर निरस्त कर दिये गये हैं ।) (झ) अक्षमाला की रंगभूमि से निवृत्ति का निरूपण जिस तरह का काश्मीरी पाठ में सुरक्षित है, वह नाट्यशास्त्रीय सूचना के अनुरूप होने से मान्य पाठ के रूप में स्वीकारा गया है । (ञ) अन्त में, मातलि के द्वारा विदूषक का ग्रहण होता है, तब कञ्चुकी एवं राजा के मुख में स्थित तीन श्लोक (1. प्रागेव जरसा0, 2. तस्याग्रभूमेर्नीलकण्ठ0, तथा 3. अहन्यहन्यात्ममनः0) भी कवितालाप रूप एवं अप्रासंगिक हैं । अतः वे भी प्रक्षिप्त घोषित किये हैं ।।

सप्तमाङ्क की दृश्यावली में मुख्यतया निम्नोक्त स्थानों पर परम्परागत पाठ को पुनर्गठित किया हैः- (क) इस अन्तिम अंक के प्रारम्भ में नाकलासिकाओं का प्रवेशक आता है, जो केवल काश्मीरी पाठ में ही उपलब्ध हो रहा है । उसमें प्राप्त हो रही प्राकृत-गाथा में आर्या छन्द के लक्षण घटित नहीं होते हैं । एवं उसके प्राकृत शब्दों का अर्थबोध कठिन लगता है । जिसके कारण, पूरे नाटक के साथ उसकी संगति कैसे बिठाई जाय ? वह विचारणीय है । पाठालोचना की प्रक्रिया में पुनर्गठन से पहले अर्थघटन के प्रयास को भी अवकाश है । इस नियम से प्रेरित हो कर, मैंने उस दिशा में कुछ विचार रखे हैं । अन्यान्य पाण्डुलिपियाँ भविष्य में जब मिलें, और उस आर्या का पाठ परिशुद्धस्वरूप में सामने आये, तब इस प्रवेशक का प्रयोजन ठीक तरह से समझ में आयेगा ऐसी हम आशा करते हैं । अतः उसको सर्वथा प्रक्षिप्त घोषित करके निरस्त करने की जल्दबाजी करना उचित नहीं है । डॉ. बेलवालकर जी ने भी कालिदास के अन्य नाटकों में जैसे संगीत-

नृत्यादि का प्रस्तुतिकरण है, वैसे इस नाटक में भी नर्तन का दृश्य हो सकता है- ऐसी सम्भावना शब्दबद्ध की है । (ख) मारीच ऋषि के आश्रम में, दो मुनिकन्याएँ हैं । परम्परागत पाठों में उनको प्रथमा तापसी एवं द्वितीया तापसी से पहचाना गया है । तथा केवल प्रथमा तापसी द्वितीया तापसी को सुव्रता के नाम से संबोधित करती है । किन्तु प्रथमा तासपी का नाम क्या है ? वह संदिग्ध रहता है । इसकी जानकारी काश्मीरी पाठ से मिलती है कि प्रथमा का नाम संयता है । एवञ्च, द्वितीया सुव्रता ने ही किसी ऋषिकुमार द्वारा बनाया मृत्तिकामयूर उटज से लाकर सर्वदमन को दिया है । इस प्रसंग से जुड़ी सारी अस्पष्टता, संदिग्धता हटाई गई है । (ग) दुष्यन्त ने जब इन मुनिकन्याओं को पूछा कि- "न चेन्मुनिकुमारोऽयम्, अथ कोऽस्य व्यपदेशः ।" तो उसका उत्तर "पुरुवंशः" दिया जाता है । लेकिन यहाँ पर काश्मीरी (एवं तदनुगामिनी दाक्षिणात्य एवं देवनागरी) में दिया गया यह पाठ आन्तरिक सम्भावना के विरुद्ध है । सामान्यतः पूरे नाटक में, (नायक के मुख से निकला है कि- 1. कः पौरवे शासति वसुमतीम्0 । तथा 2. नायिका के मुख से निकला है कि- पौरव, रक्ख विणअम् ।) दुष्यन्त को पौरव ही कहा गया है । अतः मुनिकन्याओं के मुख से निकले उत्तर में (मैथिल एवं बंगाली पाठों के अनुसार) "पौरवः" ऐसा शब्द ही पुनः प्रतिष्ठित करना आवश्यक है । (घ) सामान्यतः नाटक के अन्त भाग में कवि के द्वारा लिखे गये भरत-वाक्य में शुभाशंसा रूप विचार रखे जाते हैं । किन्तु नाट्यकृति का मंचन करनेवाली नटमण्डली भी तत्-तत्कालिक राजाओं को उद्देश्य करके ऐसे ही शुभाशंसा व्यक्त करनेवाले अन्य श्लोकों का प्रक्षेप करती है । जैसा कि राजशेखर ने काव्यमीमांसा में कहा है कि साहसांक की राजसभा में कविपरीक्षा होती थी, और सभी मैथिली पाण्डुलिपियाँ भी कहती है कि- "आर्ये, रसभावविशेषदीक्षागुरोः श्रीविक्रमादित्यस्य साहसाङ्कस्य अभिरूपभूयिष्ठा परिषत् । अस्यां च कालिदासग्रथितवस्तना... ।" इत्यादि, तब उससे यह बात सिद्ध हो जाती है । अतः पुनर्गठित एवं अनुमित इस पाठ में से भरत-वाक्य के पूर्व में आनेवाले दो श्लोकों (1. तव भवतु बिडौजाः0 । एवं 2. क्रतुभिरुचितभागांस्त्वं सुरान्0) को हटाना आवश्यक समझा गया है । (ङ) अन्तिम भरत-वाक्य में, प्राचीनतम होने से "श्रुतिमहताम्" काश्मीरी पाठ को मान्य रखा है, क्योंकि कवि ने अन्यत्र वेदधर्म एवं ब्राह्मण संस्कृति की ओर पक्षपात दिखाया है । (अतः "श्रुतिमहती" पाठभेद में भी समान सम्भावना दिखती है ।) किन्तु "श्रुतमहताम्" पाठ तो परवर्ती ही हो सकता है, अतः उसको अमान्य किया हैं ।।

[7]

प्रस्तुत प्रयास की सिद्धि एवं मर्यादाएं :—

(क) इस नाटक के मूल पाठ में प्रविष्ट प्रक्षेपों एवं संक्षेपों की पहचान तर्कनिष्ठ एवं व्याकरणनिष्ठ प्रमाणों के आधार पर की गई है । जिसमें मुख्यतया (क) अपि च, (ख) अथवा जैसे अव्ययों के विनियोग का स्वारस्य निश्चित कर लिया गया है । तथा "स्वगतम्" जैसी दशरूपकानुसारी रंगसूचना से अवतारित कतिपय श्लोक एवं उक्तियों को प्रक्षेप के रूप में निश्चित की गई है । कुल मिला कर 34 श्लोकों के प्रक्षेपों को निष्कासित किये गये हैं ।।

(ख) इस नाटक के तृतीयांक में जो कुसुमशयना शकुन्तला का दृश्य है, उसको कविसंकल्पित दृश्य-योजना के अनुरूप पुनःप्रतिष्ठित किया जा सका है । तथा इसी अंक में रंगकर्मियों के द्वारा जो अरुचिकर अश्लील पाठ्यांश प्रक्षिप्त किये गये थे, उनकी पहचान करके सब को हटा दिया है ।।

(ग) पञ्चमांक की आरम्भिक दृश्यावली का क्रम काश्मीरी रंगावृत्ति में सुरक्षित रहा है, उसका पुनः प्रतिष्ठापन किया गया है ।।

(घ) इस नाटक के षष्ठांक में से पूर्वपरिणीता रानी का संघर्ष निरस्त करके, नाटक की एक अपूर्वता को बरकरार रखी गई है । (यानि restored पुनःस्थापित की गई है ।) ।

(ङ) इस नाटक के प्रत्येक श्लोक की छन्दःशास्त्रीय परीक्षा करके, उनका तदनुसारी पुनर्गठन भविष्य में किया जायेगा। (विशेष रूप से प्राकृत गाथाओं का पाठ अभी सम्यक् अवस्था में नहीं है।) नाट्यशास्त्र में जिस तरह से अमुक छन्दों के लक्षण दिये है, उससे हट कर परवर्ती काल में कुत्रचित् नवीन उपस्थापनाएं की गई है- ऐसा डॉ. मनःसुखलाल मोलिया, राजकोट का मन्तव्य है। अतः छन्दो-विधान में हुए ऐसे परिवर्तनों से भी इस नाटक के श्लोकों में पाठान्तर प्रविष्ट हुए होंगे।।

(च) सामान्यतया देवनागरी पाण्डुलिपियों में इस नाटक का केवल लघुपाठ ही मिलता है। तथापि देवनागरी पाण्डुलिपियाँ एकत्र करने के प्रयास से हम विरत नहीं हुए हैं। कूपखानक-न्याय से प्रोत्साहित होकर प्रयास करते रहने पर हमें कतिपय देवनागरी पाण्डुलिपियाँ ऐसी भी मिल गई हैं कि जिनमें इस नाटक का बृहत्पाठ संचरित हुआ है ! किन्तु प्रस्तुत कार्य में उनका विनियोग नहीं किया गया है।

(छ) यहाँ केवल काटयवेम के द्वारा मान्य किये गये दाक्षिणात्य पाठ को ही आधार बनाया है।, क्योंकि दाक्षिणात्य वाचना की समीक्षितावृत्ति बनाने का कार्य अभी तक किसी ने नहीं किया है। हमने 80 से अधिक तेलुगु, ग्रन्थ, मळयालम, नन्दी-नागरी लिपियों में लिखी ताडपत्रीय पाण्डुलिपियाँ प्राप्त कर ली हैं, जिनमें कुत्रचित् काश्मीरी पाठ का सीधा प्रतिबिम्ब भी देखा जा रहा है- किन्तु उनका भी साङ्गोपाङ्ग अध्ययन अवशिष्ट है।

(ज) असंख्य पाण्डुलिपियों का विवरण उपलब्ध है, वे सभी हमने अभी देखी नहीं हैं। तथा जो शारदा पाण्डुलिपियाँ कहीं न कहीं विद्यमान होंगी, परन्तु हमें ज्ञात नहीं हैं, प्राचीनतम काश्मीरी पाठ के संदिग्ध स्थानों को सुधारने में उनका भी विनियोग नहीं हो पाया है। अतः हो सकता है कि कुछ नवीन जानकारी मिलने से, उपर्युक्त तीन मर्यादाओं से बाहर निकल जाने पर नया परिणाम / दूसरा आनुमानिक पाठ पुनर्गठित किया जा सकेगा, तथा अधिक श्रद्धेय एवं मूलगामी पाठ प्राप्त किया जायेगा।।

।। इति शिवमस्तु, सुन्दरमस्तु, सत्यमस्तु ।।

888 ---- 888

(अभिज्ञानशकुन्तला नाटकस्य पुनर्ग्रथितः प्रथमोऽनुमितश्च पाठः)

।। अभिज्ञानशकुन्तला नाटकम् ।।

।। प्रथमोऽङ्कः ।।

या स्रष्टुस्सृष्टिराद्या[1], पिबति[2] विधिहुतं या हवि, र्या च होत्री,
ये द्वे कालं विधत्तः, श्रुतिविषयगुणा या स्थिता व्याप्य विश्वम् ।
यामाहुस्सर्वबीजप्रकृतिरिति, यया प्राणिनः प्राणवन्तः
प्रत्यक्षाभिः प्रसन्नस्तनुभिरवतु नस्ताभिरष्टाभिरीशः ।। **1 – 1** ।। [1]

(नाद्यन्ते)

सूत्रधारः – (नेपथ्याभिमुखमवलोक्य) आर्ये, यदि नेपथ्यविधानमवसितं तदितस्तावद् आगम्यताम् । [2]

नटी – (प्रविश्य) अय्य, इअम्हि । आणवेदु अय्यो को णिओओ अणुचिट्ठहीअदु त्ति । (आर्य, इयमस्मि । आज्ञापयत्वार्यः को नियोगोऽनुष्ठीयताम् इति ।) [3]

सूत्रधारः – (दृष्ट्वा) आर्ये, अभिरूपभूयिष्ठेयं[3] परिषत् । अस्यां च किल कालिदासग्रथितवस्तुना नवेन अभिज्ञानशकुन्तला[4]-नामधेयेन नाटकेनोपस्थातव्यमस्माभिः । तत्प्रतिपात्रमास्थीयतां यत्नः । [4]

नटी – सुविहिदप्पओअदाए अय्यस्स ण किं चि परिहाइस्सदि । (सुविहितप्रयोगतयाऽऽर्यस्य न किंचित् परिहास्यते ।) [5]

सूत्रधारः – (सस्मितम्) आर्ये, वेदयामि ते भूतार्थम् । [6]

आपरितोषाद् विदुषां न साधु मन्ये प्रयोगविज्ञानम् ।
बलवदपि शिक्षितानामात्मन्यप्रत्ययं चेतः ।। **1 – 2** ।। [7]

नटी – एवं णेदं । अणन्तरकरणीअं दाणिं अय्यो आणवेदु । (एवमेतत् । अनन्तरकरणीयमिदानीमार्य आज्ञापयतु ।) [8]

सूत्रधारः – (दृष्ट्वा) किमन्यत् । अस्याः परिषदः श्रुतिप्रसादहेतोरिमम् एव नातिचिरप्रवृत्तमुपभोगक्षमं ग्रीष्मकालम् अधिकृत्य गीयतां तावत् । सम्प्रति हि – [9]

सुभगसलिलावगाहाः पाटलिसंसर्गसुरभिवनवाताः ।
प्रच्छायसुलभनिद्रा दिवसाः परिणामरमणीयाः ।। **1 – 3** ।। [10]

नटी – (तथा गायति) खणचुम्बिआइं[5] भमरेहिं उअ[6] सुउमारकेसरसिहाइं ।

---

[1] अभिनवभारत्यामप्ययमेव पदक्रमो वर्तते, मैथिल-पाठे च । (द्रष्टव्यम् ना. शा. 9-173, पृ. 67)

[2] हविर्घृतमित्यर्थः, पिबतिशब्दसाहचर्याद् ।,"तत्रैक एव जलहुताशनाभिनय उत्तमेनेत्यभिनवगुप्ताः" (ना. शा. 9-173) । अनेनास्य काश्मीर-पाठस्यैव प्राचीनतमत्वं सिध्यति ।

[3] का.-मै.-पाठयोरग्राह्यत्वादत्र बंगीय-पाठस्य ग्रहणं क्रियते ।

[4] अभिज्ञानपूर्विका शकुन्तलेति, अभिज्ञानशकुन्तला । (मध्यमपदलोपी समासः), तामधिकृतं नाटकमपि, अभेदोपचाराद्, अभिज्ञानशकुन्तला नाटकमुच्यते । लुबाख्यायिकाभ्यो बहुलमिति वार्तिकेन तद्धिताण्-प्रत्ययस्य लोपो भविष्यति । द्वितीय-चतुर्थाङ्कौ विहाय निखिलेऽपि नाटकेऽस्या अभिज्ञानस्य चिन्तनं, परीक्षणं, प्रदर्शनञ्च प्रस्तूयते । अस्मिन्नाटके सर्वत्राभिज्ञानपूर्विकैव शकुन्तला निरूप्यते, तद्विभावनीयं बुधैः ।

[5] खणचुम्बिआइं इति शब्द एवान्तरिकी सम्भावना दृश्यते । विश्वामित्रेण मेनकया सहैक एव वारं संयोगो विहितः, तदनन्तरं सा मेनका परित्यक्ता । दुःषन्तेनापि तथैवाचरितम् । एतादृश्यावस्थयैव संततेः पैतृका-ऽभिज्ञानं संशयास्पदं जायते, परिणीतायाश्च जीवनमपि दयनीयं भवति । स्त्रियो दुःखं स्त्रिय एव जानन्ति । अतो दयमाना इति विशेषणं प्रयुक्तम् ।।

[6] का.-पाठे सुअअ (=सुभग) इति वर्तते ।, किन्तु "पश्य" इत्यर्थस्य वाचक उअ इति शब्दो वर्तत इति वररुचिना हेमचन्द्राचार्येण चोक्तम् । (स च गाथाया लक्षणानुसारं सिध्यति ।)

अवदंसअन्ति पमदा दअमाणाओ सिरीसकुसुमाइं ।। **1 – 4** ।।
(क्षणचुम्बुतानि भ्रमरैः पश्य, सुकुमार-केसर-शिखानि ।
अवतंसयन्ति प्रमदा दयमानाः शिरीषकुसुमानि ।। **1 – 4** ।।) [11]

सूत्रधारः – आर्ये, सुष्ठु गीतम् । एष हि – गीतरागावबद्धचित्तवृत्तिरालिखित इव स्थितस्सर्वतो रङ्गः । तदिदानीं कतमत् प्रकरणम्[7] आश्रित्य जनमाराधयावः । [12]

नटी – णं पढमं येव अय्येण आणत्तं जधा ण अहिणाणसउन्तला नाम अपुरवं[8] णाडअं पओएण अधिअरीअदु त्ति । (ननु प्रथममेवार्येणाज्ञप्तं यथा न अभिज्ञानशकुन्तला नामापूर्वं नाटकं प्रयोगेणाधिक्रियताम् इति ।) [13]

सूत्रधारः – भवतु, सम्यग् अनुप्रबोधितोऽहम्, अस्मिन् क्षणे खलु विस्मृतं मया तत् । [14] कुतः –
तवास्मि गीतरागेण हारिणा प्रसभं हृतः ।
(नेपथ्याभिमुखम् अवलोक्य)
एष राजेव दुःषन्त[9]स्सारङ्गेणाऽतिरंहसा ।। **1 – 5** ।। [15]
(इति निष्क्रान्तौ) [16]

।। प्रस्तावना ।। [17]

(ततः प्रविशतः रथयातकेन मृगानुसारी चापहस्तो राजा दुःषन्तस्सूतश्च ।) [18]

सूतः – (राजानं मृगं चावलोक्य) कृष्णसारे ददच्चक्षुस्त्वयि चाधिज्यकार्मुके ।
मृगानुसारिणं साक्षात् पश्यामीव पिनाकिनम् ।। **1 – 6** ।। [19]

राजा – सुदूरमनेन कृष्णसारेण वयमाकृष्टाः । अयमिदानीमपि – [20]
ग्रीवाभङ्गाभिरामं मुहुरनुपतति स्यन्दने दत्तदृष्टिः
पश्चार्द्धेन प्रविष्टः शरपतनभयाद् भूयसा पूर्वकायम् ।
शष्पैरर्धावलीढैः श्रमविततमुखभ्रंशिभिः कीर्णवर्त्मा
पश्योदग्रप्लुतित्वाद् वियति बहुतरं स्तोकमुर्व्यां प्रयाति ।। **1 – 7** ।। [21]
कथमनुपातिन एव मे प्रयत्नप्रेक्षणीयस्संवृत्तः । [22]

सूतः – आयुष्मन्, उद्घातिनी भूमिरियम्, मया रश्मिसंयमनाद् रथस्य वेगो मन्दीकृतः । तेनैष ते मृगो विप्रकृष्टान्तरस्संवृत्तः । सम्प्रति तु समदेशवर्ती, न ते दूरासदो भविष्यति । [23]

राजा – मुच्यन्ताम् अभीषवः । [24]

सूतः – यदाज्ञापयत्यायुष्मान् । (तथा कृत्वा रथवेगान्तरं निरूपयन्) आयुष्मन् पश्य, पश्य । एते, [25]
मुक्तेषु रश्मिषु निरायतपूर्वकाया
निष्कम्पचामरशिखानिभृतोच्चकर्णाः ।
आत्मोद्धतैरपि रजोभिरलंघनीया
धावन्ति ते मृगजवाऽक्षमयेव रथ्याः ।। **1 – 8** ।। [26]

राजा – (सहर्षम्) सूत, कथमतीत्य हरिणं हरयो वर्तन्ते[10] । तथा हि – [27]

---

[7] उच्चतर-समीक्षया समर्थितोऽयं पाठः । तद्यथा- सूत्रधारस्य विस्मृतिर्दुःषन्तस्य विस्मृतिं ध्वनयति ।

[8] हेमचन्द्राचार्यः पूर्वस्य पुरवः (8-4-270) इति सूत्रेण शौरसेन्यां पूर्वशब्दस्य पुरव इत्यादेशो वा भवतीति वृत्तौ लिखित्वा, "अपुरवं नाडयं" इत्युदाहरति ।

[9] का.-पाठे दुष्ष्यन्तः, मै.-पाठे दुष्मन्तः, बं.-पाठे दुःषन्तः, दाक्षि.-देव.-पाठयोः दुष्यन्तः । किन्तु महाभारत-स्यादिपर्वणः शकुन्तलोपाख्याना-(संभवपर्वणि, अ. 62-69)नुरोधादत्र दुःषन्त इति स्वीक्रियते ।

[10] काश्मीर-पाठे " सत्यम् । अतीत्य हरितो हरीन् वर्तन्ते वाजिन " इति । नेयं नाट्यानुकूलाऽप्रासंगिकी च । काव्यत्वयुक्ताप्यभिव्यक्तिरियम् । अतो या मै.-बं.-पाठयोः प्रचलितोक्तिः सात्र स्वीक्रियते ।

यदालोके सूक्ष्मं व्रजति सहसा तद् विपुलताम्
यदर्धे विच्छिन्नं भवति कृतसन्धानमिव तत् ।
प्रकृत्या यद् वक्रं तदपि समरेखं नयनयो-
र्न मे दूरे किञ्चिन्, न च भवति पार्श्वे रथजवात् ।। **1 – 9** ।। [28]

(नेपथ्ये)

भो भो राजन्, आश्रममृगोऽयम्, न हन्तव्यो न हन्तव्यः ।। [29]

सूतः – (आकर्ण्यावलोक्य च) आयुष्मन्, अस्य खलु बाणपथवर्तिनः कृष्णसारङ्गस्यान्तरे तपस्विनोऽवस्थिताः । [30]

राजा – (ससंभ्रमम्) तेन हि, निगृह्यन्ताम् वाजिनः । [31]

सूतः – तथा करोमि । (इत्युक्त्वा रथं स्थापयति) [32]

(ततः प्रविशत्यात्मना तृतीयस्तापसः) [33]

तापसः – (ससंभ्रमं हस्तम् उद्यम्य) राजन्, । आश्रममृगोऽयम्, न हन्तव्यो न हन्तव्यः[11] । [34]

तदाशु कृतसन्धानं
प्रतिसंहर सायकम् ।
आर्तत्राणाय वः शस्त्रं
न प्रहर्तुमनागसि ।। **1 – 10** ।। [35]

राजा – एषः प्रतिसंहृतः । (यथोक्तं करोति) [36]

तापसः – (सहर्षम्) साधु भोः । सदृशमेतत्पुरुवंशजातस्य भवतः । सर्वथा चक्रवर्तिनं पुत्रमवाप्नुहि[12] ।[37]

राजा – (सप्रणामम्) प्रतिगृहीतं तपोधनवचनम् । [38]

तापसः – समिदाहरणाय प्रस्थिता वयम् । एष चास्मद्गुरोः कण्वस्य[13] संसक्तहिमवत् सानु[14]रनुमालिनीतीरमाश्रमो दृश्यते । न चेद् अन्यकार्यातिपातस्तत् प्रविश्यात्र प्रतिगृह्यतामतिथिसत्कारः । [39] अपि च,

धर्म्यास्तपोधनानां प्रतिहतविघ्नाः क्रियास्समालोक्य ।
ज्ञास्यसि कियद् भुजो मे रक्षति मौर्वीकिणाङ्क इति ।। **1 – 11** ।। [40]

राजा – अपि संनिहितोऽत्र कुलपतिः । [41]

तापसः – अद्यैवानवद्याम् दुहितरं शकुन्तलाम् अतिथिसत्काराय संदिश्य, प्रतिकुलं दैवं चास्या शमयितुं सोमतीर्थं[15] गतः । [42]

राजा – (आत्मगतम्) भवतु, तां द्रक्ष्यामि, सा माम् विहितभक्तिं महर्षेः करिष्यति । [43]

तापसः – साधयामस्तावत् । (इति सशिष्यो निष्क्रान्तः) [44]

---

[11] मै.-बं.-दाक्षि.-पाठेष्वितः परं "न खलु न खलु बाणः0" इति ।, (प्रक्षिप्त-श्लोक-संख्या-1)

[12] दाक्षि.-देव.-पाठयोरितः परं "जन्म यस्य पुरोर्वंशे युक्तरूपं0" इति ।, (प्रक्षिप्त-श्लोक-संख्या-2), तथा च नाट्यशास्त्रेऽभिनवभारत्यां "तत्र चक्रवर्तिपुत्रलाभो मुनिजनाशीर्वचनद्वारेण फलस्वभावस्यैवाभिज्ञान-शकुन्तल" इति (अ. 19-22, पृ. 13) कथ्यते ।

[13] का.-पाठे, तदनुसृत्य दाक्षि.-देव.-पाठयोरपि काश्यपेति नामान्तरं प्राप्यते । किन्तु महाभारतानुरोधात् कण्वे-त्ययेव नाम मूलगामी स्यात् ।

[14] का.-पाठे प्रासंगिकता वरीवर्तते ।, मै.-बं.-पाठयो " रस्मद्गुरोः कण्वस्य साधिदैवत इव शकुन्तलये " ति ।, दाक्षि.-देव.पाठयोः संक्षिप्तीकृतः पाठः " कण्वस्य कुलपतेरि " ति ।

[15] का.-पाठे प्रभासमित्यधिकं प्राप्यते ।

राजा – सूत, चोदयाश्वान् । पुण्याश्रमदर्शनेन तावदात्मानं पुनीमहे । [45]

सूतः – यदाज्ञापयत्यायुष्मान् । (परिक्रम्य रथयातकं निरूपयति) [46]

राजा – (समन्ताद् विलोक्य) सूत, अकथितोऽपि ज्ञायत एव यथायमाभोगस्तपोवनस्येति । [47]

सूतः – कथमिति । [48]

राजा – न पश्यति भवान् । इह हि – [49]

नीवाराः शुकगर्भकोटरमुखभ्रष्टास्तरूणाम् अधः
प्रस्निग्धाः क्वचिद् इङ्गुदीफलभिदस्सूच्यन्त एवोपलाः ।
विश्वासोपगमाद् अभिन्नगतयः शब्दं सहन्ते मृगा-
स्तोयाधारपथाश्च वल्कलशिखा निष्यन्दलेखाङ्किताः ॥ **1 – 12** ॥ [50]

सूतः – सर्वम् उपपन्नम् । [51]

राजा – (स्तोकमन्तरं गत्वा)

कुल्याम्भोभिः प्रसृतचपलैः शाखिनो धौतमूला
भिन्नो रागः किसलयरुचामाज्यधूमोद्गमेन ।
एते चार्वागुपवनभुवि च्छिन्नदर्भाङ्कुरायां
नष्टाशङ्का हरिणशिशवो मन्दमन्दं चरन्ति ॥ **1 – 13** ॥ [52]

मा तपोवनवासिनामुपरोधो भूत् । तद् एतावत्येव रथं स्थापय, यावद् अवतरामि । [53]

सूतः – धृताः प्रग्रहाः, अवतरत्वायुष्मान् । [54]

राजा – (अवतीर्य) विनीतवेषेण प्रवेश्यानि तपोवनानि । तदिदमाभरणं तावद् प्रगृह्यताम् । (इति सूतायाभरणं दत्त्वा धनुश्चोत्सृज्य) सूत, यावदहम् उपास्य महर्षीन् उपावर्ते, तावद् आर्द्रपृष्ठाः क्रियन्तां वाजिनः । [55]

सूतः – यदाज्ञापयत्यायुष्मान् । (इति निष्क्रान्तः) [56]

राजा – (परिक्रम्यावलोक्य च) इदमाश्रमद्वारं, यावत् प्रविशामि । [57]

(प्रविश्य निमित्तं सूचयन्) (विमृशति) [58]

शान्तमिदम् आश्रमपदं, स्फुरति च बाहुः, कुतः फलमिहास्य ।
अथ वा, भवितव्यानां द्वाराणि भवन्ति सर्वत्र ॥ **1 – 14** ॥ [59]

(नेपथ्ये)

इदो इदो पिअसही । (इत इतः प्रियसखी) [60]

राजा – (कर्णं दत्त्वा) अये दक्षिणेन कुसुमपादपवीथीमालापम् इव श्रूयते, यावदत्र गच्छामि । [61]

(परिक्रम्यावलोक्य च) एतास्तपस्विकन्यकास्स्वप्रमाणानुरूपैस्सेचनघटकैर्बालपादपान् पयो दातुम् इत एवाभिवर्तन्ते । (निपुणं निर्वर्ण्य) अहो मधुरम् आसाम् दर्शनम् । [62]

शुद्धान्तदुर्लभमिदं वपु-
राश्रमवासिनो यदि जनस्य ।
दूरीकृताः खलु गुणैरु-
द्यानलता वनलताभिः[16] ॥ **1 – 15** ॥ [63]

---

[16] का.-पाठे श्लोकोऽयं केवलां शकुन्तलामेवोद्दिश्य प्रस्तूयते । तन्न समीचीनम्, यतो हि वनलताभिरिति विशेषणेन तिस्रः सख्य एवोद्दिष्टा इति सिध्यति । अत्र प्राचीनतरा मैथिल-पाठयोजना सुसंगता प्रतिभाति । का.-पाठे वल्कलशिथिलीकरणस्य स्थानान्तरणं प्राप्यते । विषयेऽस्मिन् The Original S'akuntala, 1925 इत्यत्र प्रदर्शितं डॉ. बेलवालकरमहोदयानां मतं चिन्त्यमेव ।

तद् यावदेनां छायामाश्रित्य प्रतिपालयामि ।

(विलोकयन् स्थितः) [64]

(ततः प्रविशति यथोक्तव्यापारा सह सखीभ्यां शकुन्तला) [65]

एका – हला सउन्तले, तइत्तो वि खु ताद कस्सवस्स अस्सम-रुक्खआ पिअ त्ति तक्केम्ह, जेण णवमालिआ पेलवावि तुममेदस्स आलवालपूरणे णिउत्ता । (हले शकुन्तले, त्वत्तोऽपि खलु तातकण्वस्याश्रम-वृक्षकाः प्रिया इति तर्कयामो, येन नवमालिका-पेलवापि त्वमेतस्यालवालपूरणे नियुक्ता ।) [66]

शकुन्तला –हला, ण केअलं तादणिओओ त्ति । ममावि एदेसुं सहोदरसिणेहो । (सखि, न केवलं तातनियोग इति । ममापि एतेषु सहोदरस्नेहः ।) [67]

(वृक्षसेकं नाटयति) [68]

द्वितीया – हले सउन्तले, उदअं लम्भिदा गिम्हकालकुसुमदाइणो गुम्मआ । दाणिं अदिक्कन्तसमए वि रुक्खए सिञ्चम्ह । तसुणो अणहिसन्धिदपुरवो धम्मो भविस्सदि । (हले शकुन्तले, उदकं लम्भिता ग्रीष्मकालकुसुमदायिनो गुल्मकाः । इदानीमतिक्रान्तसमयेऽपि वृक्षकान् सिञ्चामः । तस्माद् अनभिसन्धितपूर्वो धर्मो भविष्यति ।) [69]

शकुन्तला – हला प्रियंवदे, रमणीयं मन्त्रयसि ।

(इति वृक्षसेचनं नाटयति) [70]

राजा – (निर्वर्ण्य सकौतुकम्) कथमियं सा कण्वदुहिता । अहो असाधुदर्शी तत्रभवान् कण्वः, य इमां वल्कलधारणे नियुङ्क्ते । [71]

इदं किलाव्याजमनोहरं वपु-
स्तपःक्षमं साधयितुं य इच्छति ।
ध्रुवं स नीलोत्पलपत्रधारया
समिल्लतां छेत्तुम् ऋषिर्व्यवस्यति ।। **1 – 16** ।। [72]

भवतु, पादपान्तरित एवैनां विश्वस्तभावां पश्यामि । [73]

शकुन्तला – हला अणसूए, अदिपिणद्धेण पिअंवदाए वक्कलेण णिअन्तिदाम्हि । ता सिढिलेहि दाव णं । (हले अनसूये, अतिपिनद्धेन प्रियंवदया वल्कलेन नियन्त्रितास्मि, तच्छिथिलय तावदेनम् ।) [74]

(अनसूया शिथिलयति) [75]

प्रियंवदा – (सस्मितम्) पओहरवित्थारइत्तुअं अप्पणो जोव्वणं उवालह । (पयोधरविस्तारयितृकम् आत्मनो यौवनम् उपालभस्व ।) [76]

राजा – सम्यगियम् आह शकुन्तला[17] । [77]

इदमुपहितसूक्ष्मग्रन्थिना स्कन्धदेशे
स्तनयुगपरिणाहाच्छादिना वल्कलेन ।
वपुरभिनवमस्याः पुष्यति स्वां न शोभां
कुसुममिव पिनद्धं पाण्डुपत्रोदरेण[18] ।। **1 – 17** ।। [78]

अथवा[19], कामम् अप्रतिरूपम् अस्य वयसो वल्कलम् न पुनरलंकारश्रियं न पुष्यति । [79] कुतः –

---

[17] मूलपाठेऽत्र शकुन्तलेति भवितुमर्हतीति मे मतिः । यतो ही"दमुपहितसूक्ष्म0" इति श्लोकेन सहैव शकुन्तलायाः पूर्वोक्त्याः (55) सम्बन्धो वर्तते । एवञ्च, नायकः शकुन्तलां प्रति समाकृष्टः, तस्मादपि स तस्या एव वचनं समर्थयेदिति प्रसंगोचितं प्रतिभाति ।

[18] अस्य श्लोकस्य मौलिकता कथं सिध्यतीति चेत्, पञ्चमाङ्के दुष्यन्तः शकुन्तलायाः कृते "मध्ये तपोधनानां किसलयमिव पाण्डुपत्राणामि"ति यामोपमां प्रयोजयति, तदेवात्रान्तःसाक्ष्यमित्यवलोकनीयम् ।

सरसिजमनुविद्धं शैवलेनापि रम्यं
मलिनपि हिमांशोर्लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति ।
इयमधिकमनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी
किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम्[20] ।। **1 – 18** ।। [80]

शकुन्तला – (अग्रतोऽवलोक्य) सहि, एस वादेरिदपल्लवाङ्गलीहिं किं पि वाहरदि विअ मं बउलरुक्खओ / केसररुक्खओ । ता जाव णं सम्भावेमि . (तथा करोति) (सखि, एष वातेरितपल्लवा-ङ्गुलीभिः किमपि व्याहरतीव माम् बकुलवृक्षकः[21] (अथवा केसरवृक्षकः) । तत् यावदेनम् सम्भावयामि ।) [81]

प्रियंवदा – हला सउन्तले, इध ज्जेव मुहुत्तअं चिट्ठ । (सखि शकुन्तले, इहैव मुहूर्तकं तिष्ठ ।) [82]

शकुन्तला – किं णिमित्तं । (किं निमित्तम् ।) [83]

प्रियंवदा – तए समीवट्ठिदाए लदासणाहो विअ मे अअं पडिभादि बउलरुक्खओ / केसररुक्खओ । (त्वया समीपस्थितया लतासनाथ इव मे अयं प्रतिभाति बकुलवृक्षकः (केसरवृक्षकः) । [84]

शकुन्तला – अदो ज्जेव तुमं पिअंवदे त्ति वुच्चसे । (अत एव त्वम् प्रियंवदा उच्यसे ।) [85]

राजा – प्रियमपि तथ्यमाहैषा । अस्याः खलु, [86]

अधरः किसलयरागः कोमलविटपानुकारिणौ बाहू ।
कुसुममिव लोभनीयं यौवनम् अङ्गेषु सन्नद्धम् ।। **1 – 19** ।। [87]

अनसूया – हला सउन्तले, इअं स्वअंवरवहूस्सहआरस्स तए किदणामधेअस्स वणदोसिणो णवमालिका । (हले शकुन्तले, इयं स्वयंवरवधूः सहकारस्य, त्वया कृतनामधेयस्य वनतोषिणः, नवमालिका ।) [88]

शकुन्तला – (उपगम्यावलोक्य च) हला रमणीये काले इमस्स पादवमिहुणस्य वदिअरो संवुत्तो । इअं णवकुसुमजोव्वणा अअं वि बद्धफलदाए उवभोअक्खमो सहआरो । (हले, रमणीये काले अस्य पादपमिथुनस्य व्यतिकरस्संवृत्तः, इयं नवकुसुमयौवना, अयमपि बद्धफलतयोपभोगक्षम-स्सहकारः ।) (पश्यन्ती तिष्ठति) [89]

प्रियंवदा – हला अणसूए, जाणासि किं णिमित्तं सउन्तला वणदोसिणं अधिमेत्तं पेक्खदि त्ति । (हले अनसूये, जानासि किं निमित्तं शकुन्तला वनतोषिणम् अधिमात्रं प्रेक्षत इति ।) [90]

अनसूया – ण खु विभावेमि । (न खलु विभावयामि ।) [91]

प्रियंवदा – जधा वनदोसिणा अणुसदिसेण पादपेण सङ्गदा णवमालिआ । अवि णाम एवं अहम्पि अत्तणो अणुरूवं वरं लभेमि त्ति । (यथा वनतोषिणानुसदृशेन पादपेन संगता नवमालिका, अपि नाम एवमहम् अप्यात्मनोऽनुरूपं वरं लभ इति ।) [92]

---

[19] कालिदासः पक्षान्तरनिरूपणावसरे"ऽथवे"ति निपातमनेकेषु स्थानेषु प्रयोजयति । यथा- "अथवा कृत-वाग्द्वारे वंशेस्मिन्0" (रघुवंशम्-1) । अतोऽत्र वल्कलविषये मतिद्वैविध्याद् अथवा-शब्देन पक्षान्तरो-पस्थापयति नायकः । स चान्तरिक-सम्भावनया युक्तः प्रतीयते । तेनात्र का.-पाठान्निष्कासितोऽपि1-17 इति श्लोकः स्वीकार्यो भवति, मैथिल-पाठानुरोधात् ।

[20] कुत्रचिदितः परम्, अपि चेति निपातेन "कठिनमपि मृगाक्ष्या वल्कलं कान्तरूपं0" इति श्लोकोऽप्यवतार्यते ।, (प्रक्षिप्त-श्लोक-संख्या-3)

[21] कण्वाश्रमस्य प्राङ्गणे द्वौ वृक्षौ (बकुलः वा केसरः, अपरश्च सहकारः), लता त्वेकैव, सा च नवमालिका ।, शकुन्तलायाः संनिधिना बकुलवृक्षो लतासनाथः प्रतीयते । सहकारेण सह तु नवमालिका स्वयंवरवधूत्वेन संलग्नैव ।

शकुन्तला – एस णूणं अत्तणो दे चित्तगदो मणोरहो। (एष नूनम् आत्मनस्ते चित्तगतो मनोरथः।) [93]
(इति नवमालिकां सिक्त्वा,[22] कलशम् आवर्जयति)[23] [94]

राजा – अपि नाम कुलपतेरियम् असवर्णक्षेत्रसम्भवा स्यात्। अथ वा, [95]

असंशयं क्षत्रपरिग्रहक्षमा यदेवम्
अस्याम् अभिलाषि मे मनः।
सतां हि सन्देहपदेषु वस्तुषु
प्रमाणमन्तःकरणप्रवृत्तयः॥ **1 – 20**॥ [96]

तथापि तत्त्वत एनां वेदितुमिच्छामि। [97]

शकुन्तला – (भ्रमरसम्पातं नाटयति) अम्हो, सलिलसेअसंवुत्तो णवमालिअं उज्झिअ वअणं मे महुअरो अणुवत्तदि। (अहो सलिलसेकसंवृत्तो नवमालिकामुज्झित्वा वदनं मे मधुकरोऽनुवर्तते।) [98]
(भ्रमरबाधां निरूपयति) [99]

राजा – (विलोक्य सस्पृहम्[24]) [100]

यतो यतः षट्चरणोऽभिवर्तते ततस्ततः प्रेरितवामलोचना।
विवर्तितभ्रूरियमद्य शिक्षते भयाद् अकामापि हि दृष्टिविभ्रमम्॥ **1 – 21**॥ [101]

अपि च[25], (सासूयमिव) [102]

चलापाङ्गां दृष्टिं स्पृशसि बहुशो वेपथुमतीं,
रहस्याख्यायीव स्वनसि मृदु कर्णान्तिकगतः।
करौ[26] व्याधुन्वत्याः पिबसि रतिसर्वस्वमधरं
वयं तत्त्वान्वेषान् मधुकर हतास्त्वं खलु कृती[27]॥ **1 – 22**॥ [103]

शकुन्तला – परित्ताअध मं इमिणा कुसुमपाडच्चरेण अभिभूअमाणं। (परित्रायध्वं मामनेन कुसुमपाटच्चरेणाभिभूयमानाम्।) [104]

उभे – (विहस्य) केवअं परित्ताणे दुस्सन्तं आकन्द। राअरक्खिदाणि खु तवोवणाणि होन्ति। (केवलं परित्राणे दुःषन्तम् आक्रन्द। राजरक्षितानि खलु तपोवनानि भवन्ति।) [105]

राजा – अवसरः खल्वयं ममात्मानं दर्शयितुम्। (उपसृत्य) न भेतव्यम्, न भेत्तव्यम्..... ।[106]
(इत्यर्धोक्तेऽपवार्य) [107]
एवं राजाहमिति प्रतिज्ञातं भवति। भवत्वतिथिसमुचिताचारसत्कारम् अवलम्बिष्ये। [108]

शकुन्तला – (सत्रासम्) ण एसो मे पुरदो अइधट्ठो विरमदि। ता अण्णदो गमिस्सं। (इति पटान्तरेण स्थित्वा सदृष्टिक्षेपम्) हद्धी कधं इतो वि मं अणुसरदि। [109] (नैष मे पुरतोऽतिधृष्टो विरमति। तदन्यतो गमिष्यामि। हा धिक्, कथम् इतोऽपि मामनुसरति।) [110]

---

[22] अत्र शब्दद्वयं विनिवेषनीयम्।, कलशमावर्जयति, भूमिं स्थापयतीत्यर्थः। तत एव "करौ व्याधुन्वत्याः0" इत्यस्य संगतिः स्यात्।

[23] इतः परं माधवीलताया निर्देशो वर्तते, स च प्रक्षिप्त एव। यतो हि, भ्रमरबाधारम्भे विलम्बं जनयति।

[24] का.-दाक्षि.-देव.-पाठेषु संक्षेपीकरणास्याशयेन "यतो यतः षट्चरणो0" श्लोकः निष्कासितः। किन्तु सस्पृहमिति रंगसूचनयावतारितेऽस्मिन् श्लोके नायको नायिकाया दृष्टिविभ्रमसौन्दर्यं पश्यति, तच्च निरूपति।

[25] अनेन समुच्चयार्थकेन निपातयुग्मेन भ्रमरबाधा-प्रसंगस्य द्वितीयं पार्श्वम् आलिख्यते। अतो द्वितीयेन श्लोकेन नायको भ्रमरस्यासूयां करोति, तस्य निरूपणं क्रियते। (प्रसंगस्यास्य द्विपार्श्विनीं रमणीयतामालिखितुम् "अपि चे"ति निपातस्य प्रयोगश्चरितार्थो भवति, श्लोकद्वयस्य चानिवार्यता मौलिकता च सिध्यति।)

[26] ध्वन्यालोके (2-22) द्विवचनान्तः पाठः स्वीक्रियते, शारदा-मातृकासु च।

[27] बं.-पाठे इतः परं "लोलां दृष्टिमितस्ततो...वाद्यैर्विना नर्तकी"त्यपि श्लोकः। (प्रक्षिप्त-श्लोक-क्रमांक- 4)

राजा – (सत्वरम् उपेत्य) [111]

कः पौरवे वसुमतीं[28] शासति शासितरि दुर्विनीतानाम् ।
अयमाचरत्यविनयं मुग्धासु तपस्विकन्यासु ।। **1 – 23** ।। [112]

(सर्वा राजानं दृष्ट्वा किञ्चिदिव सम्भ्रान्ताः ।) [113]

अनसूया – ण खु किञ्चि अच्चाहिदं । इअं पुणो ण पिअसही महुअरेण आउलीकिअमाणा कादरीभूदा । (न खलु किञ्चिदत्याहितम् । इयं पुनर्नः प्रियसखी मधुकरेणाकुलीक्रियमाणा कातरीभूता ।) (शकुन्तलां दर्शयति) [114]

राजा – (शकुन्तलामुपेत्य) भवति, अपि तपस्ते वर्धते । [115]

(शकुन्तला ससाध्वसाऽवनतमुखी अवचना तिष्ठति) [116]

अनसूया – (राजानं प्रति) दाणिं अदिधिविसेसलाभेण । (इदानीमतिथिविशेषलाभेन ।) [117]

प्रियंवदा – साअदं अय्यस्स । (स्वागतमार्याय[29]) [118]

अनसूया – हला सउन्तले, गच्छ तुमं उडआदो फलमिस्सं उवाहर, पादोदअं अत्थिय्येव । (हले शकुन्तले, गच्छ त्वं, उटजतः फलमिश्रम् उपाहर, पादोदकम् अस्त्येव ।) [119]

राजा – भवतु, सुनृतयैव वाचा कृतमातिथ्यम् । [120]

प्रियंवदा – तेण इमस्सिं दाव पादवच्छाआसीअलाए सत्तवण्णवेदिआए अय्यो उपविसिअ मुहुत्तअं परिस्समं अवणेदु । (तेनास्मिन् तावत् पादपछायाशीतलायां सप्तपर्णवेदिकायाम् आर्य उपविश्य मुहूर्तं परिश्रमम् अपनयतु ।) [121]

राजा – ननु यूयम् अप्यनेन धर्मकर्मणा परिश्रान्ताः, तन्मुहूर्तम् उपविशत । [122]

प्रियंवदा – (जनान्तिकम्) हला सउन्तले, उइदं णो अदिधिपय्युवासणं, ता इध उवविसम्ह । (सर्वा उपविशन्ति) (हले शकुन्तले, उचितं नोऽतिथि-पर्युपासनम् । तद् इहोपविशामः ।) [123]

शकुन्तला – (आत्मगतम्) किं णु खु इमं पेक्खिअ तवोवणविरोधिणो विआरस्स गमणीअम्हि संवुत्ता । (किं नु खल्विमं प्रेक्ष्य तपोवनविरोधिनो विकारस्य गमनीयास्मि संवृत्ता ।) [124]

राजा – (सर्वा विलोक्य) अहो समानवयोरूपरमणीयं सौहार्दं भवतीनाम् । [125]

प्रियंवदा – (जनान्तिकम्) को णु खु एसो महुरगम्भीराकिदी, महुरं पिअं आलवन्तो । पहवन्तं दक्खिणं विअ करेदि । (को नु खल्वेष मधुरगम्भीराकृतिर्मधुरं प्रियमालपन् प्रभवन्तं दाक्षिण्यमिव करोति ।) [126]

अनसूया – (जनान्तिकम् एव) सहि, ममावि कोदूहलम् अत्थि य्येव । ता पुच्छिस्सं दाव णं । (प्रकाशम्) अय्यस्स णो महुरालावजणिदो विसम्भो मन्तावेदि । कदमं पुण अय्यो वण्णं अलंकरेदि । किं णिमित्तं वा सुउमारेण अय्येण तवोवणागमणपरिसमस्स अत्ता पत्थिकिदो । (सखि, ममापि कौतूहलम् अस्त्येव । तत् प्रक्ष्यामि तावदेनम् । आर्यस्य नो मधुरालापजनितो विस्रम्भो मन्त्रयति । कतमं पुनरार्यो वर्णम् अलंकरोति[30] । किं निमित्तं वा सुकुमारेण आर्येण तपोवना-गमनपरिश्रमस्यात्मा पात्रीकृतः[31] ।) [127]

---

[28] काश्मीर-पाठे राज्ञो पूर्वपरिणीतायाः कुलप्रभेति यन्नाम वर्तते, तदेव मौलिकमित्यनेन शब्देन सिध्यति । यदि मैथिल-पाठानुसारेण पूर्वपरिणीता राज्ञी वसुमतीति नामधेया स्यात्, तर्हि श्लोकेऽस्मिन् तस्या नाम कथं दुःषन्त प्रयोजयेदिति प्रश्नो जायते । अतः काश्मीर-पाठ एव ज्यायान्, विरोधाभावात् ।

[29] विक्रमोर्वशीयस्य "अये गन्धर्वराजः !, स्वागतं प्रियसुहृदे" (अंक-1) इति प्रयोगदर्शनाच्चतुर्थी करणीया ।

[30] पूर्वं दुःषन्तेन "अपि नाम कुलपतेरियम् असवर्ण-क्षेत्रसम्भवा स्यादिति" भणितम् । तेन आन्तरिक-सम्भानया प्रश्नस्यास्येयमेवानुपूर्वी स्यादित्यनुमीयते । न तु "कतम आर्येण राजर्षेर्वंशोऽलंक्रियत" इति ।

[31] प्रसंगेऽस्मिन् प्रश्नद्वयमेव पर्याप्तम् । "कतमो वा विरहपर्युत्सुकजनः कृतो देश" इति तृतीयप्रश्नः प्रक्षिप्त एव ।

शकुन्तला – (आत्मगतम्) हिअअ, मा उत्तम्म जं तए चिन्तिदं तं अणसूआ मन्तेदि । (हृदय, मा उत्ताम्य, यत् त्वया चिन्तितं तद् अनसूया मन्त्रयति ।) [128]

राजा – भवति[32], वेदविदस्मि पौरवेण राज्ञा धर्माधिकारे नियुक्तः । पुण्याश्रमदर्शनप्रसंगेन[33] धर्मारण्यम् इदमायातः । [129]

अनसूया – सणाधा धम्मआरिणो । (सनाथा धर्मचारिणः ।) [130]

(शकुन्तला शृङ्गारलज्जां निरूपयति) [131]

सख्यौ – (उभयोराकारं विदित्वा) (जनान्तिकम्) हला सउन्तले, जदि अज्ज तादो इध सण्णिहिदो भवे । (हले शकुन्तले, यद्यद्य तात इह संनिहितो भवेत् ।) [132]

शकुन्तला – (सभ्रूभेदम्) तदो किं भवे । (ततः किं भवेत् ।) [133]

उभे – तदो इमं अदिधिं जीविदसव्वस्सेणावि कदत्थं करे । (तत इमम् अतिथिम् जीवितसर्वस्वेनापि कृतार्थं कुर्यात् ।) [134]

शकुन्तला – (सरोषम्) इं अवेध, किं पि हिदए कदुअ मन्तेध, ण खु सुणिस्सं । (परावृत्य तिष्ठति) (युवाम् अपेतम् । किमपि हृदये कृत्वा मन्त्रयथः । न खलु श्रोष्यामि ।) [135]

राजा – वयमपि तावद् भवत्यौ सखीगतं पृच्छामः । [136]

उभे – अय्य, अणुग्गहेवि अब्भत्थणा । (आर्य, अनुग्रहेऽप्यभ्यर्थना ।) [138]

राजा – भगवान् काश्यपः शाश्वते ब्रह्मणि वर्तते, इयं च वां सखी तदात्मजेति कथमेतत् । [139]

अनसूया – सुणादु अय्यो । अत्थि कोसिओ त्ति गोत्तणामधेओ महाप्पहावो राएसी । (शृणोत्वार्यः, अस्ति कौशिक इति गोत्रनामधेयो महाप्रभावो राजर्षिः ।) [140]

राजा – प्रकाशस्तत्रभवान् । [141]

अनसूया – तं सहीअणे पहवं अवगच्छ । उज्झिअसरीरसंरक्खणादीहिं उण तादकस्सवो से पिदा । [142] (तं सखीजने प्रभवम् अवगच्छ । उज्झितशरीरसंरक्षणादिभिः पुनस्तातकाश्यपोऽस्याः पिता ।)

राजा – उज्झितशब्देन जनितं मे कुतूहलम् । तदामूलाच्छ्रोतुमिच्छामि । [143]

अनसूया – पुराकिल तस्स कोसिअस्स राएसिणो उग्गे तवसि वट्टमाणस्स किं वि जादसंकेहिं देवेहिं मेणआ णाम अच्छरा णिअमविग्घकारिणि पहिदा । (पुराकिल तस्य कौशिकस्य राजर्षेरुग्रे तपसि वर्तमानस्य किमपि जातशङ्कैर्देवैर्मेनका नामाप्सरा नियमविघ्नकारिणी प्रहिता ।) [144]

राजा – अस्त्येतद् अन्यसमाधिभीरुत्वं देवानाम्, ततस्ततः । [145]

अनसूया – तदो वसन्तोदयसमए तए उम्मादइत्तअं रूवं पेक्खिअ .... (इत्यर्धे लज्जया विरमति ।) [146] (ततो वसन्तोदयसमये तस्या उन्मादयितृकं रूपं प्रेक्ष्य ...) [147]

राजा – भवतु, पुरस्ताद् अवगम्यत एव । अप्सरस्सम्भवैषा । [148]

अनसूया – अध इं । (अथ किम् ।) [149]

राजा – युज्यते ।

मानुषीषु कथं वा स्याद् अस्य रूपस्य सम्भवः ।
न प्रभातरलं ज्योतिरुदेति वसुधातलात् ।। **1 – 24** ।। [150]
(शकुन्तलाऽधोमुखी तिष्ठति) [151]

---

[32] इतः पूर्वम् स्वगतोक्तिरूपेण "कथमिदानीम् आत्मानं निवेदये । कथं वात्मपरिहारं करोमि । भवत्वेवं तावदेनां वक्ष्ये । " इति वाक्यमपि प्राप्यते, तच्च प्रक्षिप्तं प्रतिभाति ।

[33] अत्र शब्दोऽयं मैथिल-पाठाद् गृहीतः, आश्रमप्रवेशस्य पूर्वोक्तं प्रयोजनमिदमेवासीत् ।

राजा – (आत्मगतम्) लब्धावकाशो मे मनोरथः । किन्तु परिहासोदाहृतां वरप्रार्थनां श्रुत्वापि न श्रद्-दधते कातरं मे मनः । [152]

प्रियंवदा – (शकुन्तलां सस्मितं विलोक्य) (नायकाभिमुखी) पुणो वि वत्तुकामो अय्यो । (पुनरपि वक्तुकाम आर्यः ।) (शकुन्तला सखीम् अङ्गुल्या तर्जयति) [153]

राजा – सम्यगुपलक्षितं भवत्या । अस्ति नस्सच्चरितश्रवणलोभाद् अन्यद् प्रष्टव्यम् । [154]

प्रियंवदा – तेण हि विआरिदेण अलम् । णियन्तणाजुत्तो तवस्सिअणो । (तेन हि, विचारितेनालम् । नियन्त्रणायुक्तस्तपस्विजनः ।) [155]

राजा – उपपद्यते । भवति, सखीं ते विज्ञातुमिच्छामि । [156]

वैखानसं किम् अनया व्रतम् आप्रदानाद्
व्यापाररोधि मदनस्य निषेवितव्यम् ।
अत्यन्तम् आत्मसदृशेक्षण-वल्लभाभि-
राहो निवत्स्यति समं हरिणाङ्गनाभिः ।। **1 – 25** ।। [157]

प्रियंवदा – अय्य, धम्माचरणे वि एस पराधीणो जणो । गुरुणो उण से अणुरूववरपडिवादणे संकप्पो । (आर्य, धर्माचरणेऽप्येष पराधीनो जनः । गुरोः पुनरस्या अनुरूपवरप्रदाने सङ्कल्पः ।) [158]

राजा – न खलु दुर्लभैषा प्रार्थना । (आत्मगतम्) [159]

भव हृदय साभिलाषं,
सम्प्रति सन्देहनिर्णयो जातः ।
आशङ्कसे यदग्निं तद्
इदं स्पर्शक्षमं रत्नम् ।। **1 – 26** ।। [160]

शकुन्तला – (सरोषमिव) अणसूए, गमिस्से अहं । (अनसूये, गमिष्याम्यहम् ।) [161]

अनसूया – किं णिमित्तं । (किं निमित्तम् ।) [162]

शकुन्तला – इमं असम्बद्धालाविणीं पियंवदां अय्याए गोदमीए णिवेदयिस्से । (इत्युतिष्ठति) (इमाम् असम्बद्धालापिनीं प्रियंवदाम् आर्यायै गौतम्यै निवेदयिष्ये ।) [163]

अनसूया – सहि, ण जुत्तं अस्समवासिणो जणस्स अकिदसक्कारं अदिधिविसेसं उज्झिअ सच्छन्ददो गमणं । (सखि, न युक्तम् आश्रमवासिनो जनस्य अकृतसत्कारमतिथिविशेषमुज्झित्वा स्वच्छन्दतो गमनम् ।) [164]

(शकुन्तला न किञ्चिद् उक्त्वा प्रस्थितैव ।) [165]

राजा – (अपवार्य) कथं गच्छति । (इत्युत्थाय जिघृक्षुरिवेच्छां[34] निगृह्य) अहो चेष्टाप्रतिरूपिका कामिनो मनोवृत्तिः । अहं हि, [166]

अनुयास्यन् मुनितनयां
सहसा विनयेन वारितप्रसरः ।
स्थानाद् अनुच्चलन्नपि
गत्वैव पुनः प्रतिनिवृत्तः ।। **1 – 27** ।। [167]

प्रियंवदा – (शकुन्तलामुपसृत्य) हला चण्डि, ण दे जुत्तं गच्छिदुं । (हले चण्डि, न ते युक्तं गन्तुम् ।) [168]

शकुन्तला – (सभ्रूभङ्गम्) किं ति । (किमिति) [169]

प्रियंवदा – रुक्खसेचके दुए मे धारयसि । (वृक्षसेचनके द्वे मे धारयसि ।) तेहिं दाव अत्ताणअं मोआवेहि । तदो गमिस्ससि । (बलादेनां निवारयति) (ताभ्यां तावद् आत्मानं मोचय । ततो गमिष्यसि ।) [170]

[34] मैथिल-पाठादियं रंगसूचना स्वीकृता ।, काश्मीर-पाठेऽत्र सरलीकरणस्याशयो दृश्यते ।

राजा – भद्रे, वृक्षसेचनकाद् एव परिश्रान्ताम् अत्रभवतीं लक्षये। तथा ह्यस्याः, [171]

स्रस्तांसावतिमात्रलोहित-करौ बाहू घटोत्क्षेपणाद्
अद्यापि स्तनवेपथुं जनयति श्वासः प्रमाणाधिकः।
बद्धं कर्णशिरीषरोधि वदने घर्माम्भसां जालकं,
बन्धे स्रंसिनि चैकहस्तयमिताः पर्याकुला मूर्धजाः ॥ **1 – 28** ॥ [172]

तदहमेनाम् अनृणां त्वयि करोमि। (स्वम् अङ्गुलीयं प्रयच्छति) [173]

(उभे नाममुद्राक्षराण्यनुवाच्य परस्परं मुखमवलोकयतः) [174]

राजा – अलम् अस्माकम् अन्यथा सम्भावितेन। राज्ञः परिग्रहोऽयम्। [175]

प्रियंवदा – तेण हि णारहदि इदं अण्णो अङ्गुलीकविओगकारणं। अय्यस्स तुह वअणेण एसा अरिणा येव मम। (तेन हि नार्हतीदमन्योऽङ्गुलीयक-वियोगकारणम्। आर्यस्य तव वचनेनैषाऽनृणैव मम।) [176]

प्रियंवदा – (परिवृत्यापवार्य च) हला सउन्तले, मोइदासि अणुअम्पिणा अय्येण, अह वा महाणुभावेण। किदण्णा दाणिं होहिसि। (हले शकुन्तले, मोचितास्यनुकम्पिनार्येणाथ वा महानुभावेन। कृतज्ञेदानीं भविष्यसि।) [177]

शकुन्तला – (अपवार्य निःश्वस्य) ण इदं विसुमरिस्सदि जदि अत्तणो पहवे। (न इदं विस्मरिष्यते, यद्यात्मनः प्रभवामि।) [178]

प्रियंवदा – हला, किं दाणिं सम्पदं जदि ण गच्छसि। (हला, किमिदानीं साम्प्रतं यदि न गच्छसि।) [179]

शकुन्तला – दाणिं किं पि तए वत्तव्वं। जदा रोइस्सदि तदा गमिस्सं। (इदानीं किमपि त्वया वक्तव्यम्। यदा मे रोचिष्यते तदा गमिष्यामि।) [180]

राजा – (शकुन्तलां विलोकयन् आत्मगतम्) किं नु खलु यथा वयम् अस्याम्, एवम् इयमपि अस्मान् प्रति स्यात्। अथवा लब्धगाधा मे प्रार्थना। कुतः – [181]

वाचं न मिश्रयति यद्यपि मद्वचोभिः
कर्णं ददात्यवहिता मयि भाषमाणे।
कामं न तिष्ठति मदाननसम्मुखीयं
भूयिष्ठमन्यविषया न तु दृष्टिरस्याः ॥ **1 – 29** ॥ [182]

(**नेपथ्ये**[35]) [183]

भो भोस्तपस्विनः, पर्याकुलयन् स्त्रीवृद्धकुमारानेष हस्ती संप्राप्तः। [184]

तीव्रापातप्रतिहततरुस्कन्धलग्नैकदन्तः
प्रौढासक्तव्रततिवलयासङ्गसञ्जातपाशः।
मूर्तो विघ्नस्तपस इव नो भिन्नसारंगयूथो
धर्मारण्यं विरुजति गजस्स्यन्दनालोकभीतः ॥ **1 – 30** ॥ [185]

(सर्वाः कर्णं दत्त्वा ससंभ्रमम् उत्तिष्ठन्ति) [186]

राजा – (आत्मगतम्) धिक् कथमपराद्धस्तपस्विनामस्मि। भवतु, प्रतिगच्छामि तावत्। [187]

सख्यौ – अय्य इमिणा अक्कन्दिदेण पय्याउलम्ह। ता अणुजाणिहि णो उडअगमणाअ। (आर्य, अनेना-

---

[35] इतः पूर्वम्, यद्यपि "भोस्तपस्विनः, तपोवनसत्त्वरक्षायै सज्जीभवन्त्वि"ति। ततश्च "तुरगखुरहतस्तथा हि रेणुरिति" श्लोकसहितः नेपथ्योक्तिरूपः पाठ्यांशः सर्वासु वाचनासु/रंगावृत्तिषु प्राप्यते। तथापि सः प्रक्षिप्त एव स्यात्। स्मर्तव्यमत्र यत्तपोवनसत्त्वरक्षायै नास्ति काप्यावश्यकता, यतो हि राजा तु पूर्वमेव "आश्रममृगोऽयमिति" इति वैखानसवचनं श्रुत्वा, स्वकीयं बाणं प्रतिसंहृतवान्नित्युक्तमेव। (प्रक्षिप्त-श्लोक-संख्या-5)

क्रन्दितेन पर्याकुलास्स्मः । तदनुजानीहि न उटजगमनाय ।) [188]

अनसूया – हला सउन्तले, पय्याकुला अय्या गोदमी भविस्सदि । ता एहि सिग्घं एकत्था होम्ह । (हला शकुन्तले, पर्याकुला आर्या गौतमी भविष्यति । तर्हि एहि, शीघ्रमेकस्था भविष्यामः ।) [189]

राजा – (ससम्भ्रमम्) गच्छन्तु भवत्यः । आश्रमबाधा यथा न भविष्यति, तथा प्रयतिष्यामहे । [190]

सख्यौ – असम्भाविदसक्कारं भूओ वि दाव पच्चवेक्खणनिमित्तं लज्जामो अय्यं विण्णवेदुं । विदिदभूइट्ठो सि णो सम्पदं जं दाणिं उवआर मज्झत्थदाए अवरद्धम्ह तं मरिसेसि । (असम्भावितसत्कारं भूयोऽपि तावत् प्रत्यवेक्षणनिमित्तं लज्जाम आर्याय विज्ञापयितुम् । विदितभूयिष्ठोऽसि नस्साम्प्रतं यदिदानीम् उपकारमध्यस्थतयाऽपराद्धास्स्मः, तन्मर्षयसि ।) [191]

राजा – मा मैवम् । दर्शनेन भवतीनां पुरस्कृतोऽस्मि[36] । [192]

शकुन्तला– अहिणवकुससूइपरिक्खदं मे चरणं, कुरुवअसाहापरिलग्गं च मे वक्कलं । ता पलिवालेध मं, जाव णं मोआवेमि । (अभिनवकुशसूचिपरिक्षतं मे चरणः, कुरबकशाखापरिलग्नं च मे वल्कलम्, तत् प्रतिपालय मां, यावदेतत् मोचयामि ।)[37] [193]

राजा – (उत्थाय सखेदम्) मन्दौत्सुक्योऽस्मि नगरं प्रति, यावद् अनुयात्रिकजनं समेत्य नातिदूरे तपोवनस्य निवेशयामि । न खलु शक्नोमि शकुन्तलाव्यापाराद् आत्मानं निवर्तयितुम् । [194] मम हि,

गच्छति पुरः शरीरं धावति पश्चाद् असंवृतं चेतः ।
चिह्नांशुक[38]मिव केतोः प्रतिवातं नीयमानस्य ।। **1 – 31** ।। [195]

(सचिन्तः स्खलितानि पदानि दत्त्वा निष्क्रान्तः) [196]

।। **इति प्रथमोऽङ्कः**[39] ।।

---

[36] का.-मै.-बं.-पाठेष्वितः परं शकुन्तला "हा धिक्, ऊरुस्तम्भेन विकलास्मी"त्यपि भणति । किन्तु विलम्बनाय व्याजद्वयं नोचितम्, पुनरुक्तिग्रस्तत्वात् ।

[37] अभिनवकुशसूचिक्षतो मे चरणः0 इति मैथिल-पाठेन सूचितो वाचिकाभिनय एवोचितः, द्वितीयाङ्के "दर्भाङ्कुरेण क्षत इत्यकाण्डे0" इति श्लोकेन सह सम्बद्धत्वात् ।, (शकुन्तला सव्याजविलम्बितं कृत्वा परिक्रम्य सखीभ्यां सह निष्क्रान्तेत्यपि का.-पाठे रंगसूचनाऽस्ति । तत्र केवलमाङ्गिकाभिनयस्य स्थानम् ।)

[38] काश्मीर-पाठस्यास्य "चेत" इत्यस्य विशेषणत्वेन साभिप्रायत्वं सिध्यति ।

[39] मै.-बं.-पाठयोः प्रत्येकानामङ्कानां नामानि दीयन्ते । किन्तु का.-पाठे तेषामनुपलब्धिः, विक्रमोर्वशीये मालविकाग्निमित्रे च प्रत्येकानामङ्कानां नोपलभ्यन्ते पृथङ्नामानि ।

।। अथ द्वितीयोऽङ्कः ।।

(ततः प्रविशति परिश्रान्तो विदूषकः)[1]

विदूषकः– (श्रमं नाटयति, निःश्वस्य) भोः दिढ म्हि । एदस्स मिगआ सीलस्स रण्णो वअस्सभावेण णिविण्णो । अअं मिगो, अअं वराहो त्ति । मज्झंदिणे वि गिम्हविरलपादवच्छायासु वणराईसु आफ(ह?)ण्डीयदि । पत्तसङ्कर-कसाआणि पीअन्ते, कडुआणि उण्हाइं गिरिणदीजलाइं अणिअदवेलं सूलमंस-सउण-मंसभूइट्ठं अण्हीअदि । तुरगआण-कण्ठइद-सन्धि-बन्धणाणं अङ्गाणं रत्तिं पि णत्थि पकामं सयितव्वं । तदो मम महन्ति य्येव पच्चीसे दासीए पुत्तेहिं, सउणलुब्धएहिं कण्णघादिणा वणगहण-कोलाहलेण पडिबोधीआमि । [2]

(विचिन्त्य)

एत्तिएण वि मे पाणा ण णिक्कन्ता । (सासूयं विहस्य) तदो गण्डोवरि पिडिआ संवुत्ता । हिय्यो अम्हेसु ओहीणेसु तत्थभवदो मआणुसारेण अस्समपदं पइट्ठस्स किल तावसकण्णआ सउन्तला णाम म अधण्णदाए दसिदा । सम्पदं णअरगमणस्स सङ्कधं पि ण करेदि । अज्ज तं य्येव सञ्चिन्तअन्तस्स विभादं अच्छीसु । ता का गदी । जाव णं किदाचारपरिक्कमं कहिं पेक्खामि ।[3]

(परिक्रम्यावलोक्य च)

एसो राआ बाणासणहत्थाहिं जवणीहिं परिवुदो वणपुप्फमालाधारी इदो य्येवागच्छदि । ता जाव णं उवसप्पामि । (किञ्चिद् उपसृत्य) भोदु । अंगसम्मड्डुविहलो दाणिं भविअ इध य्येव चिट्ठिसं । जदो एवं पिदाव विसामं लभेमि ।। [4]

(दण्डकाष्ठम् अवलम्ब्य तिष्ठति) ।।[5]

(भोः दृढोऽस्मि, एतस्य मृगयाशीलस्य राज्ञो वयस्यभावेन निर्विण्णः, अयं मृगोऽयं वराह इति । मध्यंदिनेऽपि ग्रीष्मविरलपादपच्छायासु वनराजिसु आहिण्ड्यते । पत्रसंकरकषायाणि पीयन्ते कटुकान्युष्णानि गिरिनदीजलानि, अनियतवेलं शूलमांसशकुनमांसभूयिष्ठं अद्यते । तुरगयानकण्ठ-कृतसन्धिबन्धनानाम् अङ्गानां रात्रिमपि नास्ति प्रकामं शयितव्यम् । ततो मम महत्येव प्रत्यूषे दास्याः पुत्रैः शकुनलुब्धकैः कर्णघातिना वनग्रहणकोलाहलेन प्रतिबोध्ये । एतावतापि मे प्राणा न निष्क्रान्ताः । ततो गण्डोपरि पिटिका संवृत्ता । ह्योऽस्मास्वहीनेषु तत्रभवतो मृगानुसारेणाश्रमपदं प्रविष्टस्य किल तापसकन्यका शकुन्तला नाम ममाधन्यतया दर्शिता । साम्प्रतं नगरगमनस्य संकथामपिन करोति । अद्य तमेव सञ्चिंतयतो विभातम् अक्ष्णोः । तत्का गतिः । यावदेनं कृताचारपरिक्रमं कुत्र प्रेक्ष्ये । ..... एष राजा बाणासनहस्ताभिर्यवनीभिः[1] परिवृतो वनपुष्प-मालाधारीत इवागच्छति । तद् यावद् एनम् उपसर्पामि । भवतु, अङ्गसम्मर्दविह्वल इदानीं भूत्वेहैव स्थास्यामि । यत एवमपि तावद् विश्रामं लभे ।।)

(ततः प्रविशति यथानिर्दिष्टपरिवारो राजा ।)[6]

राजा–(सचिन्तम् । निःश्वस्यात्मगतम्)

कामं प्रिया न सुलभा मनस्तु तद्भावदर्शनाश्वासि ।
अकृतार्थे मनसिजे रतिम् उभयं प्रार्थना कुरुते ।। **2 – 1** ।।[7]

(स्मृतिमभिनीय) (विहस्य) एवमात्माभिप्रायसंभावितेष्टजनचित्तवृत्तिः प्रार्थयिता

---

[1]मै.-बं.-पाठयोरस्य स्थाने "हृदयनिहितप्रियजन" इति । किन्तु तन्न युक्तम् । यतो हि- सेनापतिं परावृत्य राजा भणति "(परिजनं विलोक्य) मृगयावेषमपनयन्तु भवन्त" इति । तत्कथं संभवेत्, यदि यवनीभिः परिवृतो राजा रंगभूमिं न समायातो भवेत् । अतः पूर्वापरविरोधादत्र तौ पाठौ न सुसंगतौ सिध्यतः ।

विडम्ब्यते ।कुतः,

स्निग्धं वीक्षितमन्यतोऽपि नयने यत्प्रेरयन्त्या तया,
यातं यच्च नितम्बयोर्गुरुतया मन्दं विलासादिव ।
मा गा इत्यवरुद्धया यदपि सा सासूयम् उक्ता सखी,
सर्वं तत् किल मत्परायणमहो कामः स्वतां पश्यति ।। **2 – 2** ।।[8]

(परिक्रामति)

विदूषकः– (तथा स्थित एव) भो राअं, ण मे हत्थो पसरदि । वाआमेत्तकेण जआवीअसि । जअदु जअदु भवं । (भो राजन्, न मे हस्तः प्रसरति । वाङ्मात्रकेण जाप्यसे । जयतु जयतु भवान् ।) [9]

राजा– (विलोक्य सस्मितम्) वयस्य, कुतोऽयं गात्रोपघातः । [10]

विदूषकः– कुदो किल । स्वअं मेवं अच्छी आकूलीकदुअ अंसुकारणं पुच्छसि । (कुतः किल, स्वयमेवा-क्षीण्याकुलीकृत्याऽश्रुकारणं पृच्छसि[2] ।) [11]

राजा–वयस्य, न खल्वगच्छामि । [12]

विदूषकः– (सरोषमिव) भोः तए णाम राअकय्याइं उज्झिअ तादिसे अ कीलापसादे, वणअरेकवित्तिणा होदव्वं । जं सच्चं पच्चहं सावदसऊणाणुगमणेहिं सङ्खोहिद-सन्धिबन्धणाणं अङ्गाणं अणीसोम्हि संवुत्तो । (सप्रणयम्) ता पसीद । मं वज्जेहि एक्काहं पि दाव विसमीअदु । (भोः त्वया नाम राजकार्याण्युज्झित्वा तादृशाञ्च क्रीडाप्रसादान्, वनचरैकवृत्तिना भवितव्यम् । यत्सत्यं प्रत्यहं श्वापदशकुनानुगमनैः सङ्क्षोभितसन्धिबन्धनाम् अङ्गानाम् अनीशोऽस्मि संवृत्तः । तत्प्रसीद, मां वर्जय एकाहमपि तावद् विश्राम्यताम् ।) [13]

राजा– (आत्मगतम्) अयमेवमाह । ममापि कण्वदुहितरम् अनुसृत्य मृगयां प्रति निरुत्सुकं चेतः[3] । [14]

विदूषकः– (राज्ञो मुखमवलोक्य) भो अत्थभवं हिअएण किं पि मन्तेदि । अरण्णे मए रुदिदं । (भोः अत्रभवान् हृदयेन किमपि मन्त्रयति । अरण्ये मया रुदितम् ।) [15]

राजा– (सस्मितमिव) किमन्यत् । अनतिक्रमणीयं सुहृदवाक्यमिति स्थितोऽस्मि । [16]

विदूषकः– चिरं जीव । (चिरं जीव) [17]

राजा–तिष्ठ । सावशेषं मे वचः । [18]

विदूषकः– आणवेदु भवं । (आज्ञापयतु भवान् ।) [19]

राजा–विश्रान्तेन भवता ममान्यस्मिन्ननायासे कर्मणि सहायेन भवितव्यम् । [20]

विदूषकः–(साभिलाषम्) अवि मोदअखज्जिआए । (अपि मोदकखादिकायाम् ।)[21]

राजा–यत्र वक्ष्यामि । [22]

---

[2]मैथिलादि-पाठेष्वितः परं "यद् वेतसः कुब्जलीलां विडम्बयति, तत् किमात्मनः प्रभावेण, अथ नदीवेगस्ये"ति वाक्येन यदपि भणति, तत्सर्वम् पुनरुक्तिदोषग्रस्तत्वात्प्रक्षिप्तं प्रतिभाति ।, विदूषकेन तु स्वकीयस्य दुःखस्य निमित्तं दुःषन्त एवेति स्पष्टमेव भणितम् । तथापि राज्ञा नावगम्यते, तर्हि राज्ञो बुद्धिमान्द्यमेव सिध्येत् ।
[3]इतः परम्- सर्वासु वाचनासु/रंगावृत्तिषु "न नमयितुमधिज्यमुत्सहिष्ये0" इति श्लोकः प्राप्यते, स च प्रक्षिप्तः प्रतिभाति । विनापि तयोः नयनसादृश्यं, प्रियायाः अनुस्मरणमेव नायकं मृगयां प्रति निरुत्साहिनं कर्तुमलम् । (प्रक्षिप्त-श्लोक-संख्या-6)

विदूषकः– गहिदो खणो । (गृहीतः क्षणः ।) [23]

राजा–कः कोऽत्र भोः । [24]

(प्रविश्य) **दौवारिकः**– आणवेदु भट्टा । (आज्ञापयतु भर्ता ।) [25]

राजा–रेवक, सेनापतिस्तावद् आहूयताम् । [26]

रेवकः–जं भट्टा आणवेदि । (यद् भर्ता आज्ञापयति ।) (इति निष्क्रान्तः ।) [27]

(ततः प्रविशति सेनापतिर्दौवारिकश्च ।)[28]

सेनापतिः– (राजानं विलोक्यात्मगतम्) दृष्टदोषापि मृगया स्वामिनि खलु केवलं गुणायैव संवृत्ता[4] । [29]

दौवारिकः– अय्य, एसो खु अणुवअणदिण्णकण्णो इदो दिण्णदिट्ठी एव भट्टा तुमं पडिवालेदि । ता उवसप्पदु अय्यो । (आर्य, एष खल्वनुवचनदत्तकर्ण इतो दत्तदृष्टि[5]रेव भर्ता त्वां प्रतिपालयति । तस्माद् उपसर्पत्वार्यः ।) [30]

सेनापतिः– (उपसृत्य सप्रणामम्) जयतु जयतु स्वामी । स्वामिन्, गृहीतं प्रचारसूचितश्वापदमरण्यम् । किम् अन्यद् अवस्थीयते । [31]

राजा–भद्र सेनापते, मन्दोत्साहः कृतोऽस्मि मृगयापवादिना माधव्येन[6] । [32]

सेनापतिः–(जनान्तिकम्) माधव्य, स्थिरप्रतिबन्धो भव । अहमपि तावत्स्वामिनश्चित्तम् अनुवर्तिष्ये ।[33]

(प्रकाशम्) देव, प्रलपत्वेष वैधेयः । ननु प्रभुरेव निदर्शनं मृगया-गुणाणाम् । [34]

मेदश्छेदकृशोदरं लघु भवत्युत्थानयोग्यं वपुः
सत्त्वानामपि लक्ष्यते विकृतिमच्चित्तं भयक्रोधयोः ।
उत्कर्षस्स च धन्विनां यदिषवः सिद्ध्यन्ति लक्ष्ये चले
मिथ्या हि[7] व्यसनं वदन्ति मृगयाम् ईदृग्विनोदः कुतः ।। **2 – 3**।।[35]

विदूषकः– (कृतकरोषम्) अत्थभवं दाव पकिदिम् आवण्णो । तुमं पुण अडवीदो अडविं आहिण्ड जाव सीमासिआलो विअ जुण्णरिक्खस्स मुहे पडिस्ससि । (अत्रभवांस्तावत् प्रकृतिम् आपन्नः । त्वं पुनरटवीतोऽटविं भ्रम, यावत् सीमाशृगालस्येव जीर्णर्क्षस्य मुखे पतिष्यसि ।) [36]

राजा–भद्र सेनापते, आश्रमसंनिकर्षे वर्तामहे । अतस्ते वचो नाभिनन्दामि । [37]

अद्य तावत् –

गाहन्तां महिषा निपानसलिलं शृङ्गैर्मुहुस्ताडितं
छायाबद्धकदम्बकं मृगकुलं रोमन्थमभ्यस्यतु ।
विश्वस्तैः क्रियतां वराहपतिभिर्मुस्ताक्षतिः पल्वले

---

[4]इतः परम्- "अनवरतधनुर्ज्यास्फालनक्रूर0" इति श्लोकः सर्वासु वाचनासु/रंगावृत्तिषु प्राप्यते, किन्तु स पुनरुक्तिरूपोऽनावश्यकश्च प्रपञ्चोऽस्ति । अतः प्रक्षिप्तत्वेन निष्कास्यते । (प्रक्षिप्त-श्लोक-संख्या-7)
[5]राज्ञः कृते"ऽनुवचनदत्तकर्णः" एवञ्च "इतो दत्तदृष्टिरि"ति विशेषणद्वयमावश्यकम् । अन्ये च ये पाठभेदाः प्राप्यन्ते ते सर्वे तूत्तरवर्तिनि काले समुद्भूतानि सन्ति ।
[6]मधुबभ्र्वोर्ब्राह्मण-कौशिकयोः । (पा. सू. 4-1-106) सूत्रेण गोत्रे यञ् । यदा ब्राह्मण-वाचकः स्यात् तर्हि माधव्य इति । मधुमासे जातः, सो माधवः ।, दाक्षि.-देव.-पाठयोस्तु संस्कृतोक्तिष्वपि माढव्येति, तन्न युक्तम् ।
[7]का.-मै.-बं.-दाक्षि.-पाठेषु "मिथ्या ही"ति ।, देव.-पाठे सरस्वतीकण्ठाभरणे च"मिथ्यैवे"ति । किन्तु अभिनव-भारत्यां (अ. 16, पृ. 301) "मिथ्या ही"ति ।

विश्रान्तिं[8]लभतामिदं च शिथिलज्याबन्धम् अस्मद्धनुः ।। **2 – 4** ।।[38]

सेनापतिः– यथा प्रभविष्णवे रोचते ।[39]

राजा–तेन निवर्त्यन्तां वनग्राहिणः । यथा च सैनिकास्तपोवनं दूरात्परिहरन्ति तथा निषेद्धव्याः ।[40]

पश्य –

शमप्रधानेषु तपोधनेषु
गूढं हि दाहात्मकम् अस्ति तेजः ।
स्पर्शानुकूला इव सूर्यकान्तास्तद्
अन्यतेजोऽभिभवाद् वमन्ति ।। **2 – 5** ।।[41]

सेनापतिः– यदाज्ञापयति देवः ।[42]

विदूषकः–गच्छ, सम्पदं दासीए पुत्त । (गच्छ, साम्प्रतं दास्याः पुत्र ।)(इति निष्क्रान्तस्सेनापतिः)[43]

राजा– (परिजनमवलोक्य) अपनयतु भवन्तो मृगयावेषम् । रेवक, त्वमपि स्वनियोगम् अशून्यं कुरु । [44]

परिजनः–जं भट्टा आणवेदि । (यद् भर्ताज्ञापयति) (इति निष्क्रान्तः परिजनः)[45]

विदूषकः–(सहासम्) किदो भवदा णिद्धूमको दंसपडीआरो[9] । ता सम्पदं एदस्सिं आवासपादव-च्छाआपरिवुदे विदाणअ-सणाहे आसणे जहा सुहं उवविसदु भवं, जाव अहं पि सुहासन त्थो होमि । (कृतो भवता निर्धूमको दंशप्रतिकारः । तत् साम्प्रतम् एतस्मिन् पादपच्छाया-विरचितवितानसनाथे[10]शिलातले यथासुखम् उपविशतु भवान्, यावदहमपि सुखासनस्थो भवामि ।)[46]

(उभावुपविष्टौ)

राजा–सखे, माधव्य, अनवाप्तचक्षुः फलोऽसि, येन त्वया दर्शनीयं न दृष्टम् । [47]

विदूषकः– णं भवं अग्गदो मे चिट्ठदि । (ननु भवान् अग्रतो मे तिष्ठति ।)[48]

राजा–सर्वः कान्तमात्मानं पश्यति । किन्तु तामेवाहम् आश्रमललामभूतां शकुन्तलाम् अधिकृत्य ब्रवीमि ।[49]

विदूषकः–(अपवार्य) भोदु । ण से पसरं वद्धयिस्सं । (प्रकाशम्) जदा दाव सा तावसकण्णआ अप्पात्थणीया, ता किं तए दिट्ठए । (भवतु, नास्य प्रसरं वर्धयिष्यामि । यदा तावत् सा तापसकन्यकाऽप्रार्थनीया, तत् किं तया दृष्टया ।) [50]

राजा–मूर्ख, परिहार्येऽपि वस्तुनि दुःषन्तस्य मनः प्रवर्तते ?। [51]

विदूषकः–ता कधं एदं । (तत् कथमेतत् ।) [52]

राजा–ललिताऽन्यसम्भवं[11] किल मुनेरपत्यं तदुज्झिताधिगतम् ।

---

[8]मै.-बं.-पाठयो"र्विश्राममि"ति ।, किन्तु का.लं.सू.(1-2-11), अभिनवभारत्यां (अ.16, पृ. 336), काव्यप्रकाशे (उ.-7, श्लोकः-250) च "विश्रान्तिमि"त्येव ।

[9]मैथिलादीषु पाठेषु "कृतं भवता निर्मक्षिकमि"ति ।, प्राचीनतमपाठानुरोधादत्र काश्मीर-पाठः स्वीक्रियते ।

[10]का.-पाठे"पादपच्छायापरिवृत्ते वितानक-सनाथ आसने0" इति प्राप्यते । किन्तु कण्वाश्रमे राज्ञः कृते वितानकरूपम् आहार्यम् न स्यात् । अतोऽत्र मैथिल-पाठानुसारी पाठः प्रयुज्यते ।

अर्कस्योपरि शिथिलं च्युतमिव नवमालती कुसुमम् ।। **2 – 6** ।। [53]

विदूषकः– जदि वि ण कण्णस्स महेसिणो ओरसादूधा, तधा वि किं तए दिट्ठए । (यद्यपि न कण्वस्य महर्षेरौरसा दुहिता[12], तथापि किं तया दृष्टया ।) [54]

राजा–अविशेषज्ञ,

चिरं गतनिमेषाभिर्नेत्रपङ्क्तिभिर् उन्मुखः
नवाम् इन्दुकलां लोकः केन भावेन पश्यति ।
न च सामादृशानाम् अप्रार्थनीया
समासतः समिन्मध्यकालागुरुखण्डवत्[13] ।। **2 – 7** ।। [55]

विदूषकः– (विहस्य) भो जधा कस्सा वि पिण्डखज्जूरीहिं उव्वेजिदस्स तिन्तिआणं अहिलासो होदि तधा इत्थीरअणपरिभाविणो भवदो इअं पत्थणा । (भोः यथा कस्यापि पिण्डखर्जूरिभिरुद्वेजितस्य तिन्तिकानाम् अभिलाषो भवति, तथा स्त्रीरत्नपरिभाविनो[14] भवत इयं प्रार्थना ।) [56]

राजा– सखे, न तावद् एनां पश्यसि, येन त्वमेवं वादीः । [57]

विदूषकः– तं खु रमणीअं णाम जं भवदो वि विम्हअं जनदि । (तत्खलु रमणीयं नाम यद् भवतोऽपि विस्मयं जनयति ।) [58]

राजा–वयस्य, किं बहुना,

चित्रे निवेश्य परिकल्पितसत्त्वयोगाद्
रूपोच्चयेन विहिता मनसा कृता नु ।
स्त्रीरत्नसृष्टिरपरा प्रतिभाति सा मे
धातुर्विभुत्वम् अनुचिन्त्य वपुश्च तस्याः ।। **2 – 8** ।। [59]

विदूषकः– (सविस्मयम्) पच्चादेसो दाणिं रूववदीणं । (प्रत्यादेश इदानीं रूपवतीनाम् ।) [60]

राजा– इदं च मे मनसि वर्तते ।[61]

अनाघ्रातं पुष्पं किसलयमलूनं कररुहै-
रनामुक्तं[15] रत्नं मधु नवमनास्वादितरसम् ।
अखण्डं पुण्यानां फलमिव च तद्रूपमनघं,
न जाने भोक्तारं कमिव समुपस्थास्यति भुवि ।। **2 – 10** ।। [62]

विदूषकः– तेण हि लघु परिणदु भवं, मा कस्स वि तपस्सिणो इङ्गुदीतिलचिक्कणसीसस्स आरण्णकस्स हत्थे पडिस्सदि । (तेन हि, लघु परिणयतु भवान्, मा कस्यापि तपस्विन इङ्गुदीतैल-

---

[11]अनेनैव शब्देन दुष्यन्तस्य शकुन्तलायामहैतुकी प्रीतिर्वतत इति सिध्यति, नान्येन पाठभेदेन ।
[12]अनेन, शकुन्तला कण्वस्यावैधानिकी कन्येति संसूच्य विदूषकः राजानं निवारयितुं पुनरपि यतते ।
[13]श्लोकेनानेन विदूषकस्य पूर्वोपस्थापितौ तर्कौ परिहृतौ, तेन स तृतीय-तर्करूपेण पिण्डखर्जूरिभिरित्यादिकं भणति । नास्त्येतादृशी सुसंगता पाठयोजनाऽन्यत्र । तुलनात्मकदृष्ट्या काश्मीर-पाठ एवाविकलो ज्यायांश्च ।
[14]परिभोगिन इत्यनेन पाठभेदेन नायकस्य केवलं विषयिता कथ्यते । किन्तु परिभाविन इति पाठेन तु राज्ञि दुःषन्ते संनिष्ठताया अभावो द्योत्यते ।
[15]अनेन नायिकाया मौग्ध्यं द्योत्यते, तदेव च सन्दर्भोचितम् । तत्रैवान्तरिकी सम्भावना स्यात् । (नरेन्द्रप्रभ-सूरि(ई.स.1225)प्रणीतः अलंकारमहोदधिः (8-713) इत्यत्राप्ययमेव पाठ उद्धृतः ।)

चिक्कणशीर्षस्य आरण्यकस्य हस्ते पतिष्यति ।) [63]

राजा– परवती खलु तत्रभवती, न च सन्निहितगुरुजना । [64]

विदूषकः– अध भवन्तं अन्तरेण कीदिसो से चित्ताणुराओ । (अथ भवन्तम् अन्तरेण कीदृशोऽस्याश्चित्तानुरागः ।) [65]

राजा– सखे, स्वभावाद् अप्रगल्भस्तपस्विकन्यकाजनः । तथापि तु –

अभिमुखं मयि संहृतमीक्षितं
हसितमन्यनिमित्तकथोदयम् ।
विनयबाधितवृत्तिरतस्तया
न विवृतो मदनो, न च संहृतः ।। **2 – 10** ।। [66]

विदूषकः– (विहस्य)किं खु सा भवदो दिट्ठमेत्तस्स य्येव अङ्कं आरुहदु । (किं खलु सा भवतो दृष्टमात्रस्यैवाङ्कमारोहतु ।) [67]

राजा– सखे, सखीभ्यां मिथः प्रस्थाने शालीनयापि तत्रभवत्या मयि भूयिष्ठम् आविष्कृतो भावः ।

तदा खलु –[68]

दर्भाङ्कुरेण चरणः क्षत इत्यकाण्डे
तन्वी स्थिता कतिचिद् एव पदानि गत्वा ।
आसीद् विवृत्तवदना च विमोचयन्ती
शाखासु वल्कलम् असक्तमपि द्रुमाणाम्[16] ।। **2 – 11** ।। [69]

विदूषकः– भो गिहीदपाधेओ होसि । कधं पुणोउण तवोवणगमणं त्ति पेक्खामि । (भोः गृहीतपाथेयो भवसि । कथं पुनः पुनस्तपोवनगमनमिति प्रेक्षे ।) [70]

राजा– सखे, चिन्तय तावत् केनोपायेन पुनराश्रमपदं गच्छामः । [71]

विदूषकः - एसो चिन्तेमि । मा खु से अलिअपरिदेविदेहिं समाधिं भञ्जिहिसि । (एषश्चिन्तयामि, मा खल्वस्यालीकपरिदेवितैः समाधिं भाङ्क्षीः[17] ।)(चिन्तयित्वा) भो को अण्णो उपाओ,
णं भवं राआ । (भोः कोऽन्य उपायो, ननु भवान् राजा ।) [72]

राजा– ततः किम् । [73]

विदूषकः– णिवारच्छब्भाअं दाव सामिणो उवहरदु त्ति । (निवारषड्भागं तावत् स्वामिने उपहरत्विति) [74]

राजा– मूर्ख, अन्यं भागम् एते रक्षिणे निर्वपन्ति, रत्नराशीन् अपि विहायाभिनन्द्यम् । पश्य, [75]

यद् उत्तिष्ठति वर्णेभ्यो नृपाणां क्षयि तत् फलम् ।
तपष्षड्भागम् अक्षय्यं ददात्यारण्यको जनः ।। **2 – 12** ।। [76]

(**नेपथ्ये**) हन्त, सिद्धार्थौ स्वः । [77]

राजा– (कर्णं दत्वा) अये धीरप्रशान्तस्वरैस्तपस्विभिर् भवितव्यम् । [78]

---

[16]एभिः शब्दैः प्रथमांकस्यान्ते शकुन्तलायारुक्तिः समर्थिता भवति । तत्र शकुन्तला न केवलमाङ्गिकाभिनयेन रंगान्निष्क्रमणं करोति । किन्तु वाचिकाभिनयपूर्वकमेव तस्या रंगान्निष्क्रमणं भवतीत्यनेन श्लोकेन सिध्यति ।
[17]विक्रमोर्वशीयेऽपि द्वितीयाङ्क एतादृशैरेव शब्दैः समाधिमभिनयति, नायिकाप्राप्त्युपायं च चिन्तयति ।

(प्रविश्य) **दौवारिकः**– जअदु जअतु भट्टा । एदे दुवे इसिकुमारआ पडिहारभूमिं उवत्थिदा । (जयतु, जयतु भर्ता । एतौ द्वावृषिकुमारकौ प्रतिहारभूमिम् उपस्थितौ ।) [79]

राजा–अविलम्बितं प्रवेशय । [80]

दौवारिकः– अअं पवेसामि । (अयं प्रवेशयामि ।) (इति निष्क्रान्तः) [81]

(ततः प्रविशतस्तापसौ दौवारिकश्च ।) [82]

दौवारिकः–इदो इदो भवन्तो । (इत इतो भवन्तः ।) [83]

तापसौ–(राजानं दृष्ट्वा) अहो दीप्तिमतोऽपि विश्वसनीयता वपुषः । अथवा, उपपन्नमेतद् अस्मिन्नृषिकल्पे राजनि । तथाहि, [84]

अध्याक्रान्ता वसतिरमुनाऽप्याश्रमे सर्वपूर्वे
रक्षायोगाद् अयमपि तपः प्रत्यहं सञ्चिनोति ।
अस्यापि द्यां स्पृशति वशिनश्चारणद्वन्द्वगीतः
पुण्यः शब्दो मुनिरिति मुहुः केवलं राजपूर्वः ।। **2 – 13** ।। [85]

द्वितीयः– गौतम, अयं स बलभित्सखो दुष्यन्तः । [86]

प्रथमः– अथ किम् । [87]

द्वितीयः–तेन हि,

नैतच्चित्रं यदयमुदधिश्यामसीमां धरित्रीम्,
एकः कृत्स्नां नगरपरिघप्रांशुबाहुर्भुनक्ति ।
आशंसन्ते सुर-समितयस्सक्तवैरा हि दैत्यैर्
अस्याधिज्ये धनुषि विजयं पौरहूते च वज्रे ।। **2 – 14** ।। [88]

उभौ–(उपसृत्य) स्वस्ति भवते । (फलान्युनयतः) [89]

राजा–(सादरम् उत्थाय) अभिवादये भवन्तौ । [91]

(सप्रणामं गृहीतासन उपविश्य) किमाज्ञापयतो भवन्तौ । [92]

ऋषिः–विदितो भवान् आश्रमवासिनाम् इहस्थः । तेन भवन्तम् अभ्यर्थयन्ते । [93]

राजा–किमाज्ञापयन्ति । [94]

उभौ–तत्रभवतः कण्वमुनेरसांनिध्याद् रक्षांसि परापतिष्यन्ति, विघ्नमुत्पादयितुम् इच्छन्ति । तत्कतिपयरात्रं सारथिद्वितीयेन भवता सनाथीक्रियताम् आश्रम इति । [95]

राजा - अनुगृहीतोऽस्मि । [96]

विदूषकः–(अपवार्य) इअं दाणिं अणुऊल-गलत्था[18] । (इयमिदानीम् अनुकूलप्रार्थना ।) [97]

राजा–रेवक, मद्वचनाद् उच्यतां सारथिः । सबाणकार्मुकं रथम् उपनयेति । [98]

दौवारिकः–जं भट्टा आणवेदि । (यद् भर्ताऽऽज्ञापयति ।) (इति निष्क्रान्तः) [99]

ऋषिः–(सहर्षम्)

अनुकारिणि पूर्वेषां युक्तरूपमिदं त्वयि ।

---

[18]देश्य-शब्दोऽयं प्रार्थनार्थक इति "पाइअ-सद्द-महण्णवो"(पृ. 437) कोशाज्ज्ञायते । अतः सः संरक्षणीयः ।

आपन्नाभयसत्रेण दीक्षिताः खलु पौरवाः ।। **2 – 15** ।। [100]

राजा– गच्छतां भवन्तौ । अहम् अप्यनुपदम् आगत एव । [101]

ऋषिः– विजयस्व । (इत्युत्थाय निष्क्रान्तौ) [102]

राजा– माधव्य, अप्यस्ति शकुन्तलादर्शनकौतुकम् । [103]

विदूषकः– पढमं अपरिबाधं आसि । (सभयम्) रक्खसवुत्तान्तेण उण सम्पदं विसाददंसिणा विसेसिदम् । (प्रथमं अपरिबाधमासीत् । राक्षसवृत्तान्तेन पुनस्साम्प्रतं विषाददर्शिना विशेषितम् ।) [104]

राजा– मा भैषीः । ननु मत्समीपे भविष्यसि । [105]

विदूषकः–एस चक्काकी भूदो म्हि । (एषः चक्राकी भूतोऽस्मि ।) [106]

(प्रविश्य) **दौवारिकः–** भट्टा, सज्जो रहो भट्टिणो विजअपत्थाणं उदीक्खदि । एसो उण णअरादो देवीणं सआसादो करभओ उपत्थिदो । (भर्तः, सज्जो रथो, भर्तुर्विजयप्रस्थानम् उदीक्षते । एष पुनर्नगरतो देवीनां सकाशतः करभकः उपस्थितः ।) [107]

राजा– सादरम् । किमज्जुभिः प्रेषितः । [108]

दौवारिकः– अध इं । (अथ किम्) । [109]

राजा– प्रवेश्यताम् । [110]

दौवारिकः– जं भट्टा आणवेदि । (यद् भर्ताज्ञापयति) (इति निष्क्रान्तः) [111]

।। ततः प्रविशति दौवारिकेण सह करभकः ।। [112]

करभकः– (उपसृत्य) जयदु जयदु भट्टा । देविओ आणवेन्ति, जधा आगामिणि चउत्थे दिअसे पुत्तपिण्डओ-दाणओ णाम उववासो भविस्सदि । तत्थ दीहाउणा अवस्संसण्णिहिदेण होदव्वम् । (जयतु जयतु भर्ता । देव्य आज्ञापयन्ति यथागामिनि चतुर्थे दिवसे पुत्रपिण्डकदानको[19] नामोपवासो भविष्यति । तत्र दीर्घायुषाऽवश्यं सन्निहितेन भवितव्यम् ।) [113]

राजा– साकुलम् । माधव्य, इतस्तपस्विकार्यम् इतो गुरुजनाज्ञा । उभयमपि अनुल्लङ्घनीयं मया । कथमत्र प्रतिविधेयम् । [114]

विदूषकः– तिसङ्कु विअ अन्तरे चिट्ठ । (त्रिशङ्कुरिवान्तरे तिष्ठ ।) [115]

राजा– सत्यम् आकुलोऽस्मि । [116]

कृत्ययोर्भिन्नदेशत्वाद् द्वैधीभवति मे मनः ।
पुरः प्रतिहतं शैले स्रोतस्स्रोतोवहो यथा ।। **2 – 16** ।। [117]

(सखेदं चिन्तयित्वा) सखे माधव्य, त्वमज्जुभिः पुत्र इति परिगृहीतस्तद्भवान् इतः प्रतिनिवृत्य, तत्रभवतीनां पुत्रकार्यम् अनुष्ठातुमर्हति । तपस्विकार्यव्यग्रितास्स्मः इत्यावेदय ।[118]

विदूषकः– (सगर्वम्) साधु,रक्खसभीरुअं मं गणयिसदि । (साधु, राक्षसभीरुकं मां गणयिष्यति ।) [119]

राजा– (सस्मितम्) महाब्राह्मण[20], कथमेतद् भवति सम्भाव्यते । [120]

---

[19]नाटकस्यारम्भ एव चक्रवर्तिनः पुत्रस्य प्राप्तिर्भविष्यतीत्याशीर्वचनं प्रदत्तम् । तच्च नाटकस्य चरमं लक्ष्यम् इत्यभिनवगुप्तपादाः । (ना. शा. अभिनवभारती, अ.19-22), अतः प्रत्येकस्मिन् अङ्के पुत्रप्राप्तिरूपं लक्ष्यं स्मार्यते । तेनायमेव पाठः स्वीकार्यः । न च "प्रवृत्तपारणो नाम0" अथवा "निर्वृतपारणो नाम0" इति ।

[20]मालविकाग्निमित्रे (अंकः-2) गणदासेनापि विदूषकं संबोद्धुं शब्दोऽयं प्रयुज्यते ।

विदूषकः– तेण हि जधा राआणुराजेण गन्तव्वं तधा गमिस्सं । (तेन हि राजानुराजेन गन्तव्यम्, तथा गमिष्यामि ।) [121]

राजा–ननु तपोवनोपरोधः परिहरणीय इति सर्वम् अनुयात्रिकजनम् त्वया सह प्रस्थापयामि । [123]

विदूषकः– (सगर्वम्) तेण हि, जुअराआ खु अम्हि संवुत्तो । (तेन हि, युवराजः खल्वस्मि संवृत्तः ।)[124]

राजा– (आत्मगतम्) चपलोऽयं बटुः । कदाचिद् अस्मत्प्रार्थनाम् अन्तःपुरेभ्यः कथयेत् । भवतु, एवं तावद् वक्ष्यामि । (प्रकाशम्) (विदूषकं हस्ते गृहीत्वा) वयस्य, ऋषिगौरवाद् आश्रमं गच्छामि । न खलु सत्यमेव तापसकन्यकायाम् ममाभिलाषः ।[125]

पश्य,

क्व वयं क्व परोक्षमन्मथो
मृगशावैस्समम् एधितो जनः ।
परिहासविकल्पितं सखे
परमार्थेन न गृह्यते वचः ।। **2 – 17** ।। [126]

विदूषकः– एवम् णेदं । सोत्थि भवदे ।, (एवमेतत् । स्वस्ति भवते ।)[127]

(इति निष्क्रान्तास्सर्वे ।।)[128]

।। इति द्वितीयोऽङ्कः ।।

।। अथ तृतीयोऽङ्कः ।।

(ततः प्रविशति यजमानशिष्यः ।) [1]

शिष्यः – (कुशान् आदाय) अहो महाप्रभावो दुष्यन्तः । प्रविष्टमात्र एव सारथिद्वितीये तत्रभवतीदम् आश्रमपदं निवृत्तरक्षोविघ्नं संवृत्तम्, निरुपप्लवानि च नः कर्माणि सिद्धानि । [2]

का कथा बाणसन्धाने ज्याशब्देनैव दूरतः ।
हुङ्कारेणेव धनुषस्स हि विघ्नान् अपोहति ।। **3 –1** ।। [3]

यावदिमान् वेदिसंस्तरणार्थं दर्भान् ऋत्विग्भ्य उपाहरामि । (परिक्रम्याकाशे) प्रियंवदे, कस्येदम् उशीरानुलेपनं मृणालवलयवन्ति च कमलिनीपत्राणि नीयन्ते । (श्रुतिमभिनीय) किं ब्रवीषि । आतपलङ्घनाद् बलवद् अस्वस्था शकुन्तला । तस्या दाहे निर्वापणायेति । अहो यत्नाद् उपक्रम्यतां सखी, यतस्तत्रभवतः कुलपतेस्तद् उच्छ्वसितम् । अहमपि वैतानिक-शान्त्युदकम् अस्यै गौतमीहस्ते प्रहेष्यामि । (इति निष्क्रान्तः) [4]

।। प्रवेशकः[1] ।। [5]

(ततः प्रविशति कामयानावस्थो[2] राजा) [6]

राजा – (सवितर्कम्) जाने तपसो वीर्यं सा बाला परवतीति मे विदितम् ।
अलमस्मि ततो हृदयं तथापि नेदं निवर्तयितुम्[3] ।। **3 – 2** ।। [7]

(सासूयम्) कुसुमायुध, त्वया चन्द्रमसा च विश्वसनीयाभ्यामभिसन्धीयते कामिजनसार्थः । कथमिति । [8]

तव कुसुमशरत्वं शीतरश्मित्वमिन्दो-
र्द्वयमिदमयथार्थं दृश्यते मद्विधेषु ।
विसृजति हिमगर्भैरग्निम् इन्दुर्मयूखै-
स्त्वमपि कुसुमबाणान् वज्रसारीकरोषि ।। **3 – 3** ।। [9]

अथवा,

अनिशमपि[4] मकरकेतुर्मनसो रुजमावहन्नभिमतो मे ।
यदि मदिरायतनयनां तामधिकृत्य प्रहरति[5] ।। **3 – 4** ।। [10]

(सखेदम्) क्व नु खलु संस्थिते कर्मणि सदस्यैरनुज्ञातविश्रान्तिः श्रान्तम् आत्मानं विनोदयामि । (निःश्वस्य) किं नु खलु प्रियादर्शनाद् ऋते शरणम् अन्यत् । यावदेनाम् अन्विष्ये । (सूर्यम् अवलोक्य) इमाम् उग्रतमां वेलां प्रायेण लतावलयवत्सु मालिनीतीरेषु तत्रभवती ससखीजना गमयति । तत्रैव तावद् गमिष्यामि[6] । [11]

(परिक्रम्य साह्लादं वायुस्पर्शं निरूपयन्)

अहो, प्रवातसुभगोऽयमुद्देशः । [12]

---

[1] अर्थोपक्षेपकस्यास्य नामाभिधानं नाट्यशास्त्रानुसारि । बृहत्पाठपरम्परायामपीदमेव नाम संचरितम् ।
[2] कामयानशब्दः सिद्धोऽनादिश्चेत् । इति वामनस्य का.सू.वृत्तौ 5-82, रघुवंशे 19-50 इत्यत्र च प्रयुक्तः ।
[3] का.-मै.-बं.-पाठेष्वितः परम् "अद्यापि नूनं हरकोपवह्निर0" इति । 3-26 श्लोकानुरोधात् पुनरुक्तिग्रस्तोऽयं श्लोकः । अतः प्रक्षिप्तः सिध्यति । (प्रक्षिप्त-श्लोक-संख्या-8)
[4] काश्मीर-पाठात् संक्षेपीकरणस्याशयात् निष्कासितोऽप्ययं श्लोकः मैथिल-पाठानुरोधात् स्वीक्रियते । अत्र "अथवे"ति निपातेनावतारितेऽस्मिन् श्लोके पक्षान्तरमपि प्रस्तूयते, तेनास्य श्लोकस्य मौलिकत्वं सिध्यति ।
[5] मै.-बं.-पाठयोरितः परं "वृथैव संकल्पशतैरजस्रमनङ्ग0" । (प्रक्षिप्त-श्लोक-संख्या-9)
[6] मै.-बं.-पाठयोरितः परं "संमीलन्ति न तावद् बन्धनकोशाः0" इति । "नादत्ते प्रियमण्डनापि0" इति वक्ष्यमाणेन वचनेन सहास्य श्लोकस्य विरोधादयं श्लोकः प्रक्षिप्तः सिध्यति । (प्रक्षिप्त-श्लोक-संख्या- 10)

शक्योऽरविन्दसुरभिः कणवाही मालिनीतरङ्गाणाम् ।
मदनग्लानैरङ्गैः पीडितमालिङ्गितुं पवनः ।। **3 – 5** ।। [13]

(परिक्रम्यावलोक्य च) अस्मिन् वेतसपरिक्षिप्ते लतामण्डपके शकुन्तलया भवितव्यम् । तथा हि , (अधोऽवलोक्य) [14]

अल्पनिहिता पुरस्तादवगाढा जघनगौरवात्पश्चात् ।
द्वारेऽस्य पाण्डुसिकते पदपङ्क्तिर्दृश्यतेऽभिनवा ।। **3 – 6** ।। [15]

यावद्विटपान्तरेणावलोकयामि । (तथा कृत्वा सहर्षम्) अये, लब्धं खलु नेत्रनिर्वापणम्[7] । एषा मनोरथभूमि-प्रियतमा मे सकुसुमास्तरणं शिलापट्टमधिशयाना[8] सखीभ्याम् अन्वास्यते । भवतु । लताव्यवहितः श्रोष्यामि यावदासां विस्रब्धकथितानि । (तथा कुर्वन् स्थितः) [16]

(ततः प्रविशति यथा निर्दिष्टा शकुन्तला सख्यौ च) [17]

सख्यौ – (उपवीज्य सस्नेहम्) सहि सउन्तले, अवि सुहाअदि दे णलिणीपत्तवादो । (सखि शकुन्तले, अपि सुखायते ते नलिनीपत्रवातः ।) [18]

शकुन्तला –(वेदनां नाटयित्वा) किं वा वीजअन्ति, मं सहीओ । (किं वा वीजयतः, मां सख्यः ।) [19]

(उभे सविषादं मुखम् अन्योन्यं पश्यतः ।) [20]

(शकुन्तला सखेदं निश्श्वसिति ।) [21]

राजा – बलवदस्वस्था खल्वत्रभवती । (सवितर्कम्) किमत्रायमातपदोषः स्याद्, उत यथा मे मनसि वर्तते । (साभिलाषं निर्वर्ण्य) अथवा कृतं सन्देहेन । [22]

स्तनन्यस्तोशीरं प्रशिथिलमृणालैकवलयं
प्रियायाः साबाधं तदपि कमनीयं वपुरिदम् ।
समस्तापः कामं मनसिजनिदाघप्रसरयो-
र्न तु ग्रीष्मस्यैवं सुभगमपराद्धं युवतिषु ।। **3 – 7** ।। [23]

प्रियंवदा –(जनान्तिकम्) अणुसूए, तस्स राएसिणो पढमदंसणादो आरभिअ पज्जुस्सुअमणा सउन्तला । ण खु से अण्णणिमित्तो आदङ्को भवे । (अनुसूये, तस्य राजर्षेः प्रथमदर्शनादारभ्य पर्युत्सुकमनाः शकुन्तला । न खल्वस्याः अन्यनिमित्त आतङ्को भवेत् ।) [24]

अनुसूया – ममावि एरिसी आसङ्का । भोदु । पुच्छस्सं । सहि पुच्छिदव्वा सि किं पि । बलीओ खु अङ्ग-संतावो । (ममापि ईदृश्याशङ्का । भवतु । प्रक्ष्यामि । सखि, प्रष्टव्यासि किमपि । बलीयान् खल्वङ्गसन्तापः[9] ।) [25]

शकुन्तला – (पूर्वार्धेन शयनादुत्थाय) हला, भण जं वत्तुकामासि । (सखि, भण यद् वक्तुकामासि ।)[10] [26]

अनसूया – हला सउन्तले, अनन्तरण्णा अम्हे मअणगदस्स वुत्तन्तस्स । तहावि जादिसी इदिहास-गदेसु मअणवुत्तन्तेसु कामअमाणस्स अवत्था सुणीअदि तादिसं च लक्खम्ह । ता कहेहि किं णिमित्तं दे अअं आआसो, विआरं खु परमत्थदो अआणिअ अणारम्भो पडीआरस्स । (हला शकुन्तले, अनन्तरज्ञा वयं मदनगतस्य वृत्तान्तस्य । तथापि यादृशीतिहासगतेषु

---

[7] कृतिनिष्ठान्तरिकप्रमाणेन समर्थितः । यथा- विष्कम्भक एवोक्तम् "तस्याः शरीरदाहे निर्वापणाये"ति । तथा चाग्रे नायको भणिष्यति- "स्मर एव तापहेतुर्निर्वापयिता स एव मे जातः" (3-10) इति ।

[8] रंगभूमौ नायिकायाः शयनावस्था निरूप्यते, सा च "अङ्के निधाय चरणावुत पद्मताम्रौ0" (3-20) पर्यन्तं प्रवर्तते । दीर्घकालपर्यन्तं प्रवर्तनीया सेति कविसंकल्पिता दृश्य-योजना ।

[9] इतः परं राज्ञो मुखे "शशिकरविशदान्यस्यास्तथे"ति श्लोकः बंगीय-पाठे प्राप्यते ।, (प्रक्षिप्त-श्लोक-संख्या-11)

[10] अयम् (उक्ति-क्रमांकाः 24-26) पाठ्यांशो बंगीय-पाठात् गृहीतः । काश्मीर-मैथिल-पाठयोर्न विद्यते पाठ्यांशोऽयमिति । यद्यपि तत्र "शशिकरविशदानी"ति श्लोकस्तु प्रक्षिप्त इति पूर्वं कथितं, तदवधेयम् ।

मदनवृत्तान्तेषु कामयमानस्यावस्था श्रूयते तादृशञ्च लक्षावहे । तत्कथय, किं निमित्तं तेऽयम् आयासो, विकारं खलु परमार्थतोऽज्ञात्वाऽनारम्भः प्रतिकारस्य ।) [27]

राजा – अनसूययाप्यनुगतो मदीयस्तर्कः । [28]

शकुन्तला – (आत्मगतम्) बलवं च मे अहिणिवेसो । ण अ सक्कणोमि सहसा णिवट्टिदुम् । (बलवान् च मेऽभिनिवेशः । न च शक्नोमि सहसा निवर्तितुम् ।) [29]

प्रियंवदा – सहि, सुट्ठु एसा भणादि । किं णेदं अत्तणो उवद्दवं निगूहसि । अणुदिअसं च परिहीअसे अङ्गेहिं । केवलं लावण्णमई च्छाआ तुमं ण मुञ्चदि । (सखि, सुष्ठ्वेषा भणति । किमेतमात्मन उपद्रवं निगूहसि । अनुदिवसं च परिहीयसेऽङ्गकैः । केवलं लावण्यमयीच्छाया त्वां न मुञ्चति ।) [30]

राजा – अवितथमाह प्रियंवदा । तथा ह्यस्याः – [31]

क्षामक्षामकपोलमाननमुरः काठिन्यमुक्तस्तनं
मध्यं कान्ततरं प्रकामविनतावंसौ छविः पाण्डुरा ।
शोच्या च प्रियदर्शना च मदनक्लिष्टेयमालक्ष्यते
पत्राणामिव शोषणेन मरुता स्पृष्टा लता माधवी ।। **3 – 8** ।। [32]

शकुन्तला – कस्स वा अण्णस्स इदं कधइदव्वं । आआसइत्ति दाणिं वो भविस्सं । (कस्य वान्यस्येदं कथयितव्यम् । आयासयित्रीदानीं वो भविष्यामि ।) [33]

उभे – अदो य्येव णो णिब्बन्धो । संविभत्तं खु दुःखं सज्झवेअणं होदि । (अत एव नो निर्बन्धः । संविभक्तं खलु दुःखं सह्यवेदनं भवति ।) [34]

राजा –

पृष्टा जनेन समदुःखसुखेन बाला
नेयं न वक्ष्यति मनोगतमाधिहेतुम् ।
दृष्टो विवृत्य बहुशोऽप्यनया सहावम्
अत्रोत्तरं श्रवणकातरतां गतोऽस्मि ।। **3 – 9** ।। [35]

शकुन्तला – (सलज्जम्) जदो पहुदि सो तवोवणरक्खिदा राएसि मम दंसणपधं गदो,.....। (यतः प्रभृति स तपोवनरक्षिता राजर्षिः मम दर्शनपथं गतः ..... ।) [36]

(इत्यर्धोक्तेन लज्जां नाटयति) [37]

उभे – कधेदु पिअसही । (कथयतु प्रियसखी ।) [38]

शकुन्तला – तदो आरभिअ तग्गदेण अहिलासेण एदावत्थ म्हि संवुत्ता । (तत आरभ्योद्गतेनाभिलाषेण एतदवस्थास्मि संवृत्ता ।) [39]

उभे – दिठ्ठिआ, दाणिं दे अणुरूअवराहिलासो । अहवा साअरं वज्जिअ कहिं वा महाणदीए पविसिदव्वं ? । (दिष्ट्या, इदानीम् ते अनुरूपवराभिलाषः । अथवा सागरं वर्जयित्वा कुत्र वा महानद्या प्रवेष्टव्यम् ।)[11] [40]

राजा – (सहर्षम्) श्रुतं श्रोतव्यम् । [41]

स्मर एव तापहेतुर्निर्वापयिता[12] स एव मे जातः ।
दिवस इवाभ्रश्यामस्तपात्यये जीवलोकस्य ।। **3 – 10** ।। [42]

शकुन्तला – एवं जदि वो अहिमदं तत् तधा मन्तेधं मं जधा तस्स राएसिणो अणुअम्पणीआ होमि । अण्णधा मां सिञ्चध दाणिं उदएण । (एवं यदि वोऽभिमतं तत्तथा मन्त्रयेथां मां यथा तस्य राजर्षेरनुकम्पनीया भवामि । अन्यथा मां सिञ्चतमिदानीम् उदकेन ।) [43]

राजा – विमर्शच्छेदि वचनम्[13] । [44]

---

[11] अयं पाठो (उक्ति-क्रमांकाः 28-41) मैथिल-पाठानुरोधेन द्विभागे विभज्य स्थापितः । कदाचित् तथैव पाठः मौलिकः स्यादित्यनुमीयते ।

[12] अयं "निर्वापयिते"ति शब्दोऽपि "लब्धं मया नेत्रनिर्वापणमि"त्यस्यैव पाठस्य समर्थको भवति ।

प्रियंवदा – (जनान्तिकम्)) अणसूए, दूरेगदमम्महा इअं अक्खमा कालहरणस्स । जस्सिं बद्धभावा सो वि ललामभूदो पोरवाणं । ता तुरिदव्वं येव से अहिलासं अणुवट्टिदुं । (अनसूये, दूरेगतमन्मथेयम् अक्षमा कालहरणस्य । यस्मिन् बद्धभावा सोऽपि ललामभूतः पौरवाणाम्, तत् त्वरितव्यम् एवास्या अभिलाषम् अनुवर्तितुम् ।) [45]

अनसूया – (अपवार्य) जधा भणसि । (यथा भणसि[14]) [46]

अनसूया – को उण उवाओ भवे जेण सहीए अविलम्बिदं णिगूढं मणोरहं संपादेम्ह ।
(कः पुनरुपायो भवेद् येन सख्या अविलम्बितं निगूढं मनोरथं सम्पादयावः ।) [47]

प्रियंवदा – णिगूढं पअदिदव्वं त्ति चिन्तणीअं भवे । सिग्घं त्ति ण दुक्करं । (निगूढं प्रयतितव्यम् इति चिन्तनीयं भवेद् । शीघ्रमिति न दुष्करम् ।) [48]

अनसूया – कधं विअ । (कथमिव ।) [49]

प्रियंवदा – सो राएसी इमाए सिणद्धदृट्ठि सूइदाहिलासो, इमाइं दिवसाइं पआअरकिसो विअ लक्खेअदि । (स राजर्षिरस्यां स्निग्धदृष्टिः सूचिताभिलाष, इमानि दिवसानि प्रजागरकृश इव लक्ष्यते ।) [50]

राजा – सत्यमित्थंभूतोऽस्मि । तथा हि – [51]

इदमशिशिरैरन्तस्तापैर्विवर्णमणीकृतं
निशि निशि भुजन्यस्तापाङ्गप्रवृत्तिभिरश्रुभिः ।
अनभिलुलितज्याघाताङ्कान्मुहुर्मणिबन्धनात्
कनकवलयं स्रस्तं स्रस्तं मया प्रतिसार्यते ।। **3 – 11** ।। [52]

प्रियंवदा – (विचिन्त्य) अणसूए, मअणलेहो दाणिं करीअदु । तं सुमणोगोविदं कदुअ देवसेसावदेसेण तस्स रञ्ञो हत्थे पाडइस्सं । (अनसूये, मदनलेख इदानीं क्रियताम् । तं सुमनोगोपितं कृत्वा देवशेषापदेशेन तस्य राज्ञो हस्ते पातयिष्यामि ।) [53]

अनसूया – रोअदि मे सुउमारपओओ । किं वा सउन्तला भणादि । (रोचते मे सुकुमार-प्रयोगः । किं वा शकुन्तला भणति ।) [54]

शकुन्तला – (सलज्जम्) णिओओ वि विकप्पीअदि । (नियोगोऽपि विकल्प्यते ?।) [55]

प्रियंवदा – (शकुन्तलां प्रति) तेण हि उवण्णासपुरवं अत्तणो चिन्तेहि किंपि सुललिदं पदबन्धं । (तेन हि, उपन्यासपूर्वम् आत्मनश्चिन्तय किमपि सुललितं पदबन्धम् ।) [56]

शकुन्तला – चिन्तइस्सं । अवधीरणाभीरुअं पुणो वेवदि मे हिअअं । (चिन्तयिष्यामि । अवधीरणाभीरुकं पुनर्वेपते मे हृदयम् ।) [57]

राजा – (सहर्षम्)

अयं स ते तिष्ठति संगमोत्सुको
विशङ्कसे भीरु यतोऽवधीरणाम् ।
लभेत वा प्रार्थयिता न वा श्रियं
श्रियो दुरापः कथमीप्सितो भवेत्[15] ।। **3 – 12** ।। [58]

सख्यौ – अत्तगुणावमाणिणि । को दाणिं सारदिअं जोण्हं आदवत्तेण वारयिस्सदि । (आत्मगुणावमानिनि, क इदानीं शारदीयां ज्योत्स्नाम् आतपत्रेण वारयिष्यति ।) [59]

---

[13] काश्मीर-पाठ इतः परम् "एतावत् कामफलं, यत्नफलमन्यदि"ति ।, मै.-पाठे "एतदवस्थापि मां सुखयती"-ति ।, (एतावान् कामिनः इत्यारभ्य । शृ. प्र. 29-105, पृ. 1300) ते च सर्वे पाठ्यांशाः प्रक्षिप्ता एव ।

[14] का.-पाठ इतः परं नायक-नायिकयाः कृते 1. सागर-महानद्योः, 2. सहकारातिमुक्तलतयोरुपमानं प्रयुक्तं दृश्यते । एवञ्च, दुःषन्तेन प्रयुक्तमुपमानं (चित्राविशाखे शशाङ्कलेखामनुवर्तत इति) तच्च सर्वं प्रक्षिप्तमेव, यतो हि "अक्षमेयं कालहरणस्ये"ति निश्चयात् परं काव्यस्य / वाग्विलासस्य नैवावकाशः ।

[15] मै.-बं.-पाठयोरितः परं "अयं स यस्मात् प्रणयावधीरणाम्0" इति ।, (प्रक्षिप्त-श्लोक-संख्या- 12)

राजा – (विलोकयन्) स्थाने खलु विस्मृतनिमेषेण चक्षुषा प्रियामवलोकयामि । [60]

उन्नमितैकभ्रूलतमाननमस्याः पदानि रचयन्त्याः ।
कण्टकितेन प्रथयति मय्यनुरागं कपोलेन ।। **3 – 13** ।। [61]

शकुन्तला – हला, चिन्तिदा मए गीदिया । असण्णिहिदाणि उण लेहसाहणाणि । (हले, चिन्तिता मया गीतिका । असन्निहितानि पुनर्लेखसाधनानि ।) [62]

प्रियंवदा – णं इमस्सिं सुओदरसुउमारे णलिणीवत्ते पत्तच्छेदभत्तीए णहेहिं णिक्खित्तवण्णं करेहि । तदो सुणम्ह से अक्खराइं । (नन्वस्मिंश्शुकोदरसुकुमारे नलिनीपत्रे पत्रच्छेदभक्त्या नखैर्निक्षिप्तवर्णं कुरु । ततः शृणुमोऽस्याक्षराणि ।) [63]

शकुन्तला – (तथा कृत्वा[16]) सुणेह दाव णं संगदत्था ण वेत्ति । (शृणुतं तावदेनां सङ्गतार्था न वेति ।)[64]

उभे – अवहिद म्ह । (अवहिते स्वः ।) [65]

शकुन्तला – (पठति)

तुज्झ ण आणे हिअअं मम उण मअणो[17] दिवा अ रत्तिं अ ।
णिक्कीव तवेइ बलिअं तुह हुत्तमणोरहाइ अङ्गाइं ।। **3 – 14** ।।
(तव न जाने हृदयं मम पुनः मदनो दिवा च रात्रिश्च ।
निष्कृप, तपति बलीयस्तवाभिमुखमनोरथान्यङ्गानि) ।। **3 – 14** ।। [66]

राजा – (सहर्षमुपगम्य)

तपति तनुगात्रि मदनस्त्वामनिशं, मां पुनर्दहत्येव ।
ग्लपयति यथा शशाङ्कं न तथा हि कुमुद्वतीं दिवसः ।। **3 –15** ।। [67]

सख्यौ – (विलोक्य सहर्षमुत्थाय) सागदं जधा चिन्तिदफलस्स अवलम्बिणो मणोरहस्स । (स्वागतं यथा चिन्तितफलस्यावलम्बिनो मनोरथस्य । [68]

शकुन्तला – (आत्मगतं ससाध्वसं च) हिअअ, तधा उत्तम्मिअ दाणिं ण किंचि पडिवज्जसि । (हृदय, तथोत्ताम्येदानीं न किञ्चित् प्रतिपद्यसे । (इत्युत्थातुमिच्छति) [69]

राजा – अलमायासेन । [70]

संस्पृष्टकुसुमशयनान्याशुर्विवर्णितमृणालवलयानि ।
गुरुसंतापानि न ते गात्राण्युपचारमर्हन्ति ।। **3 – 16** ।। [71]

अनसूया – इदो सिलादलेक्कदेसं अणुगेण्हदु वअस्सो । (इतः शिलातलैकदेशमनुगृह्णातु वयस्यः ।) [72]

राजा – (उपविश्य) प्रियंवदे, कच्चित् सखीं वो नातिबाधते शरीरसंतापः । [73]

प्रियंवदा – (सख्या सहोपविष्टा) लब्धोसधो संपदं उवसमं गमिस्सदि कालेण । (लब्धौषधस्साम्प्रतम् उपशमं गमिष्यति कालेन[18] ।) [74]

प्रियंवदा – महाभाअ, दोण्हं पि वो अण्णोण्णाणुराओ पच्चक्खो । सहीसिणेहो उण मं पुणरुत्तवादिणीं करेदि । (महाभाग, द्वयोरपि वाम् अन्योऽन्यानुरागः प्रत्यक्षः । सखीस्नेहः पुनर्माम् पुनरुक्तवादिनीं करोति ।) [75]

राजा – उच्यताम्, विवक्षितं ह्यनुक्तम् अनुतापं जनयति । [76]

प्रियंवदा – तेण हि सुणादु महाराओ । (तेन हि शृणोतु महाराजः ।) [77]

राजा – अवहितोऽस्मि । [78]

---

[16] शकुन्तला तूदरमाधारीकृत्य शयनावस्थायां मदनलेखं लिखतीत्यवधेयम् ।

[17] मैथिलपाठाद् गृहीतमिदं पाठान्तरम् । तच्च समीचीनम्, राज्ञ उक्तावपि मदनशब्दस्यैव संनिवेशाद् ।

[18] इतः परं "मेघनादाहतां मयूरीमिव0" इत्युपमाने प्रयुज्यमाने सति, शकुन्तलां सलज्जा तिष्ठतीति पाठान्तरं मैथिलादि-पाठेषु, किन्तु तत्तु प्रक्षिप्तमेव । यतो हि, शकुन्तलया तु शयितव्यमेवेति कविसंकल्पिता योजना ।

प्रियंवदा – इअं णो सही तुमं य्येव उद्देसिअ भअवदा मअणेण इमं ईदिसं अवत्थन्तरं णीदा। ता अरिहसि अब्भुवत्तीए से जीविदं अवलम्बिदुं। (इयं नस्सखी त्वामेवोद्दिश्य भगवता मदनेनेदमीदृशम् अवस्थान्तरं नीता। तदर्हस्यभ्युपपत्त्याऽस्या जीवितम् अवलम्बितुम्।) [79]

राजा – भद्रे, साधारण एषः प्रणयः। सर्वथा अनुगृहीतोऽस्मि[19]। [80]

शकुन्तला – (सस्मितम्) हला, अलं वो अन्तेउर-विहार[20]-पय्युस्सुएण राएसिणा उवरुद्धेण। (हला, अलं वोऽन्तःपुर-विहार-पर्युत्सुकेन राजर्षिणोपरोधेन।) [81]

राजा – सुन्दरि,

इदमनन्यपरायणमन्यथा
हृदयसन्निहिता हृदयं मम।
यदि समर्थयसे मदिरेक्षणे
मदनबाणहतोऽपि हतः पुनः ॥ **3 – 17** ॥ [82]

अनसूया – वअस्स, बहुवल्लभा राआणो सुणीअन्ति। जधा णो सही बन्धुअणे असोअणीआ होदि तधा णिव्वाहेहि। (वयस्य, बहुवल्लभा राजानः श्रूयन्ते। यथा नः सखी बन्धुजनेऽशोचनीया भवति, तथा निर्वाहय।) [83]

राजा – भद्रे,

परिग्रहबहुत्वेऽपि द्वे प्रतिष्ठे कुलस्य मे।
धर्मेणोल्लिखिता[21] लक्ष्मीस्सखी च युवयोरियम् ॥ **3 – 18** ॥ [84]

उभे – अणुगिहिद म्ह। (अनुगृहीते स्वः[22]।) [85]

अनसूया – (बहिर्विलोक्य) पिअंवदे, एसो मिअपोदओ इदो तदो दिण्णदिट्ठी उस्सुओ णूणं मादरं परिब्भट्ठं अण्णेसदि। ता संजोजइस्सं दाव णम्। (इत्युत्तिष्ठति) (प्रियंवदे, एष मृगपोतक इतस्ततो दत्तदृष्टिरुत्सुको नूनं मातरं परिभ्रष्टाम् अन्वेषति। तत्संयोजयिष्यामि तावदेनम्।) [86]

प्रियंवदा – णं चवलओ खु एसो। एआइणी णिओजेदुं ण पारेसि। ता अहं पि दे अणुवत्तिदुं करयिस्सं। (ननु चपलकः खल्वेषः। एकाकिनी नियोजयितुं न पारयसि। तदहमपि ते अनुवर्तितुं करिष्यामि।) [87]

(इत्युभे प्रस्थिते) [88]

शकुन्तला – हला अण्णदरा वो गच्छदु, अण्णधा असरण म्हि। (हले, अन्यतरा वो गच्छतु। अन्यथा--ऽशरणाऽस्मि।) [89]

उभे – (सस्मितम्) जो पुहवीए सरणं, सो तुह समीवे। (यः पृथिव्याः शरणं स तव समीपे।) [90]

(इति निष्क्रान्ते) [91]

शकुन्तला – कधं गदं य्येव। (कथं गतम् एव।) [92]

राजा – अलमावेगेन। नन्वयमाराधयिता जनस्तव सखीभूमौ वर्तते। तदुच्यताम् – [93]

किं शीतलैः क्लमविनोदिभिरार्द्रवातं
संचालयामि नलिनीदलतालवृन्तैः।
अङ्के निधाय चरणावुत पद्मताम्रौ
संवाहयामि करभोरु यथासुखं ते ॥ **3 – 19** ॥ [94]

शकुन्तला – ण माणणीए जणे अत्ताणअं अवराधइस्सं। (न माननीयेषु जने आत्मानम्

---

[19] मै.-पाठाद् गृहीतेयमुक्तिः। यया चोक्त्या दम्पत्योर्मध्ये समान उपाकार्योपकारकभावो भवितुमर्हतीति ध्वन्यते। (का.-पाठे-"ऽनुगृहीतोऽस्मी"त्येव। अत्र तु दुष्यन्तः स्वयमुपकृत इति कथयन्नपि केवलम् उपकारक-व्यक्तिरूपेणैव प्रदर्श्यते।)

[20] का.-पाठस्यास्य समर्थनमुत्तरवर्तिन्यामुक्त्यां (बहुवल्लभेति शब्देन) प्राप्यते।

[21] का.-पाठस्यास्य समर्थनं षष्ठांके धनमित्रस्य प्रसंगे दृश्यते। तस्यानपत्यस्य धनं नाहरति दुःषन्तः।

[22] का.-मै.-बं.-पाठेष्वितः परम् "अपराधमिमं ततः सहिष्ये0" इति। (प्रक्षिप्त-श्लोक-संख्या- 13)

अपराधयिष्यामि ।) [95]

(अवस्थासदृशमुत्थाय प्रस्थिता) [96]

राजा – (अवष्टभ्य) सुन्दरि, अपरिनिर्वाणोऽयं दिवसः । इयं च तेऽवस्था । [97]

उत्सृज्य कुसुमशयनं कदलीदलकल्पितस्तनावरणम् ।
कथमातपे गमिष्यसि परिपाण्डुरपेलवैरङ्गैः[23] ॥ **3 – 20** ॥ [98]

शकुन्तला – (कृतककोपा) पोरव, रक्ख विणअं । इदो इदो इसिओ सञ्चरन्ति । (पौरव, रक्ष विनयम् । इत इत ऋषयः सञ्चरन्ति[24] ।) [99]

राजा – (दिशोऽवलोक्य) कथं प्रकाशम् अस्मि निर्गतः । [100]

(ससंभ्रमम्, शकुन्तलां मुक्त्वा तैरेव पदैर्निवर्तते ।) [101]

शकुन्तला – (स्तोकमुपगम्य साङ्गभङ्गम्) पोरव, अणिच्छापूरओ वि दंसणमेत्तसुहदो ण ते अअं जणो विसुमरिदव्वो । (पौरव, अनिच्छापूरकोऽपि दर्शनमात्रसुखदो न तेऽयं जनो विस्मर्तव्यः) [102]

राजा – सुन्दरि,[103]

त्वं दूरमपि गच्छन्ती हृदयं न जहासि मे ।
दिनावसानच्छायेव[25] पुरोमूलं वनस्पतेः[26] ॥ **3 – 21** ॥ [104]

शकुन्तला – (स्तोकमिव गत्वा) हद्धी, ण मे चरणा पुरोमुहा पहवन्ति । इमेहिं अय्यउत्तस्स कुरवएहिं ववहिदा पच्छादो लदामण्डवअस्स पेक्खिस्सं दाव से भावानुबन्धं । (तथा करोति) (हा धिक्, न मे चरणौ पुरोमुखौ प्रभवतः । एभिरार्यपुत्रस्य, कुरबकैर्व्यवहिता पश्चाल्लता-मण्डपकस्य प्रेक्षिष्ये तावद् अस्य भावानुबन्धम् ।) [105]

राजा – प्रिये, माम् एवम् अनुरागैकरसं समुत्सृज्य प्रस्थितैवासि निरपेक्षं गन्तुम्[27] । [106]

अनिर्दयोपभोग्यस्य रूपस्य मृदुनस्तथा ।
दारुणं खलु ते चेतः शिरीषस्येव बन्धनम्[28] ॥ **3 – 22** ॥ [107]

शकुन्तला – इमं सुणिअ ण मे अत्थि विहवो गन्तुम् । (इमं श्रुत्वा न मेऽस्ति विभवो गन्तुम् ।) [108]

राजा – किमिहाहं सम्प्रति प्रियाशून्ये करोमि । गमिष्यामि । (प्रस्थितः । भूमिं विलोक्य) हन्त, व्याहतं मे गमनम् । [109]

मणिबन्धविगलितमिदं
संक्रान्तोशीरपरिमलं तस्याः ।
हृदयस्य निगडमिव मे
मृणालवलयं स्थितं पुरतः[29] ॥ **3 – 23** ॥ [110]

(सबहुमानमादत्ते) [111]

शकुन्तला – (हस्तमवलोक्य) अम्मो, दुब्बलसिढिलदाए पब्भट्ठं पि एदं मुणालवलअं मए ण विण्णादं । (अहो, दुर्बलशिथिलतया प्रभ्रष्टमपि एतन्मृणालवलयं मया न विज्ञातम् ।) [112]

---

[23] का.-मै.-बं.-पाठेष्वितः परम् "अप्यौत्सुक्ये महति न वरप्रार्थनासु प्रतार्याः" इति ।(प्रक्षिप्त-श्लोक-संख्या-14)

[24] मै.-बं.-दाक्षि.-देव.-पाठेष्वितः परं "गान्धर्वेण विवाहेन बह्व्यो हि मुनिकन्यकाः0" इति ।, (प्रक्षिप्त-श्लोक-संख्या- 15), केवलं का.-पाठे तु नास्त्येतादृशः श्लोकः ।

[25] मध्याह्नकालात्समारब्धोऽयं मिलनप्रसंगः सायंकालपर्यन्तं प्रचलतीत्यवधेयम् ।

[26] शृङ्गारप्रकाशे (28-155, पृ. 1270) समुद्धृतोऽयं श्लोकः ।

[27] असमञ्जसपदक्रमेऽस्मिन् दुःषन्तस्य मनोविचलनं द्योत्यते ।

[28] शृङ्गारप्रकाशे (33-68, पृ. 1528) समुद्धृतोऽयं श्लोकः । (श्रीरेवाप्रसादैर्द्विवेदिभिर्न समाकलितः कालिदासीय-पद्यत्वेन)

[29] गणरत्नमहोदधौ (2-70, पृ. 110) समुद्धृतोऽयं श्लोकः ।

राजा – (वलयाभरणमुरसि विन्यस्य) अहो सुखस्पर्शः । [113]

अनेन लीलाभरणेन ते प्रिये
विहाय कान्तं भुजमत्र तिष्ठता ।
जनः समाश्वासित एष दुःखभाग्
अचेतनेनापि सता, न तु त्वया ।। **3 – 24** ।। [114]

शकुन्तला – अदो अवरं असमत्थ म्हि विलम्बिदुं । भोदु । एदेण य्येव ववदेसेण से अत्ताणअं दंसयिस्सं । (अतोऽपरमसमर्थास्मि विलम्बितुम् । भवतु । एतेनैव व्यपदेशेनास्यात्मानं दर्शयिष्यामि ।) [115]

(इत्युपगच्छति) [116]

राजा – (दृष्ट्वा सहर्षम्) अये, जीवितेश्वरी[30] मे प्राप्ता । परिदेवितानन्तरं प्रसादेनोपकर्तव्योऽस्मि खलु दैवस्य । [117]

पिपासाक्षामकण्ठेन याचितं चाल्पयाचिना ।
नवमेघोज्झिता चास्य धारा निपतिता मुखे ।। **3 – 25** ।। [118]

शकुन्तला – (राज्ञः प्रमुखे स्थिता) अङ्ग, अद्धपहे सुमरिअ एदस्स हत्थब्भंसिणो मुणालवलअस्स किदे सण्णिअत्त म्हि । आचक्खिअं विअ मे हिअएण तए गिहीदं त्ति । ता क्खिव इदं, मा मुणिअणे अत्ताणअं मं च सुअइस्ससि । (अङ्ग, अर्धपथे स्मृत्वैतस्य हस्तभ्रंशिनो मृणालवलयस्य कृते सन्निवृत्तास्मि । आख्यातमिव मे हृदयेन त्वया गृहीतमिति । तत् क्षिपेदम् । मा मुनिजन आत्मानं मां च सूचयिष्यसि ।) [119]

राजा – एकेनाभिसन्धिना प्रत्यर्पयेयम्, नान्यथा । [120]

शकुन्तला – केण । (केन ।) [121]

राजा – यदीदमहमेव यथास्थानं निवेशये । [122]

शकुन्तला – एवं करेहि । (एवं कुरु ।), (इत्युपसर्पति ।) [123] [31]

राजा – इमं शिलापट्टमेव संश्रयावः । [124]

(उभौ परिक्रम्योपविष्टौ) [125]

राजा – (शकुन्तलाया हस्तमादाय, आत्मगतम्) [126]
अहो स्पर्शः[32] । [127]

शकुन्तला – (हर्षरोमाञ्चं रूपयति) [128]
तुवरअदु अय्यउत्तो । (त्वरयत्वार्यपुत्रः ।) [129]

राजा – सुन्दरि[33], नातिश्लिष्टः सन्धिरस्य मृणालवलयस्य । यदि तेऽभिप्राय एतद् अन्यथा घटयिष्यामि । [130]

शकुन्तला – (विहस्य) कालक्खेवकुसलो, जं दे रोअदि । (कालक्षेपकुशलः, यत् ते रोचते ।) [131]

राजा – (सव्याजं विलम्बितम् अवमुच्यावलम्ब्य च) सुन्दरि, दृश्यताम् इदम् – [132]

अयं हि ते श्यामलतामनोहरो

---

[30] पूर्वम् ततश्च (उक्ति-क्रमांकः 108-130) नायिकया दुःषन्तस्य कृते "आर्यपुत्र" इति शब्दः प्रयुक्तः । अत्र च नायकेन सा जीवितेश्वरीति शब्देन निरूप्यते, तदवधेयम् ।, (अस्मादेव च संबोधनात्तु षष्ठाङ्कस्य चतुर्थे श्लोके निर्दिष्टस्य गोत्रस्खलनस्य निराधारत्वं न प्रतीयते ।)

[31] [123] उक्तिरियं रंगसूचना च मैथिल-पाठाद् गृहीते ।

[32] इतः परं "हरकोपाग्निदग्धस्य0" इति श्लोकात्मिका स्वगतोक्तिः, सा प्रक्षिप्ता । (प्रक्षिप्त-श्लोक-संख्या-16) ।

[33] इतः पूर्वं दुःषन्तस्य स्वगतोक्ति"रिदानीमस्मि विश्वस्तो भर्तुराभाषणेने"ति, सा रंगकर्मिभिः प्रक्षिप्ता स्यात् ।

विशेषशोभार्थमिवोज्झिताम्बरः ।
मृणालरूपेण नवो निशाकरः
करं समेत्योभयकोटिराश्रितः ।। **3 – 26** ।। [133]

शकुन्तला – ण दाव णं पेक्खामि । पवणकम्पिणा कण्णुप्पलरेणुणा कलुसीकिदा मे दिट्ठि । (न तावद् एनं प्रेक्षे । पवनकम्पिना कर्णोत्पलरेणुना कलुषीकृता मे दृष्टिः ।) [134]

राजा – (सस्मितम्) यदि मन्यसे तदाहमेनां वदनमारुतेन विशदां करिष्ये[34] । [135]

शकुन्तला – अणुकम्पिदा भवेअं । ण उवणदे विस्ससामि । । (अनुकम्पिता भवेयम् । (किन्तु) नोपनते विश्वसिमि ।) [136]

राजा – मा मैवम् । नवो हि परिजनः सेव्यानामादेशात्परं न वर्तते । [137]

शकुन्तला – एसो य्येव दे अच्चुवआरो अविसम्भजणओ । (एष एव तेऽत्युपचारोऽविश्रम्भजनकः।) [138]

राजा – (आत्मगतम्) नाहमेवं रमणीयम् आत्मनस्सेवाकालं शिथिलयिष्यामि । [139]

(मुखम् उन्नमयितुं प्रवृत्तः ।,
शकुन्तला अकामप्रतिषेधं रूपयन्ती विहरति ।) [140]

राजा – अये पर्यश्रुतां ते गतं चक्षुः । अलमस्मान् प्रत्यविनयशङ्कया । उन्नीयतामाननम् । [141]

(शकुन्तला किंचिद् दृष्ट्वा स्थिता[35]) [142]

शकुन्तला – पडिण्णादमन्थरो विअ अय्यउत्तो संवुत्तो । (प्रतिज्ञातमन्थर इवार्यपुत्रस्संवृत्तः ।) [143]

राजा – सुन्दरि, कर्णोत्पलसन्निकर्षाद् ईक्षणसादृश्येन मूढोऽस्मि । [144]

(मुखमारुतेन नेत्रं सिञ्चति ।) [145]

शकुन्तला – भोदु । पकिदित्थ म्हि संवुत्ता । लज्जामि उण अणुवआरिणी पिअआरिणो अय्यउत्तस्स । (भवतु, प्रकृतिस्थाऽस्मि संवृत्ता । लज्जे पुनरुनुपकारिणी प्रियकारिण आर्यपुत्रस्य ।) [146]

राजा – किमन्यत् । [147]

इदमप्युपकृतमबले सुरभि मुखं ते मया यदाघ्रातम् ।
(सस्मितम्) [148]
न तु कमलस्य मधुकरस्सन्तुष्यति गन्धमात्रेण[36] ।। **3 – 27** ।। [149]

शकुन्तला – असंतोसेण किं करयिस्ससि । (असंतोषेण किं करिष्यसि ।) [150]

राजा – इदम् । (इति व्यवसितः) [151]

(नेपथ्ये) [152]

अइ चक्कवाअवहु, आमन्तेहि सहअरं । उवत्थिदा रअणी [37] ।
(अयि चक्रवाकवधु, आमन्त्रयस्व सहचरम् । उपस्थिता रजनी ।) [153]

शकुन्तला – (कर्णं दत्त्वा ससंभ्रमम्) पोरव, एसा मम सरीरवुत्तान्तोवलम्भाअ तादस्स धम्म-कणिअसी

---

[34] का.-मै.-बं.-पाठेषु दृश्यमानस्यास्य कलुषितनेत्रसंमार्जनस्य प्रसंगस्य षष्ठांके "कार्या सैकतलीन .... कण्डूय-मानां मृगीम्0" इति श्लोकेन सह सम्बन्धो वर्तते, सो ध्यानार्हः । अनेन च प्रसंगस्यास्य मौलिकत्वं सिध्यति ।

[35] इतः परम् "चारुणा स्फुरितेनायमपरिक्षतकोमल0" इति श्लोकः त्रिषु बृहत्पाठेषूपलभ्यते । किन्त्वन्तिमे पादे "प्रियाधरः ममानुज्ञां करोति", यद्वा "प्रियाधरः ममानुज्ञां ददाती"ति व्याकरणदृष्ट्या सुसंगतं न प्रतिभाति । अतः प्रक्षिप्त-श्लोकत्वेन त्याज्यः । (प्रक्षिप्त-श्लोक-संख्या- 17)

[36] दाक्षि.-देव.-पाठयोरस्य श्लोकस्य स्थाने "अपरिक्षतकोमलस्य यावत्0" इत्यपरः श्लोकः स्थाप्यते । (प्रक्षिप्त-श्लोक-संख्या-18)

[37] का.-पाठे "आर्या गौतमी"त्येव ।, किन्तु नाटकेऽस्मिन् शकुन्तलायाः कृते चक्रवाकादीनां पक्षिणां नैकानि प्रतीकानि प्रयुक्तानि प्राप्यन्ते । अत उक्तिरियं मैथिल-पाठात् स्वीक्रियते ।

उवत्थिदा, ता विडवान्तरिदो होहि । (पौरव, एषा मम शरीरवृत्तान्तोपालम्भाय तातस्य धर्मकनीयस्युपस्थिता । तद् विटपान्तरितो भव ।) [154]

राजा – (तथा करोति ।) [155]

(ततः प्रविशति पात्रहस्ता गौतमी) [156]

गौतमी – (उपसृत्य) अच्चाहिदं । इदो देवदासहाआ चिट्ठसि । (अत्याहितम्, इत देवतासहाया तिष्ठसि ।) [157]

शकुन्तला – इदाणिं य्येव मालिणिं अवदीण्णाओ पिअंवदामिस्साओ । (इदानीमेव मालिनीम् अवतीर्णाः प्रियंवदामिश्राः ।) [158]

गौतमी – (दर्भोदकेन शकुन्तलामभ्युक्ष्य) वत्से, निराबाधा त्वं चिरं जीव । अवि लहुसंतावाइं दे अङ्गाइं । (वत्से, निराबाधा त्वं चिरं जीव । अपि लघुकसन्तापानि तेऽङ्गानि ।) [159]

शकुन्तला – अत्थि विसेसो । (अस्ति विशेषः ।) [160]

गौतमी – वच्छे, परिणदो दिअसो । ता एहि । उडअं य्येव गच्छम्ह । (वत्से, परिणतो दिवसः । तदेहि । उटजमेव गच्छामः ।) [161]

शकुन्तला – (अपवार्य) हिअअ, मणोरहदुल्लहं जणं पाविअ कालहरणं करेसि । अणुसअ विघट्टिदस्स कधं दे सम्पदं । (पदानि गत्वा प्रतिनिवृत्य, प्रकाशम्) लदागहअ, आमन्तए तुमं पुणो वि परिभोआअ । (इति निष्क्रान्ता) (हृदय, मनोरथदुर्लभं जनं प्राप्य कालहरणं करोषि । अनुशयविघट्टितस्य कथं ते साम्प्रतम् । लतागृहक, आमन्त्रये त्वां पुनरपि परिभोगाय ।) [162]

(इति निष्क्रान्ते) [163]

राजा – (पूर्वस्थानमेत्य सनिःश्वासम्) अहो विघ्नवत्यः प्रार्थितसिद्धयः । मया हि, [164]

मुहुरङ्गुलिसंवृत्ताधरोष्ठं
प्रतिषेधाक्षरविक्लवाभिधानम् ।
मुखमंसविवर्ति पक्ष्मलाक्ष्याः
कथमप्युन्नमितं, न चुम्बितं तु[38] ।। **3 – 28** ।। [165]

क्व नु खलु साम्प्रतं गच्छामि । अथवा इहैव तावत् प्रियापरिभुक्तेऽतिमुक्तकलतावलये स्थास्यामि । [166]

(सर्वतो विलोक्य) [167]

तस्याः पुष्पमयी शरीरलुलिता शय्या शिलायामियं
कान्तो मन्मथलेख एष नलिनीपत्रे नखैरर्पितः ।
हस्ताद्भ्रष्टमिदं बिसाभरण[39]मित्यासाद्य ह्रीनेक्षणान्
निर्गन्तुं सहसा न वेतसगृहादीशोऽस्मि शून्यादपि[40] ।। **3 – 29** ।। [168]

(**नेपथ्ये**) राजन् .. राजन्... । [169]

सायन्तने सवनकर्मणि संप्रवृत्ते
वेदीं हुताशनवतीं परितः प्रयस्ताम् ।
छायाश्चरन्ति बहुधा भयमादधानाः

---

[38] आनन्दवर्धनेन ध्वन्यालोके (3-16) त्विति निपातस्य व्यंजकतामुदाहर्तुमुद्धृतोऽयं श्लोकः ।, मंचनावसरे तु-निपातस्योच्चारणसमये चुम्बनाकृतिर्जायते द्वयोरोष्ठयोः । अतो "न चुम्बितं तदि"ति पाठभेदो न प्रासंगिकः ।

[39] अस्य बिसाभरणस्योल्लेख एव दुःषन्तेन शकुन्तलाहस्ते मृणालवलयस्य समारोपणं यत्कृतं, तस्य प्रसंगस्य / दृश्यस्य मौलिकतां व्यनक्ति । तस्य च प्रसंगस्य/ दृश्यस्य प्रक्षिप्तत्वं निराकरोति ।

[40] का.-मै.-बं.-पाठेष्वितः परं "रहः प्रत्यासत्तिं यदि सुवदना यास्यति पुनः" इति । (प्रक्षिप्त-श्लोक-संख्या-19)

सन्ध्याभ्रकूटकपिशाः पिशिताशनानाम् ।। **3 – 30** ।। [170]

राजा – (ससम्भ्रमम्) भो भोस्तपस्विनः, मा भैष्ट । अयमहमागतोऽस्मि । [171]

(इति निष्क्रान्तः) [172]

।। इति तृतीयोऽङ्कः ।।

।। अथ चतुर्थोऽङ्कः ।।

(ततः प्रविशतः कुसुमावचयं नाटयन्त्यौ तपस्विकन्यके) [1]

अनसूया – पिअंवदे, जदपि गन्धव्वेण विवाहविहिणा णिव्वुत्तकल्लाणा सउन्तला अणुरूवभत्तिभाइणी संवुत्ता तहावि ण णिवुत्तं मे हिअअं । (प्रियंवदे, यद्यपि गान्धर्वेण विवाहविधिना निर्वृत्तकल्याणा शकुन्तलानुरूपभर्तृभागिनी संवृत्ता, तथापि न निवृत्तं मे हृदयम् ।) [2]

प्रियंवदा – कधं विअ । (कथमिव ।) [3]

अनसूया – अज्ज सो राआ इट्ठिपरिसमत्तीए इसीहिं विसज्जिदो अत्तणो णअरं । पविसिअ अन्दउरे इदोगदं सुमरिस्सदि वा ण वेत्ति । (अद्य स राजेष्टिपरिसमाप्तावृषिभिर्विसर्जित, आत्मनो नगरं प्रति । प्रविश्याऽन्तःपुरम् इतो गतं स्मरिष्यति वा न वेति ।) [4]

प्रियंवदा – इत्थ विसत्था होहि । ण तादिसा आकिदिविसेसा गुणविरोहिणो होन्ति । इत्थिअं उण चिन्तणिज्जं । तादो दाणिं इमं वुत्तान्तं सुणिअ ण जाणे किं पडिवज्जिस्सदित्ति । (अत्र विश्वस्ता भव । न तादृशा आकृतिविशेषा गुणविरोधिनो भवन्ति । एतावत्पुनश्चिन्तनीयम् । तात इदानीम् इमं वृत्तान्तं श्रुत्वा न जाने किं प्रतिपत्स्यत इति ।) [5]

अनसूया – सहि, जधा मं पुच्छसि तधा तादस्स अणुमदं पिअं च । (सखि, यथा मां पृच्छसि तथा तातस्यानुमतं प्रियञ्च ।) [6]

प्रियंवदा – कधं विअ अणुमदं पिअं च । (कथमिवानुमतं प्रियं च ।) [7]

अनसूया – किम् अण्णं । गुणवदे कण्णआ पडिवादइदव्वेत्ति अअं दाव पढमो से संकप्पो । तं जदि देव्वं सम्पादेदि णणु अप्पआसेण कदत्थो गुरुअणो । (किमन्यत् । गुणवते कन्यका प्रतिपादयितव्येत्ययं तावत् प्रथमोऽस्य संकल्पः । तद्यदि दैवं सम्पादयति नन्वप्रयासेन । कृतार्थो गुरुजनः ।) [8]

प्रियंवदा – एवं णेदं । (पुष्पभाजनमवलोक्य) सहि, अवचिदाइं खु बलिकम्मपय्यत्ताइं कुसुमाइं । (एवमेतत् । सखि, अवचितानि खलु बलिकर्मपर्याप्तानि कुसुमानि ।) [9]

अनसूया – सहि, सउन्तलाए वि सोहग्गदेवदा अच्चणीआ । (सखि, शकुन्तलयापि सौभाग्यदेवता--ऽर्चनीया ।) [10]

प्रियंवदा – जुज्जदि । (युज्यते ।) (तदेव कर्म नाटयतः) [11]

(नेपथ्ये)

अयम् अहं भोः .... । [12]

अनसूया – (श्रुत्वा) अदिधिणा विअ णिवेदिदं । (अतिथिनेव निवेदितम् ।) [13]

प्रियंवदा – सहि, णं उडजसण्णिहिदा सउन्तला । आं, अज्ज उण हिअएण असण्णिहिदा । (सखि, नन्वुटज--संनिहिता शकुन्तला । आम् अद्य पुनर् हृदयेनासंनिहिता ।) [14]

अनसूया – (सत्वरम्) तेण हि होन्दु (भोदु) । इत्तिआइं कुसुमाइं । (प्रस्थिता) (तेन हि भवतु, एतावन्ति कुसुमानि ।) [15]

(नेपथ्ये)

आः, अतिथिपरिभाविनि...., [16]

विचिन्तयन्ती यम् अनन्यमानसा
यतोऽतिथिं[1] वेत्सि न मामुपस्थितम् ।

---

[1] अत्र मै.-आदिपाठेषु "तपोनिधिमि"ति । अनेन दुर्वाससोऽहंकारोऽपि कथ्यते । तेन चातिथिपरिभावनस्य दोषेण सह किमप्यन्यत्कारणमपि संमिश्रीक्रियते शापप्राप्तौ । अतः काश्मीर-पाठ एवात्र ज्यायान् संग्राह्यश्च ।

स्मरिष्यति त्वां न स बोधितोऽपि सन्
कथां प्रमत्तः प्रथमं कृतामिव ।। (**4 – 1**) ।। [17]

उभे – (श्रुत्वा विषण्णे) हद्धि य्येव संवुत्तं । कस्सिं वि पूआरहे अवरद्धा सुण्णहिअआ सही । (हा धिग् एव संवृत्तम्, कस्मिन्नपि पूजार्हेऽपराद्धा शून्यहृदया सखी ।) [18]

अनसूया – (विलोक्य) ण खु, ण खु जस्सिं तस्सिं । सुलहकोओ खु एसो दुव्वासा महेसि । हुदासो विअ तुरिदपादुद्धाराए गदीए गच्छिदुं पउत्तो । (न खलु न खलु यस्मिन् तस्मिन्, सुलभकोपः खल्वेष दुर्वासा महर्षिः । हुताश इव त्वरितपादोद्धारया गत्या गन्तुं प्रवृत्तः ।) [19]

प्रियंवदा – को अण्णो हुदवहादो दहिदुं पहविस्सदि । अणसूये, गच्छ पादेसु पडिअ पसाएहि णं । जाव अहं से अग्धादिअं उपकप्पेमि । (कोऽन्यो हुतवहाद् दग्धुं प्रभविष्यति । अनसूये, गच्छ[2] पादेषु पतित्वा प्रसादयैनम् । यावद् अहम् अस्य अर्घादिकम् उपकल्पयामि ।) (अनसूया निष्क्रान्ता) [20]

प्रियंवदा – (पादान्तरे स्खलितं निरूप्य) अम्मो, आवेगक्खलिदाए पब्भट्ठं अग्गहत्थादो पुप्फभाअणं मे । ता पुणो वि अवचिणिस्सं । (अहो आवेगस्खलितायाः प्रभ्रष्टमग्रहस्तात् पुष्पभाजनं मे । तत् पुनरप्यवचेष्यामि ।) (तथा करोति) [21]

(प्रविश्य) **अनसूया** –सहि, सरीरबद्धो कोओ विअ कस्स सो अणुणअं गेण्हदि । किं च उण साणुक्कोसो कदो । (सखि, शरीरबद्धः कोप इव कस्य सोऽनुनयं गृह्णाति । किं च पुनस्सानुक्रोशः कृतः ।) [22]

प्रियंवदा – तस्सिं बहुअं एदं । ततः(तदो) कहेहि कधं विअ । (तस्मिन् बहुकं एतत् । ततः कथय कथमिव ।) [23]

अनसूया – जदा णिवत्तिदुं ण इच्छदि । तदा विण्णाविदो मए भगवं, पढमभत्तिं अवेक्खिअ अज्ज अत्तपहाव-विण्णाद[सा]मत्थस्स दुहिदाजणस्स भअवदा अवराहो मरिसिदव्वो त्ति । (यदा निवर्तितुं नेच्छति तदा विज्ञापितो मया । भगवन्, प्रथमभक्तिम् अवेक्ष्याद्यात्मप्रभावविज्ञातसामर्थ्यस्य दुहितृजनस्य भगवताऽपराधो मर्षितव्य इति ।) [24]

प्रियंवदा – तदो तदो । (ततः ततः ।) [25]

अनसूया – तदो ण मे वअणं अण्णधा भविदुं अरिहदि । आहरणाहिण्णाणदंसणेण से सावो णिवट्टिस्सदिति मन्तअन्तो य्येव अन्तरिहिदो । (ततः न मे वचनं अन्यथा भवितुम् अर्हति । आभरणाभिज्ञान-दर्शनेनास्याः शापो निवर्तिष्यत इति मन्त्रयन्नेवान्तर्हितः ।) [26]

प्रियंवदा – सक्कं दाणिं अस्ससिदुं । अत्थि तेण राएसिणा सम्पत्थिदेण सणामधेआङ्किदं अङ्गुलीअं सुमरणिअं त्ति सउन्तलाए सअं य्येव हत्थे पिणद्धम् । तस्सिं च साहिणे अअं उवाओ भविस्सदि त्ति । (शक्य-मिदानीमाश्वासितुम् । अस्ति तेन राजर्षिणा संप्रस्थितेन स्वनामधेयाङ्कितमङ्गुलीयं स्मरणीय-मिति शकुन्तलायास्स्वयमेव हस्ते पिनद्धम् । तस्मिंश्च स्वाधीनेऽयमुपायो भविष्यतीति ।) [27]

(परिक्रामतः) [28]

अनसूया – हला पिअंवदे, पेक्ख पेक्ख वामहत्थोवणिहिद वअणा आलिहिदा विअ सहि भट्टिगडाए चिन्ताए अत्ताणअं वि एसा ण विभावेदि, किं उण आगन्तुअं । (हले प्रियंवदे, प्रेक्षस्व प्रेक्षस्व । वामहस्तोपनिहितवदनाऽलिखितेव सखी भर्तृगतया चिन्तयाऽत्मानम् अप्येषा न विभावयति, किं पुनरागन्तुकम् ।) [29]

प्रियंवदा – हला अणसूए, दोण्हं येव अम्हेसु एसो साववुत्तन्तो चिट्ठदु । रक्खणीआ खु पकिदिपेलवा सही । (हला अनसूये, द्वयोरेवावयोरेष शापवृत्तान्तस्तिष्ठतु[3] । रक्षणीया खलु प्रकृतिपेलवा सखी ।) [30]

---

[2] काश्मीर-पाठानुसारेण शापमोचनस्य याचनां कर्तुमनसूया गच्छति ।, तत्र कालान्तरे परिवर्तनं जायते ।

[3] काश्मीर-पाठानुसारेण शापवृत्तान्तस्य संगोपनस्य प्रस्तावः प्रियंवदया क्रियते ।, उत्तरवर्तिनि काले परिवर्तनं क्रियते तत्र ।

अनसूया – को दाणिं तावोदएण णवमालिअं सिञ्चदि । (क इदानीं तापोदकेन नवमालिकां सिञ्चति ।) [31]

(इति निष्क्रान्ते ।)

।। **प्रवेशकः**[4] ।। [32]

।। ततः प्रविशति सुप्तोत्थितः कण्वशिष्यः ।। [33]

शिष्यः – वेलोपलक्षणार्थमादिष्टोऽस्मि तत्रभवता प्रवासात् प्रतिनिवृत्तेनोपाध्यायकण्वेन । तत् प्रकाश्यं निर्गत्य तावद् अवलोकयामि किमवशिष्टं रजन्या इति । (परिक्रम्यावलोक्य च) हन्त प्रभातम् । तथा हि – [34]

कर्कन्धूनाम् उपरि तुहिनं रञ्जयत्यग्रसन्ध्या
दार्भं मुञ्चत्युटजपटलं वीतनिद्रो मयूरः ।
वेदिप्रान्तात् खुरविलिखिताद् उत्थितश्चैष सद्यः
पश्चाद् उच्चैर्भवति हरिणो गात्रम् आयच्छमानः ।। **4 – 2** ।। [35]

अपि च[5] – [36]

पादन्यासं क्षितिधरगुरोर्मूर्ध्नि कृत्वा सुमेरोः
क्रान्तं येन क्षपिततमसा मध्यमं धाम विष्णोः ।
सोऽयं सोमः पतति गगनाद् अल्पशेषैर्मयूखैस्
दूरारोहो भवति महतामप्यपभ्रंशनिष्ठः[6] ।। **4 – 3** ।। [37]

।। ततः प्रविशत्यपटीक्षेपेणानसूया ।। [38]

अनसूया – एवं णाम विसयपराम्मुहस्स वि एदं ण विदिदं जधा तेण रण्णा सउन्तलाए अणय्यदा आअरिदव्व त्ति । (एवं नाम विषयपराङ्मुखस्यापि एतद् न विदितं यथा तेन राज्ञा शकुन्तलाया अनार्यताऽ–चरितव्येति ।) [39]

शिष्यः – यावद् उपस्थितां वेलां निवेदयामि । (इति निष्क्रान्तः) [40]

अनसूया – पडिबुद्धा वि किं करयिस्सं । ण मे उत्थिदाए चिन्तीदेसु पहादव्वावारकरणीएसु हत्था पादा वा पहवन्ति । सकामो दाणिं कामो होदु । जेण सिणद्धहिअआ सही असच्चसन्धे जणे पदं कारिदा । (स्मृत्वा) अधवा ण तस्स राएसिणो अवराहो दुव्वासकोवो ईत्थ विप्पकरेदि । अण्णधा कधं तादिसो राएसि तादिसाइं वअणाइं मन्तिअ एत्तिअस्स वि कालस्स लेहमेत्तं वि ण विस्सज्ज-इस्सदि । (विचिन्त्य) इदं अङ्गुलीअं से अहिण्णाणं विसज्जेम्ह । अह वा दुक्खसीले तवस्सिअणे को अब्भत्थिअदु । ण सहीगमणेण दोसो त्ति ववसिदुं दाणिं पारेम्ह । पवासणिव्वुत्तस्स ताद-कस्सवस्स दुस्सन्तपरिणीदां आवण्णसत्तां कोवि सउन्तलां णिवेदयिस्सदि । इत्थंगदे किं णु खु अम्हेहिं कादव्वम् । (प्रतिबुद्धाऽपि किं करिष्यामि । न म उत्थितायाश्चिन्तितेषु प्रभातव्यापार-करणीयेषु हस्तौ पादौ वा प्रभवन्ति । सकाम इदानीं कामो भवतु । येन स्निग्धहृदया सखी असत्यसन्धे जने पदं कारिता । (स्मृत्वा) अथ वा, न तस्य राजर्षेरपराधो, दुर्वाससःकोपोऽत्र विप्रकरोति । अन्यथा कथं तादृशो राजर्षिस्तादृशानि वचनानि मन्त्रयित्वैतावतोऽपि कालस्य लेखमात्रमपि न विसर्जयति । (विचिन्त्य) इदमङ्गुलीयमस्याभिज्ञानं विसर्जयामः । अथवा, दुःखशीले तपस्विजने कोऽभ्यर्थताम् । न सखिगमनेन दोष इति व्यवसितुम् इदानीं पारयामः ।

---

[4] अर्थोपक्षेपकस्यास्य नामाभिधानं नाट्यशास्त्रानुसारि । बृहत्पाठपरम्परायामपि सर्वत्रेदमेव प्रचलति ।
[5] समुच्चयार्थकस्य "अपि चे"ति निपातद्वयस्य स्वारस्यमत्र सिध्यति । तद्यथा- शिष्यः प्रथमं सम्मुखे यद् वर्तते तन्निरूपयति । ततश्चोर्ध्व आकाशे यद् दृश्यते, तन्निरूपयति । अतश्चैतौ श्लोकौ मूलगामिनौ स्याताम् ।
[6] का.-मै.-पाठयोरितः परं "यात्येकतोऽस्तशिखरम्0", "अन्तर्हिते शशिनि सैव कुमुद्वतीम्0" इति च श्लोकौ प्रक्षिप्तौ वर्तेते, पुनरुक्तिदोषग्रस्तत्वात् ।, बं.-पाठे तयोश्च प्राथम्यं दीयते । (प्रक्षिप्त-श्लोक-संख्ये – 20-21)

प्रवासनिवृत्तस्य तातकण्वस्य दुःषन्तपरिणीताम् आपन्नसत्त्वां कोऽपि शकुन्तलां निवेदयिष्यति । इत्थंगते किं नु खल्वस्माभिः कर्तव्यम् ।) [41]

।। ततः प्रविशति प्रियंवदा ।। [42]

प्रियंवदा – अणसूये, सउन्तलाए पत्थाणकोदुआणि करेअत्तु । (अनसूये, शकुन्तलायाः प्रस्थानकौतुकानि क्रियन्ताम् ।) [43]

अनसूया – सहि, कधं णेदं । (सखि, कथमेतत् ।) [44]

प्रियंवदा – अणसूये, सुणिस । दाणिं सुहसयिदविबुद्धाए सउन्तलाए समीवं गदम्हि, जाव तं लज्जावणदमुहिं परिसजिअ तादकण्णो अहिणन्ददि । दिट्ठिआ धूमोवरुद्धदिट्ठिणो विअ जणस्स पावक एव आहुदी पडिदा । सुसिस्सपडिपादिआ विअ विज्जा असोअणिज्जासि मे संवुत्ता । ता अज्ज य्येव इसिपरिगृहीदं तुमं भत्तुणो सआसं विसज्जेमि त्ति । (अनसूये, शृणु, इदानीं सुखशयितविबुद्धायाः शकुन्तलायास्समीपं गतास्मि, यावत् तां लज्जावनतमुखीम् परिष्वज्य तातकण्वोऽभिनन्दति । दिष्ट्या धूमोपरुद्धदृष्टेरपि जनस्य पावक एव आहुतिः पतिता । सुशिष्यप्रतिपादितेव विद्याऽशोचनीयासि मे संवृत्ता । तद् अद्यैवर्षिपरिगृहीतां[7] त्वां भर्तुस्सकाशं विसर्जयामीति ।)[45]

अनसूया – अध केण आचक्खिदो तादस्स अअं सउन्तलावुत्तान्तो । (अथ केन आख्यातस्तातस्यायं शकुन्तलावृत्तान्तः ।) [46]

प्रियंवदा – तादस्स अग्गिसरणं पविट्ठस्स किल सरीरं विणा छन्दोवदीए वाआए । (तातस्याग्निशरणं प्रविष्टस्य किल शरीरं विना छन्दोवत्या वाचा ।) [47]

अनसूया – (सविस्मयम्) कधं विअ । (कथमिव ।) [48]

प्रियंवदा – सहि, सुणु । (सखि, शृणु ।) (संस्कृतमाश्रित्य पठति) [49]

दुःषन्तेनाहितं वीर्यं दधानां भूतये भुवः ।
अवेहि तनयां ब्रह्मन्, नग्निगर्भां शमीमिव ।। **4 – 4** ।। [50]

अनसूया – (सहर्षं प्रियंवदामाश्लिष्य) सहि, पिअं मे । किं तु अज्ज य्येव सउन्तला णीअदि त्ति उक्कण्ठासाहारणं खु दाणिं परितोसं समुव्वहामि । (सखि, प्रियं मे । किन्तु अद्यैव शकुन्तला नीयत इत्युत्कण्ठासाधारणं खल्वीदानीं परितोषं समुद्वहामि ।) [51]

प्रियंवदा – उक्कण्ठं विणोदयिस्सामो, सा दाणिं णिव्वुदा होदु । (उत्कण्ठां विनोदयिष्यामः । सेदानीं निर्वृत्ता भवतु ।) [52]

अनसूया – तेण हि एदस्सिं चुदसाहावलम्बिदे णालिएर समुग्गए तण्णिमित्तं एव कालान्तर[क्ख]मा क्खित्ता मए सकेसरगुणा । ते तुमं हत्थसण्णिहिदे करेहि, जाव अहं से आमयरोहणं तित्थमित्तिअं दुव्वाकिसलआइं मङ्गलसमालहणत्थं विरएमि । (इति निष्क्रान्ता) [53]

(प्रियंवदा नाट्येन सुमनसो गृह्णाति ।) [54]

(तेन हि, एतस्मिंश्चूतशाखावलम्बिते नारिकेलसमुद्गके तन्निमित्तम् एव कालान्तरक्षमा क्षिप्ता मया सकेसरगुणा (तथा) त्वं हस्तसन्निहिताम् कुरु । यावद् अहम् अस्या आमयरोधनां तीर्थमृत्तिकां दूर्वाकिसलयानि मङ्गलसमालम्भनार्थं विरचयामि ।) (इति निष्क्रान्ता) [55]

(**नेपथ्ये**)

गौतमि, आदिश्यन्ताम् शाङ्गर्रवमिश्राः शकुन्तलानयनाय सज्जीभवन्त्विति । [56]

प्रियंवदा – (आकर्ण्य) अणसूए, तुवर तुवर, एदे खु हत्थिणाउरगामिण इसिओ सद्दावीअन्ति । (अनसूये, त्वरस्व त्वरस्व । एते खलु हस्तिनापुरगामिना ऋषयः शब्दाय्यन्ते ।) [57]

(प्रविश्य समालभनहस्ता) [58]

---

[7] दाक्षि.-देव.-पाठयोस्तु "राजर्षिपरिगृहीतामि"ति, किन्तु कथनमिदमप्रासंगिकम्, अतोऽग्राह्यः पाठभेदोऽयम् ।

अनसूया – सहि पिअंवदे, एहि गच्छम्ह । (सखि प्रियंवदे, एहि गच्छावः ।) [59]

(उभे परिक्रामतः) [60]

प्रियंवदा – (अवलोक्य) एसा सुज्जोदअ य्येव निमज्जिदा गोदमीसहिदा सउन्तला चिट्ठदि । ता उवसप्पम्ह णं । (एषा सूर्योदय एव निमज्जिता गौतमीसहिता शकुन्तला तिष्ठति । तर्हि उपसर्पाव एनाम् ।) [61]

(ततः प्रविशति यथानिर्दिष्टा[8] शकुन्तला गौतमी च) [62]

शकुन्तला – भअवदि पणमामि । (भगवति, प्रणमामि ।) [63]

गौतमी – जाद, भत्तुणो बहुमाणसुहइत्तअं देवीसद्दं अधिगच्छ । (जाते, भर्तुः बहुमानसुखयितारं देवीशब्दम् अधिगच्छ ।) [64]

सख्यौ – (उपगम्य) सहि, सुमज्जणं दे होदु । (सखि, सुमज्जनं ते भवतु ।) [65]

शकुन्तला – (दृष्ट्वा सादरम्) साअदं पिअसहीणं । इदो णिसीदध । (स्वागतं प्रियसखीभ्याम्[9] । इतो निषीदतम् ।) [66]

उभे – (उपविश्य) हला सउन्तले । उज्जुअगदा होहि । जाव दे मङ्गलसमालद्धं अङ्गं करीअदु । (हला शकुन्तले, ऋजुकगता भव । यावत् ते मङ्गलसमालब्धं अङ्गं क्रियताम् ।) [67]

शकुन्तला – उचितं, इदं पि बहुमणिदव्वं, दुल्लहं दाणिं मे सहीमण्डणं भविस्सदि । (रुदत्युत्तिष्ठति) (उचितमिदमपि बहुमन्तव्यम् । दुर्लभम् इदानीं मे सखीमण्डनं भविष्यति ।) [68]

उभे – सहि, ण दे इच्छिदव्वे मङ्गलकाले रोइदव्वं । (सखि, न त एष्टव्ये मङ्गलकाले रोदितव्यम्) [69]

(अश्रूणि प्रमृज्य नाट्येन प्रसाधयतः) [70]

प्रियंवदा – आहरणारहं रूपं । अस्समसुलहेहिं पसाहणेहिं विप्पआरीअदि । (आभरणार्हं रूपम् । आश्रमसुलभैः प्रसाधनैर्विप्रक्रियते ।) [71]

।। ततः प्रविशत उपायनहस्तावृषिकुमारकौ ।। [72]

ऋषिकुमारौ – इदमलङ्करणम् । तावदलङ्क्रियताम् अत्रभवती । (तथा विलोक्य विस्मिताः) [73]

गौतमी – वच्छ हारीद, कुदो एदं । (वत्स हारीत, कुत एतत् ।) [74]

प्रथमः – तातकण्वप्रसादात् । [75]

गौतमी – किं माणसी सिद्धी । (किं मानसी सिद्धिः ।) [76]

द्वितीयः – न खलु । श्रूयताम् – तत्रभवता वयमाज्ञापिताः । शकुन्तलाहेतोर्वनस्पतिभ्यः कुसुमान्याहरतेति । तत इदानीं, [77]

क्षौमं केनचिद् इन्दुपाण्डुतरुणा माङ्गल्यमाविष्कृतं,
निष्ठ्यूतश्चरणोपभोगसुभगो लाक्षारसः केनचित् ।

---

[8] का.-पाठेषु "यथानिर्दिष्टपरिवारा0" इति वर्तते । अन्याश्च तापस्योऽपि रंगभूमिं समागत्य विविधा आशिषो वितरन्ति, ततश्च ता रंगाद् बहिर्गच्छन्ति । सर्वन्तन्निराकृत्य पुनर्गठितः (उक्ति-क्रमांकाः-61तः 64 पर्यन्तः) पाठ्यांशः प्रस्तावितः । यतो हि- का.-दाक्षि.-देव.-पाठेषु नैकमप्याशीर्वचनं गौतमी भणति । (केवलं मै.-बं.-पाठयोराशीर्वचनं गौतमी ददाति ।) अत्र, कथं विना सखिद्वयेन शकुन्तलया नद्यां निमज्जनमपि कृतमित्याश्चर्यं जनयति परम्परागतः पाठः । सख्यागमनात्पूर्वम् अन्याभिस्तापसीभिः शकुन्तलायै "भर्तुर्बहुमता भव", "वीरप्रसविनी भव", "महादेवीशब्दमधिगच्छे"त्यादय आशिषो वितीर्यन्ते- तदपि सूचयति यन्मूलपाठे तापसीनां प्रवेशविषये कश्चित् प्रक्षेपः स्यात् ।

[9] मालविकाग्निमित्रस्य "स्वागतं देव्यै" (अंक-1) इति प्रयोगाच्चतुर्थ्यैव संस्कृतच्छायानुवादः करणीयः ।

अन्येभ्यो वनदेवताकरतलैर् आपर्वमूलोत्थितै-
र्दत्तान्याभरणानि नः किसलयच्छायाप्रतिस्पर्धिभिः ।। **4 – 5** ।। [78]

प्रियंवदा – (शकुन्तलां विलोक्य) हला, अब्भुदसम्पत्ति सूइदा । भट्टिणो गेहे अणुभविदव्वा दे राअलच्छी । (हले अद्‌भुतसम्पत्तिस्सूचिता । भर्तुर्गृहेऽनुभवितव्या ते राजलक्ष्मीः ।) [79]

शकुन्तला – (लज्जां निरूपयति) सहि, कल्याणिणी दाणिं सि । कोडरसम्भवा विअ महुअरी पुक्खरमुहं अहिलससि[10] ।) (सखि, कल्याणिनीदानीमसि । कोटरसम्भवेव मधुकरी पुष्करमुखम् अभिलषसि[11] ।)[80]

ऋषिकुमारः – गौतम, एहि अभिषेकाद् अवतीर्णाय तातकण्वाय वनस्पतिसेवां निवेदयावः । [81]

द्वितीयः – एवं कुर्वः ।[12] (इति निष्क्रान्तौ) [82]

प्रियंवदा – (मण्डयन्ती) अणुभूदभूसणो अअं जणो । चित्तकम्मपरिचएण दाणिं दे अङ्गेसु आहरण-णिओअं करेदि । (अननुभूतभूषणोऽयं जनः । चित्रकर्मपरिचयेनेदानीं तेऽङ्गेषु आभरण--नियोगं करोति ।) [83]

शकुन्तला – (सस्मितम्) जाणे वो णिउणत्तणं । (जाने वो निपुणत्वम् ।) [84]

(उभे नाट्येनाभरणम् आमुञ्चतः) [85]

।। ततः प्रविशति स्नानोत्थितः कण्वः ।। [86]

कण्वः – (निश्श्वस्य)

यास्यत्यद्य शकुन्तलेति हृदयं संस्पृष्टमुत्कण्ठया
कण्ठस्तम्भितबाष्पवृत्तिकलुषं चिन्ताजडं दर्शनम् ।
वैक्लव्यं मम तावदीदृशमिदं स्नेहादरण्यौकसः
पीड्यन्ते गृहिणः कथं न तनयाविश्लेषदुःखैर्नवैः ।। **4 – 6** ।।[87]

(परिक्रामति) [88]

सख्यौ – हला सउन्तले, अवसिदमण्डनासि । परिधेहि संपदं इमं पवित्तं खोमणिम्मोअं । (हले, शकुन्तले, अवसितमण्डनासि । परिधेहि साम्प्रतम् इमं पवित्रं क्षौमनिर्मोकम् ।) [89]

(शकुन्तला लतागृहान् निर्गत्य परिधाय,
पुनः प्रविश्योपविष्टा । कण्व उपसर्पति ।) [90]

गौतमी – एसो दे आनन्दवप्फपरिवाहिणा चक्खुणा परिस्सजन्तो विअ गुरू उवत्थिदो । ता आआरं से पडिवज्ज । (एष ते आनन्दबाष्पपरिवाहिना चक्षुषा परिष्वजन्निव गुरुरुपस्थितः । तद् आचारमस्य प्रतिपद्यस्व ।) [91]

शकुन्तला – (उत्थाय सव्रीडम्) ताद वन्दामि । (तात वन्दे) [92]

कण्वः – वत्से,

---

[10] अत्र का.-पाठानुसारिणी संवादमाला स्वीकर्तव्येति मतिः । क्षौमं केनचिदिति श्लोकानुसन्धाने समागता प्रियंवदाया उक्तिरियं प्रियंवदायाः सख्यं परां कोटिं नयति । दाक्षि.-देव.-पाठयोः प्रियंवदायाः सद्भावनायाः परिरक्षा पाठपरिवर्तनेन क्रियते । किन्तु मै.-बं.-पाठयोस्तु कृतैरन्यैः परिवर्तनैः प्रियंवदायाः सख्यं निर्मलम् उदात्तञ्च यथा स्यात्तथा न प्रतिपाद्यते । आन्तरिक-सम्भवनाविहीनानि तयोः पाठयोः परिवर्तनानि दृश्यन्ते ।

[11] प्रियंवदाया वाक्येऽस्मिन् "(मदर्थे त्वम्) अभिलषसी"ति किञ्चिदध्याहृतं पदं वर्तते ।, शकुन्तलायाः कृते प्रयुक्तमिदं "मधुकरी"त्युपमानं तस्याः प्रतीकान्तरं भवति, यस्य च षष्ठांके "तृषितापि सति मधुकरी त्वया विना न पिबती"ति श्लोके पुनरुल्लेखः क्रियते । नायक-नायिकयोः कृते भ्रमर-मधुकर्योः प्रतीके स्याताम् ।

[12] बंगीय-पाठानुरोधादुक्तिद्वय(81-82)मत्र स्थापितम्, कण्वप्रवेशात्पूर्वम् (उचितकालक्षेप-प्रदर्शनाय) तयोर्निष्क्रमणं समीचीनं सिध्यति ।

ययातेरिव शर्मिष्ठा पत्युर्बहुमता भव ।
पुत्रं त्वमपि सम्राजं सेव पूरुं समाप्नुहि ।। **4 – 7** ।। [93]

गौतमी – भअवं, वरो खु एसो, ण आसिसा । (भगवन्, वरः खल्वेष, न आशीः ।) [94]

कण्वः – वत्से, इतः सद्यो हुतान् अग्नीन् प्रदक्षिणीकुरुष्व । (सर्वे परिक्रामन्ति) [95]

अमी वेदिं परितः क्लृप्तधिष्ण्या-
स्समिद्वन्तः प्रान्तसंस्तीर्णदर्भाः ।
अपघ्नन्तो दुरितं हव्यगन्धैर्
वैतानास्त्वां वह्नयः पालयन्तु ।। **4 – 8** ।। [96]

(शकुन्तला प्रदक्षिणीकरोति) [97]

कण्वः – वत्से, प्रतिष्ठस्वेदानीम् । (सदृष्टिक्षेपम्) क्व ते शाङ्र्गरवमिश्राः । [98]

(प्रविश्य) भगवन्, इमे वयम् । [99]

कण्वः – शाङ्र्गरव, भगिन्या मार्गम् आदेशय । [100]

शाङ्र्गरवः – इत इतो भवती । (सर्वे परिक्रामन्ति) [101]

कण्वः – वत्से शकुन्तले, विज्ञाप्यन्ताम् सन्निहितदेवतास्तपोवनतरवः । [102]

पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्वसिक्तेषु या,
नादत्ते प्रियमण्डनापि भवतां स्नेहेन या पल्लवान् ।
आद्ये वः कुसुमप्रबोधसमये यस्या भवत्युत्सवः,
सेयं याति शकुन्तला पतिगृहं सर्वैरनुज्ञायताम् ।। **4 – 9** ।। [103]

।। नेपथ्ये ।।

रम्यान्तरः[13] कमलकीर्णजलैस्सरोभि-
श्छायाद्रुमैर्नियमितार्कमयूखतापः ।
भूयात् कुशेशयरजोमृदुरेणुरस्याः
शान्तानुकूलपवनश्च शिवश्च पन्थाः ।। **4 – 10** ।।[104]

(सर्वे सविस्मयम् आकर्णयन्ति) [105]

शाङ्र्गरवः – *अनुमतगमना शकुन्तला सा*
तरुभिरियं वनवासबन्धुभिः ।
परभृतरसितं प्रियं यदा
प्रतिवचनीकृतमेभिरात्मनः[14] ।। **4 – 11** ।। [106]

गौतमी – जादे, णादिजणसिणिद्धं अब्भणुण्णादगमणासि तवोवणदेवदाहिं । ता पणम भअवदीओ ।
(जाते ज्ञातिजनस्निग्धम् अभ्यनुज्ञातगमनासि तपोवनदेवताभिः । तत्प्रणम भगवतीः ।) [107]

शकुन्तला – (तथा कृत्वा) (परिक्रम्य जनान्तिकम्) हला पिअंवदे, अय्यउत्तदंसणोस्सुआए वि अस्समं

---

[13] पुरोगामिनि श्लोके कण्वेन संनिहितदेवतास्तपोवनतरूनुद्दिश्य याभ्यर्थना प्रकटीकृता, तामेवानुसृत्याचिरान् नेपथ्यतः श्लोकोऽयं समागच्छेदिति समीचीनम् । मैथिल-रंगकर्मिभिरत्र कोकिलरवः प्रस्तावितः । किन्तु विना कयापि रंगसूचनया कोकिलरवः प्रकटीकर्तुं शक्यते । अतो नास्त्यत्र श्लोक-क्रमांके परिवर्तनस्यावश्यकता ।

[14] पद्यमिदं केवलमपरवक्त्र-छन्दसि स्यात्, वा डॉ. रिचार्ड मतेन संयोजितछन्दसि । (अपरवक्त्रं पुष्पिताग्रा चेति द्वयोश्छन्दसोः संमिश्रणम्) किन्तु विवादास्पदोऽयं श्लोकः । नेपथ्यतः कोकिलरवमुत्पादयितुं मैथिल-रंगकर्मिभिरयं प्रक्षिप्तः स्यादित्यनुमीयते । यतो हि गौतमी यद्वक्ति तेन सहैव "रम्यान्तरः0" इति श्लोकस्य संगतिः सिध्यति । अन्यथाऽनुमतगमन-विषये पुनरुक्तिर्भवति ।

परिच्चअन्तीए दुक्खदुक्खेण मे चलणा पुरदोमुहा पहवन्ति । (हले प्रियंवदे, आर्यपुत्रदर्शनो-त्सुकयाऽप्याश्रमं परित्यजन्त्या दुःखदुःखेन मे चरणौ पुरतोमुखौ प्रभवतः ।) [108]

प्रियंवदा – ण केवलं तवोवणविरहकादरा तुमं य्येव । जाव तए उवत्थिअविओअस्स तवोवणस्स वि अपेक्खं अवत्थन्तरं । तधा अ,

उल्लदिदव्वकवला मई, परिसन्त-णच्चणा मोरी ।
ओसरिअ-पण्डुपत्ता धुअन्ति अङ्गाइ व लदाओ ।। **4 – 12** ।।

(न केवलं तपोवनविरहकातरा त्वमेव[15], यावत् त्वयोपस्थितवियोगस्य तपोवनस्या-प्यवेक्ष्यम् अवस्थान्तरम् । तथा च, [109]

उद्गीर्णदर्भकवला मृगी, परिश्रान्तनर्तना मयूरी ।
अपसृतपाण्डुपत्रा धुन्वन्त्यङ्गानीव लताः[16] ।। **4 – 12** ।।) [110]

शकुन्तला – (स्मृत्वा) ताद, लदाबहिणीअं णवमालिअं दाव आमन्तयिस्सं । (तात, लताभगिनीं नवमालिकां तावद् आमन्त्रयिष्ये ।) [111]

कण्वः – अवैमि तेऽस्यां सोदरस्नेहम् । इमां तावद् दक्षिणेनामन्त्रयताम् । [112]

शकुन्तला – (लतामुपेत्यालिङ्ग्य च ससस्नेहगद्गदम्) चूदसंगदा वि पच्चालिंग मं इदोगदाहिं साहाबाहुहिं । अज्ज पहुदि दूरवट्टिणी खु अहं दे भविस्सं । (चूतसंगतापि प्रत्यालिङ्ग मामितो गताभिः शाखाबाहुभिः । अद्य प्रभृति दूरवर्तिनी खल्वहं ते भविष्यामि ।) [113]

कण्वः – वत्से, इयमिदानीं चिन्तनीया मे । पश्य, [114]

सङ्कल्पितं प्रथममेव मया तवार्थे
भर्तारमात्मसदृशं सुकृतैर्गता त्वम् ।
चूतेन संगतवती नवमालिकेयम्
अस्यामहं त्वयि च सम्प्रति वीतचिन्तः[17] ।। ।। **4 – 13** ।। [115]

शकुन्तला – (सख्यावुपेत्य) एसा दोण्हं पि हत्थे णिक्खेवो । (एषा द्वयोरपि हस्ते निक्षेपः ।) [116]

सख्यौ – (सास्रम्) अअं जणो दाणिं कस्स सन्दिट्ठो । (रुदतः) (अयं जनः इदानीं कस्य सन्दिष्टः ।) [117]

कण्वः – अनसूये, अलं रुदित्वा । ननु भवतीभ्यामेव शकुन्तला स्थापयितव्या । (परिक्रामन्ति) [118]

शकुन्तला – (विलोक्य) ताद एसा उडजपय्यन्तचारिणी गब्भमन्थरा मअवहू जदा आसण्णपसविणी भवे तदा मे किं पि पिअं णिवेदइत्तअं विसज्जइस्सध । (तात, एषोटजपर्यन्तचारिणी गर्भमन्थरा मृगवधू-र्यदासन्नप्रसविणी भवेत् तदा मे कम् अपि प्रियं निवेदयितारं विसर्जयिष्यथ ।) [119]

कण्वः – वत्से, नेदं विस्मरिष्यति । (शकुन्तला गतिभङ्गं निरूपयति) [120]

---

[15] मै.-बं.-पाठानुरोधाद्वाक्यमिदं दीयते ।, का.-पाठे "न केवलं तव विरहपर्युत्सुकास्सख्य एवे"ति । (किन्तु शकुन्तलायाः पूर्वोक्ति(108)मनुलक्ष्य मैथिल-पाठ एव समीचीनः प्रतीयते ।)

[16] का.-पाठेष्वितः परं माधवीलतामुद्दिश्य संवादमाला वर्तते, किन्तु कण्वाश्रमे नासीदेतादृशी कापि लतेति पूर्वमेवोक्तम् । अतः प्रक्षिप्तत्वेन सा संवादमालात्र निष्कासिता ।, एवञ्च, सहकारेण सह तु नवमालिका स्वयंवरवधूत्वेन संलग्नेति पूर्वमेव कथितम् । तर्हि कथं "कान्तं समीपसहकारमहं करिष्य" इति कण्वो वक्तुं पारयेत ? । अनेनापि तस्या माधवीलतायाः प्रक्षिप्तत्वं दृढीभवति ।

[17] का.-पाठेषु माधवीलतायाः सन्दर्भं निष्कास्यात्र दाक्षिणात्यपाठमवलम्ब्य (उक्ति-क्रमांकः 111तः आरभ्य, 115 पर्यन्तः) पाठ्यांशः पुनर्गठितः ।

शकुन्तला – को णु खु एसो मादक्कन्तो विअ पुणो पुणो वसणस्स अन्तं गण्हदि । (को नु खलु एष मात्राक्रान्त इव पुनःपुनर्वसनस्यान्तं गृह्णाति ।) [121]

कण्वः – वत्से,

यस्य त्वया व्रणविरोहणमिङ्गुदीनां
तैलं न्यषिच्यत मुखे कुशसूचिविद्धे ।
श्यामाकमुष्टिपरिवर्द्धितको जहाति,
सोऽयं न पुत्रककृतः पदवीं मृगस्ते ।। **4 – 14** ।।[122]

शकुन्तला – (दृष्ट्वा) वच्छ, किं मं सहवासपरिच्चाइणिं केदवसिणेहं अण्णेससि । अचिरपसूदो वरदाए जणणिए विणा वड्ढिदोसि । इदाणिं पि मए विरहिदं तुमं तादो चिन्तइस्सदि । ता पडिणिअत्तसु । (रुदती प्रस्थिता) (वत्स, किं मां सहवासपरित्यागिनीं कैतवस्नेहाम् अन्वेषसि । अचिरप्रसूतो--परतया जनन्या विना वर्द्धितोऽसि । इदानीमपि मया विरहितं त्वां तातः चिन्तयिष्यति । तत् प्रतिनिवर्तस्य ।) [123]

कण्वः – वत्से,

उत्पक्ष्मणोर्नयनयोरुपरुद्धवृत्ति-
र्बाष्पं कुरु स्थिरतरं विहितानुबन्धम् ।
अस्मिन्नलक्षितनतोन्नतभूमिभागे
मार्गे पदानि खलु ते विषमीभवन्ति ।। **4 – 15** ।। [124]

शार्ङ्गरवः – आ उदकान्तात् स्निग्धोऽनुगम्यत इति स्मर्यताम् । तदिदं सरस्तीरम् । अत्र संदिश्य ततः प्रतिगन्तुमर्हसि ।[125]

कण्वः – तेन हीमां क्षीरवृक्षच्छायाम् आश्रयामः । (उपविश्य) (सर्वे तथा कृत्वा तिष्ठन्ति ।) [126]

कण्वः – (अपवार्य) किं नु खलु तत्रभवतो दुःषन्तस्य युक्तरूपम् अस्माभिस्संदेश्यम् । [127]

(चिन्तयति) [128]

अनसूया – सहि, ण सो अस्समे चिन्तणिज्जो अत्थि । जो तए विरहअन्तीए ण उस्सुओकदो अज्ज, पेक्ख दाव, (सखि, न स आश्रमे चिन्तनीयोऽस्ति यस्त्वया विरहयन्त्या नोत्सुकीकृतोऽद्य । प्रेक्षस्व तावत् – [129]

पडमिणीपत्तन्तरिदं वाहरिदं णाणुवाहरदि जाअं ।
मुहोउब्भोढमिणालो तयि दिट्ठिं देइ चक्काओ ।। **4 – 16** ।।
(पद्मिनीपत्रान्तरितां व्याहृतां नानुव्याहरति जायाम्[18] ।
मुखोद्व्यूढमृणालस्त्वयि दृष्टिं ददाति चक्रवाकः ।। **4 – 16** ।।) [130]

शकुन्तला – (विलोक्य) सहि, सच्चं य्येव णलिणीपत्तन्तरिदं पिअं सहअरं अवेक्खन्ती आदुरं चक्कवाइ आरसदि, दुक्करं खु अहं करेमि । (सखि, सत्यमेव नलिनीपत्रान्तरितं प्रियं सहचरम् अप्रेक्षन्ती आतुरं चक्रवाक्यारसति, दुष्करं खल्वहं करोमि[19] ।) [131]

प्रियंवदा –
अज्ज वि विणा पिएण गमअदि राइं विसूरणा[20]दीहं ।
हन्त गुरुअं पि दुक्खं आसाबन्धो सहावेदि ।। **4 – 17** ।।
(अद्यापि विना प्रियेण गमयति रात्रिं विसूरणादीर्घाम् ।
हन्त गुरुकमपि दुःखम् आशाबन्धस्सहयति ।। **4 – 17** ।।) [132]

---

[18] डॉ. बेलवालकरमतेन निसर्गकन्यायाः शकुन्तलाया भाग्ये किं लिखितं वर्तते, तच्चक्रवाकेनानेन संसूच्यते ।

[19] सखिद्वयेन पित्रा च शकुन्तलायै शापवृत्तान्तः संगोपितः । किन्तु निसर्गकन्यायै चक्रवाकः कथयति ।

[20] खिदेर्जूर-विसूरौ । (हेम. 8-4-132) इत्यनेन ज्ञायते यत् खेदार्थकोऽयं देश्यशब्दः । स च संरक्षणीयः ।

कण्वः – शाङ्गर्रव, इति त्वया मद्वचनाद् राजा शकुन्तलाम् पुरस्कृत्य वक्तव्यः। [133]

शाङ्गर्रवः – आज्ञापयतु भगवान्। [134]

कण्वः – अस्मान् साधु विचिन्त्य संयमधनान् उच्चैः कुलं चात्मन-
स्त्वय्यस्याः कथमप्यबान्धवकृतां भावप्रवृत्तिं च ताम्।
सामान्यप्रतिपत्तिपूर्वकमियं दारेषु दृश्या त्वया
भाग्याधीनमतः परं, न खलु तत्स्त्रीबन्धुभिर्याच्यते ।। **4 – 18** ।। [135]

शाङ्गर्रवः – गृहीतस्सन्देशः। [136]

कण्वः – (शकुन्तलां प्रति) वत्से, त्वमिदानीमनुशासनीया। पश्य, वनौकसोऽपि लोकज्ञा वयम्। [137]

शाङ्गर्रवः – भगवन्, न खलु धीमतां कश्चिद् अविषयो नाम। [138]

कण्वः – वत्से, सा त्वम् इतः पतिकुलम् अवाप्य,
शुश्रूषस्व गुरून् कुरु प्रियसखीवृत्तिं सपत्नीजने
भर्तुर्विप्रकृतापि रोषणतया मा स्म प्रतीपं गमः।
भूयिष्ठं भव दक्षिणा परिजने भाग्येष्वनुत्सेकिनी
यान्त्येवं गृहिणीपदं युवतयो वामाः कुलस्याधयः ।। **4 – 19** ।।[139]
किं वा गौतमी ब्रवीति। [140]

गौतमी – इत्तिअं खु य्येव एदं वहूअणे उवदेसो। (शकुन्तलां प्रति) जादे, एवं खु अवधारेहि। (एतावत् खलु एवैतद् वधूजन उपदेशः। जाते, एवं खल्ववधारय।) [141]

कण्वः – वत्से, एहि परिष्वजस्व मां सखीजनं च। [142]

शकुन्तला – ताद, किं इदो य्येव पिअसहिओ णिअत्तन्ति।(तात, किं इत एव प्रियसख्यौ निवर्तेते।) [143]

कण्वः – वत्से, इमे अपि प्रदेये। तन्न युक्तमनयोस्तत्रागन्तुम्। त्वया सह गौतमी यास्यति। [144]

शकुन्तला – (उत्थाय पितरमालिङ्ग्य) कधं दाणिं तादेण विरहिदा करिसत्थपरिब्भट्ठा करेणुआ विअ पाणा धारइस्सं।

(इति रोदिति)

(कथमिदानीं तातेन विरहिता करिसार्थपरिभ्रष्टा करेणुकेव[21] प्राणान् धारयिष्ये।) [145]

कण्वः – किमेवं कातरासि। [146]
अभिजनवतो भर्तुः श्लाघ्ये स्थिता गृहिणीपदे
विभवगुरुभिः कृत्यैरस्य प्रतिक्षणम् आकुला।
तनयमचिरात् प्राचीवार्कं प्रसूय च पावनं
मम विरहजं न त्वं वत्से शुचं गणयिष्यसि ।। **4 – 20** ।।[147]
अपि चे[22]दमवधारय – [148]

[21] मै.-आदिपाठेषु "मलयपर्वतोन्मूलितेव चन्दनलता0" इत्युपमा शकुन्तलायाः कृते प्रयुक्ता। सा चोपमा पश्चात् कालिकी पाठान्तरत्वेन च प्रविष्टा दृश्यते। केवलं का.-पाठे सा शकुन्तला करिसार्थपरिभ्रष्टया करेणुकया सहोपमीयते। एतादृश्येवोपमा सुसंगता प्रतीयते। यतो हि- हिमगिरेरुपत्यकायां कण्वाश्रमस्य समीपवर्तिनि प्रदेश एव हस्तिसमूहो वर्तते। नास्ति तत्र चन्दनलतायाः कोऽप्यवकाशः। एवञ्च, करिसार्थ-परिभ्रष्टा करेणुका यथा निःसहाया दयनीया भवति, तथैव शकुन्तलेदानीं भविष्यतीति ध्वनयितु-मियम् इवोपमा सन्दर्भोचिता। अत्रैवास्त्यान्तरिकी सम्भावना।

यदा शरीरस्य शरीरिणश्च
पृथक्त्वम् एकान्तत एव भावि ।
आहार्ययोगेन विभज्यमान परेण
को नाम भवेद् विषादी[23] ।। **4 – 21** ।। [149]
(शकुन्तला पितुः पादयोः पतति ।) [150]

कण्वः – वत्से, यदिच्छसि तत् तेऽस्तु । [151]
शकुन्तला – (सख्यावुपगम्य) हला एध दुवे य्येव मं समं परिस्सजधं । (एतं द्वे एव मां समं परिष्वजेथाम् ।) [152]
उभे – (तथा कृत्वा) सहि, सो राआ जदि पच्चभिण्णाणमन्थरो भवे, तदा से इमं तदीअ-णामधेअङ्किदं अङ्गुलीअं दंसेढि । (इत्यङ्गुलीयकं दत्तः) (सखि, स राजा यदि प्रत्यभिज्ञानमन्थरो भवेत् तदास्येदं तदीयनामधेयाङ्कितमङ्गुलीयकं दर्शय ।) [153]
शकुन्तला – (साशङ्कम्) इमिणा सन्देसेण अणुकम्पिदम्हि । (अनेन सन्देशेनानुकम्पितास्मि ।) [154]
उभे – मा भाआहि । सिणिहो वामं आसङ्कदि (मा भैषीः । स्नेहो वामम् आशङ्कते ।) [155]
शाङ्र्गरवः – (ऊर्ध्वम् अवलोक्य) युगान्तरमधिरूढस्सविता । तत् त्वरतां भवती । [156]
शारद्वतः – (उत्थाय) इत इतो भवती । (सर्वे परिक्रामन्ति) [157]
शकुन्तला – (भूयः पितरमाश्लिष्य सगद्गदम्) ताद, कदा णु खु भूओ तवोवणं पेक्खिस्सं । (तात, कदा नु खलु भूयस्तपोवनं प्रेक्षिष्ये ।) [158]
कण्वः – वत्से, श्रूयताम् –

भूत्वा चिराय चतुरन्तमहीसपत्नी
दौःषन्तिम् अप्रतिरथं तनयं प्रसूय ।
तस्मिन् निवेशितधुरेण सहैव भर्त्रा
शान्ते करिष्यसि पदं पुनराश्रमेऽस्मिन् ।। **4 – 22** ।।[159]

गौतमी – जादे, परिहीअदि गमणवेला । ता णिवट्टेहि पिदरं । (काश्यपं प्रति) अध वा, चिरेण एसा पिदरं ण णिवट्टयिस्सदि । ता णिवट्टदु भवं । (जाते परिहीयते गमनवेला । तन्निवर्तय पितरम् । अथ वा, चिरेण एषा पितरं न निवर्तयिष्यति । तन्निवर्तयतु भवान् ।) [160]
कण्वः – वत्से, उपरुद्ध्यते मे तपोऽनुष्ठानम् । प्रतिनिवर्तितुमिच्छामि ।[161]

(शकुन्तला पुनः पितरमाश्लिष्य) [162]

शकुन्तला – तवोवापारेण तादो णिरुक्कण्ठो भविस्सदि । अहं दाणिं उक्कण्ठाभाइणि संवुत्ता । (तपो--व्यापारेण तातो निरुत्कण्ठो भविष्यति । अहमिदानीं उत्कण्ठाभागिनी संवृत्ता ।) [163]
कण्वः – अयि, किं मां जडीकरोषि । [164]

शममेष्यति मम वत्से कथमिव शोकस्त्वया रचितपूर्वम् ।

---

[22] समुच्चयार्थकस्य "अपि चे"ति निपातद्वयस्य स्वारस्यमत्रापि सिध्यति । तद्यथा- शकुन्तला पतिगृहे कीदृशानि सुखानि प्राप्स्यतीत्युक्त्वा, कण्वाश्रमेऽस्मिन् यदा कदापि पितुः शरीररूपमाहार्यं परावर्त्यते, परिवर्त्यतेऽथवा (तस्य देहावसानमपि जातमिति श्रूयते) तदापि विषादो नैव कर्तव्य इत्यप्यारण्यकः पितोपदिशति । कन्यानां मनस्सु सदैव पतिकुलचिन्तया सममेव पितृकुलस्यापि चिन्ता वरीवर्तते एव । कण्वमहर्षिरितज्-जानाति, तच्च "अपि चे"ति निपातेनावतारितेन श्लोकेन महाकविर्निरूपयति ।
[23] शृङ्गारप्रकाशे (21-16, पृ. 1082) उद्धृतोऽयं श्लोकः । (किन्तु श्रीरेवाप्रसादद्विवेदिभिर्नैवाकलितोऽयं कालिदासीय-श्लोकः)

उटजद्वारविरूढं नीवारबलिं विलोकयतः ।। **4 – 23** ।। [165]
वत्से, गच्छ । शिवास्ते पन्थानस्सन्तु । [166]

(इति निष्क्रान्ता शकुन्तलाऽनुयायिभिः सह) [167]

सख्यौ – (चिरं विलोक्य) हद्धी अन्तरिदा सउन्तला वणराइहिं । (हा धिक्, अन्तरिता शकुन्तला वनराजिभिः ।) [168]

कण्वः – अनसूये, गता वां सहधर्मचारिणी, निगृह्यतां शोकावेगः । अनुगच्छतं मां प्रस्थितम् । [169]

उभे – तात, सउन्तलाविरहिदं सुण्णं विअ तवोवणं पविसामो । (तात, शकुन्तलाविरहितं शून्यमिव तपोवनम् प्रविशामः ।) [170]

कण्वः – स्नेहवृत्तिरिव दर्शनीया । (सविमर्शं परिक्रम्य) [171]
हन्त भोः, शकुन्तलां विसृज्य लब्धमिदानीं स्वास्थ्यम् । कुतः – [172]

अर्थो हि कन्या परकीय एव
ताम् एव सम्प्रेष्य परिगृहीतुः ।
जातोऽस्मि सद्यो विशदान्तरात्मा
चिरस्य निक्षेपम्[24] इवार्पयित्वा ।। **4 – 24** ।।[173]

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे) [174]

।। इति चतुर्थोऽङ्कः ।। [175]

[24] शकुन्तलया नवमालिकाविषये पूर्वमुक्तं यद् "एष द्वयोरपि हस्ते निक्षेप" (उक्ति-क्रमांकः 116) इति । तेनात्रापि "निक्षेप" इत्येव स्यात् । कृतिनिष्ठेनान्तरिकेण प्रमाणेन सिध्यति यदत्र "न्यास" इति पाठान्तरम् अकालिदासीयम् । (विक्रमोर्वशीये (2-13 इत्यस्याधस्ताद्) अपि निक्षेपशब्दस्यैव प्रयोगात्, कालिदासस्य कृतिषु च धरोहरेत्यर्थे न्यासशब्दस्य प्रयोगाभावाच्च ।)

।। अथ पञ्चमोऽङ्कः ।।

।। ततः प्रविशति कञ्चुकी ।।[1]

कञ्चुकी – (आत्मानं विलोक्य) (निःश्वस्य) अहो बत कीदृशीं वयोऽवस्थां प्राप्तोऽस्मि । [2]

आचार इत्यधिकृतेन मया गृहीता
या वेत्रयष्टिरवरोधगृहेषु राज्ञः ।
कालेन सैव परिहीननियोगशक्ते-
र्गन्तुं ममेयम् अवलम्बनवस्तु जाता ।। **5 – 1** ।।[3]

यावद् अभ्यन्तरगताय देवायानुष्ठेयम् अकालक्षेपार्हं निवेदयामि । (द्वे पदे गत्वा) किं पुनस्तत् । (संस्मृत्य) आम्, कण्वशिष्याः तपोधना देवं द्रष्टुम् इच्छन्ति । भोश्चित्रम् इदम् – [4]

क्षणात्प्रबोधमायाति लङ्घ्यते तमसा पुनः ।
निर्वास्यतः प्रदीपस्य शिखेव जरतो मतिः ।। **5 – 2** ।।[5]

(परिक्रम्याकाशे) [6]

मौद्गल्य, धर्मकार्यमनतिपात्यं, तद्देवस्य तदावेदयितुमिच्छामि । किं ब्रवीषि ।नन्विदानीमेव धर्मासनाद् उत्थितः पुनरुपरुध्यते देव इति । न त्वीदृशो लोकतन्त्राधिकारः । पश्य,[7]

भानुस्सकृद् युक्ततुरङ्ग एव
रात्रिन्दिवं गन्धवहः प्रयाति ।
अवेक्ष्य दाह्यं न शमोऽस्ति वह्ने-
ष्षष्ठांशवृत्तेरपि धर्म एषः ।। **5 – 3** ।।[8]

किं ब्रवीषि । तेन सङ्गीतकशालासङ्गतं मण्डपं गच्छ, अनुष्ठीयतां नियोग इति । यावत् तत्र गच्छामि । (परिक्रम्यावलोक्य च) एष देवः ।[9]

मनुः प्रजास्स्वा इव तन्त्रयित्वा
निषेवते शान्तमना विविक्तम् ।
यूथानि संचार्य रविप्रतप्तः शीतं
दिवा स्थानमिव द्विपेन्द्रः ।। **5 – 4** ।।[10]

(ततः प्रविशत्यासनस्थः परिमितपरिवारो राजा विदूषकश्च)[11]

विदूषकः – (कर्णं दत्त्वा) भोः णं सङ्गीदसालअं । तेण अवधानं देहि । तालगतिविसुद्धाए खु वीणाए सरसञ्ञोआ सुणीअन्ति । जाणे तत्थभोदी हंसवदिआ वण्णपरिचअं करेदित्ति । (भोः, ननु सङ्गीतशालकम् । तेनावधानं देहि । तालगतिविशुद्धायाः खलु वीणायाः स्वरसंयोगाः श्रूयन्ते । जाने तत्रभवती हंसवतिका वर्णपरिचयं करोतीति ।)[12]

राजा – (आकर्णयन्) माधव्य, तूष्णीं भव, यावद् आकर्णयामि । [13]

कञ्चुकी – अये, व्यासक्तचित्तो देवः । अवसरं तावत् प्रतिपालयामि । (विलोकयन् स्थितः)[14]

(नेपथ्ये गीयते)[15]

अहिणव-महुलोहभाविदं तह परिचुम्बिअ चूदमञ्जरिं ।
कमलवसतिमेत्तणिव्वुदो महुअर वीस्सरदो सि णं कधं ।। **5 – 5** ।।
(अभिनव-मधुलोभभावितस्तथा परिचुम्ब्य चूतमञ्जरीम् ।
कमलवसतिमात्रनिर्वृतो मधुकर विस्मृतोऽस्येनां कथम् ।। **5 – 5** ।।) [16]

राजा – अहो रागपरिवाहिणी गीतिः । [17]

विदूषकः – किं दाव से गीतिआए । अविगिहिदो भवदा अक्खरत्थो ।(किं तावदस्या गीतिकायाः, अपि गृहीतो भवताक्षरार्थः ।)[18]

राजा – (स्मितं कृत्वा) वयस्य, सत्कृतप्रणयोऽयं[1] जनः । तदस्याः कृते कुलप्रभाम्[2] अन्तरेण समुपालम्भम् उपागतोऽस्मि ।तन्मद्वचनाद् उच्यतां हंसवतिका । निपुणम् उपालब्धास्स्म इति ।[19]

विदूषकः – जं भवं आणवेदि । (उत्थाय) भो वअस्स । गिहीदो तए परकीहिं हत्थेहिं सिखण्डए अच्छभल्लो अवीदराअस्स विअ णत्थि मे मोक्खो । (यद् भवान् आज्ञापयति । भो वयस्य,गृहीतस्त्वया परकीयैर्हस्तैः शिखण्डके भल्लूकः । अवीतरागस्येव नास्ति मे मोक्षः ।)[20]

राजा – वयस्य, गच्छ, नागरकवृत्त्या संज्ञापयैनाम् । [21]

विदूषकः – का गदी । (का गतिः ।)

(इति निष्क्रान्तः)[22]

राजा – (आत्मगतम्) किं नु खलु गीतमाकर्ण्येदम् एवं विधार्थमिष्टजनविरहाद् ऋतेऽपि बलवदुत्कण्ठितो-ऽस्मि । अथवा, [23]

रम्याणि वीक्ष्य मधुरांश्च निशम्य शब्दान्
पर्युत्सुकीभवति यत्सुखितोऽपि जन्तुः ।
तच्चेतसा स्मरति नूनम्अभोगपूर्वम्
भाविस्थितानि जननान्तरसौहृदानि[3] ।। **5 – 6** ।।[24]

कञ्चुकी – (उपसृत्य) (प्रणिपत्य) जयतु जयतु देवः । एते खलु हिमगिरेरुपत्यकारण्यकाः कण्वसन्देशम् आदायसस्त्रीकास्तपस्विनस्सम्प्राप्ताः । श्रुत्वा प्रभविष्णुः प्रमाणम् । [25]

राजा – किं कण्वसन्देशहारिणः सस्त्रीकाः तपस्विनः । [26]

कञ्चुकी – अथ किम् । [27]

राजा – तेन हि, मद् वचनाद् विज्ञाप्यताम् उपाध्यायस्सोमरातः । अमूनाऽऽश्रमवासिनः श्रौतेन विधिना सत्कृत्य स्वयमेव प्रवेशयितुमर्हसि । अहमप्येनांस्तपस्विदर्शनोचिते देशे प्रतिपालयामीति ।[28]

कञ्चुकी – यद् आज्ञापयति देवः । (इति निष्क्रान्तः)[29]

राजा – (उत्थाय) वसुमति, अग्निशरणम् आदेशय ।[30]

प्रतीहारी – इदो इदो देवः । (परिक्रामन्ती) (इतः इतः देवः ।)[31]

राजा – (अधिकारखेदं रूपयित्वा) सर्वाः प्रार्थितमधिगम्य सुखी सम्पद्यते, राज्ञां तु चरितार्थतापि दुःखोत्तरैव । कुतः – [32]

औत्सुक्यमात्रमवसादयति प्रतिष्ठा
क्लिश्नाति लब्धपरिपालनवृत्तिरेव ।
नातिश्रमापनयनाय यथा श्रमाय
राज्यं स्वहस्तधृतदण्डमिवातपत्रम् ।। **5 – 7** ।।[33]

(**नेपथ्ये**)

---

[1]मै.-पाठेषु "सकृत्कृतप्रणयोऽयमि"ति पाठान्तरम् । किन्तु तेन नाटकस्यास्य नायकस्योदात्तता नितरां व्याहन्यते ।, का.-पाठेनानेन तस्य रक्षा भवति । एवञ्च, प्राचीनतमत्वादपि का.-पाठो विचारणीयोऽस्ति ।

[2]मै.-बं.-पाठयोरत्र "हंसवतीमि"ति पाठान्तरम् ।, अन्यत्र (का.-दाक्षि.-देव.) पूर्वपरिणीतायाः कुलप्रभायाः / वसुमत्याश्च नामान्तरं प्राप्यते । द्विविधयोः पाठयोर्मध्ये को ज्यायान्निति निश्चेतुं सुकरं न प्रतीयते । उभयत्र विवादः कर्तुं शक्यते । तथापि मै.-बं.-पाठयोर्विवादं दूरीकर्तुं प्रयत्यत इति संशितिः ।

[3]का.-पाठस्यात्र स्वीकारः क्रियते, प्राचीनतमत्वानुरोधादर्थान्तरस्य प्रतिपादकत्वाच्च । बहुपत्नीकत्वे सत्यपि राज्ञि, प्रणयस्यास्यापूर्वत्वं निरूपयितुं प्रवृत्तत्वाच्च कवेः । काश्मीर-पाठोऽनुपेक्ष्यः । षष्ठांकेऽपि न वर्तते पूर्वपरिणीतानां संघर्षः, विदूषकोऽपि तम् "अन्तःपुरकालकूट / कलह / वागुरादि"शब्दैः न निरूपयति ।)तस्यापि समीक्षाऽपेक्षतेतराम् ।।

वैतालिकाः – विजयतां देवः ।[34]

स्वसुखनिरभिलाषः खिद्यसे लोकहेतोः
प्रतिदिनमथवा ते सृष्टिरेवंविधैव ।
अनुभवति हि मूर्ध्ना पादपस्तीव्रमुष्णं
शमयति परितापं छायया संश्रितानाम् ।। **5 – 8** ।।[35]

अपि च,

नियमयसि विमार्गप्रस्थितान् आत्तदण्डः
प्रशमयसि विवादं कल्पसे रक्षणाय ।
अतनुषु विभवेषु ज्ञातयः सन्तु नाम
त्वयि तु परिसमाप्तं बन्धुकृत्यं प्रजानाम् ।। **5 – 9** ।।[36]

राजा – (आकर्ण्य) एते क्लान्तमनसः पुनर्नवीभूतास्स्मः[4] । (परिक्रम्य)[37]

प्रतीहारी– एसो अहिणवसम्मज्जनरमणीओ सण्णिहिदकविलधेणू अग्गिसरणालिन्दो । ता आरुहदुदेवो । (एषोऽभिनव सम्मार्जनरमणीयस्सन्निहितकपिलधेनुरग्निशरणालिन्दः । तदारोहतु देवः ।)[38]

राजा – (आरोहणं नाटयित्वा) (परिजनांसावलम्बी तिष्ठति) (सवितर्कम्) वसुमति, किम् उद्दिश्य तत्रभवता कण्वेन मत्सकाशम् ऋषयः प्रहितास्स्युः । [39]

किं तावद् व्रतिनाम् उपोढतपसां विघ्नैस्तपो दूषितं
धर्मारण्यगतेषु केनचिद् उत प्राणिष्वसच्चेष्टितम् ।
आहोस्वित् प्रसवो ममापचरितैर्विष्टम्भितो वीरुधाम्
इत्यालीढबहुप्रतर्कम् अपरिच्छेदाकुलं मे मनः ।। **5 – 10** ।।[40]

प्रतीहारी – देवस्स भुअणपरिसङ्गणिव्वुदे चतुरस्समे कुदो एदं । किं तु सुअरिदाभिणन्दिणो इसओ देवं सभाजइदुं आगदित्ति तक्केमि । (देवस्य भुवनपरिष्वङ्गनिर्वृते चतुराश्रमे कुत एतत् । किन्तु सुचरिताभिनन्दिन ऋषयो देवं सभाजयितुम् आगता इति तर्कयामि ।)[41]

(ततः प्रविशन्ति गौतमीसहिताः शकुन्तलां पुरस्कृत्य मुनयः ।
पुरतश्चैषां पुरोहित-कञ्चुकिनौ ।)[42]

कञ्चुकी – इत इतो भवन्तः । (सर्वे परिक्रामन्ति)[43]

शार्ङ्गरवः –
महाभागस्सत्यं नरपतिरभिन्नस्थितिरसौ
न कश्चिद् वर्णानाम् अपथम् अपकृष्टोऽपि भजते ।
तथापीदं शश्वत् परिचितविविक्तेन मनसा
जनाकीर्णं मन्ये हुतवहपरीतं गृहमिव ।। **5 – 11** ।।[44]

शारद्वतः – स्थाने भवतः पुरप्रवेशाद् इत्थंभूतस्संवेगः । अहमपि,[45]

अभ्यक्तमिव स्नातः, शुचिरशुचिमिव, प्रबुद्ध इव सुप्तम् ।
बद्धमिव स्वैरगतिर्जनम् अवशस्सङ्गिनमवैमि ।। **5 – 12** ।।[46]

शकुन्तला – (दुर्निमित्तं सूचयन्ती) (सखेदम्) अम्मो, किं पिवामेदरं मे णअणं विप्पकरेदि । (अहो किम् अपि वामेतरं मे नयनं विप्रकरोति ।)[47]

गौतमी –पडिहदं अमङ्गलं । सुहाइं दे भत्तु-कुलदेवदाओ विदरन्तु । (परिक्रामन्ति) (प्रतिहतम् अमङ्गलं, सुखानि ते भर्तृकुलदेवता वितरन्तु ।)[48]

---

[4]का.-पाठे येन क्रमेण दृश्य-योजना सुरक्षिता वर्तते, तामेवात्राङ्गीकृता । तद्यथा- 1. कञ्चुकिन उक्तयः, 2. हंसवतिकाया-गीतम्, 3. वैतालिकानां श्लोक-गानं, क्लान्तमनसो राज्ञो नवीकरणम्, 4. कण्वशिष्यानाम् शकुन्तलया सह प्रवेशः ।

पुरोहितः – (राजानं निर्दिशन्) भोस्तपस्विनः । असावत्रभवान् वर्णाश्रमाणां रक्षिता प्रागेव मुक्तासनः प्रतिपालयति । पश्यतैनम् । [49]

ऋषयः– महाब्राह्मण, काममेतद् अभिनन्दनीयम् । तथापि वयमत्र मध्यमस्थाः । कुतः – [50]

भवन्ति नम्रास्तरवः फलोद्गमै-
र्नवाम्बुभिर्दूरविलम्बिनो घनाः ।
अनुद्धतास्सत्पुरुषास्समृद्धिभिः
स्वभाव एवैष परोपकारिणाम् ।। **5 – 13** ।।[51]

प्रतीहारी – देव, पसण्णमुहराआ दीसन्ति सत्थकय्या इसओ । (देव, प्रसन्नमुखरागा दृश्यन्ते स्वस्थकार्या ऋषयः ।)[52]

राजा – (शकुन्तलां दृष्ट्वा) अथात्रभवती – [53]

कास्विद् अवगुण्ठनवती
नातिपरिस्फुटशरीरलावण्या ।
मध्ये तपोधनानां किसलय-
मिव पाण्डुपत्राणाम् ।। **5 – 14** ।।[54]

प्रतीहारी – देव, कुदूहलदाए विम्हिदम्हि । ण मे तक्को पसीददि । (देव, कुतूहलतया विस्मितास्मि । न मे तर्कः प्रसीदति ।)[55]

परिजनः – भट्टा, दंसणीआ खु से आकिदी लक्खीअदि । (भर्तः, दर्शनीया खल्वस्या आकृतिर्लक्ष्यते ।) [56]

शकुन्तला – (आत्मगतम्) (उरसि हस्तं दत्त्वा) (ससाध्वसम्) हिअअ, किं एवं वेवसि । अय्यउत्तस्स भावत्थिदिं सुमरिअ धीरं दाव होहि ।(हृदय, किमेवं वेपसि । आर्यपुत्रस्य भावस्थितिं स्मृत्वा धीरं तावद् भव ।)[57]

पुरोहितः– (पुरो गत्वा) देव, एते विधिवदर्चितास्तपस्विनः । कश्चिदेतेषाम् उपाध्यायसन्देशः । तं देवः श्रोतुम् अर्हति ।[58]

राजा –(सादरम्) अवहितोऽस्मि । [59]

ऋषयः– (उपसृत्य) (हस्तान् उद्यम्य) विजयस्व राजन् । [60]

राजा –(सप्रणामम्) सर्वान् अभिवादये वः ।[61]

ऋषयः –स्वस्ति भवते । [62]

राजा–अपि निर्विघ्नं तपः । [63]

ऋषयः–कुतो धर्मक्रियाविघ्नस्सतां रक्षितरि त्वयि ।
तमस्तपति घर्मांशौ कथम् आविर्भविष्यति ।। **5 – 15** ।।[64]

राजा–अर्थवान् मे खलु राजशब्दः । अथ तत्रभवाल्लँलोकानुग्रहाय कुशली कण्वः ।[65]

शाङ्गरवः – स्वाधीनकुशलास्सिद्धिमन्तः । स भवन्तमनामयप्रश्नपूर्वम् इदम् आह ।[66]

राजा–किम् आज्ञापयति ।[67]

शाङ्गरवः – (शकुन्तलाम् उद्दिश्य) यन् मिथस्समयाद् इमाम् मदीयां दुहितरम् उपयेमे । तन्मया प्रीतमनसायुवयोरनुज्ञातम् । कुतः – [68]

त्वमर्हतां प्राग्रहरः स्मृतो हि नः,
शकुन्तला मूर्तिमतीव सत्क्रिया ।
समानयंस्तुल्यगुणं वधूवरं
चिरस्य वाच्यं न गतः प्रजापतिः ।। **5 – 16** ।।[70]

तदियम् इदानीं आपन्नसत्त्वा प्रतिगृह्यतांसहधर्मचारणायेति ।[71]

गौतमी – भद्दमुह, वत्तुकामा त्थिदा म्हि । ण अ मे वअणावकासो अत्थि । कधं त्ति – [72]

णावेक्खिदो गुरुअणो इमा इणा इह पुच्छिदा बन्धू ।
एक्केक्कमेण वरिए किं भण्णतएक्कम् एक्कमि ।। **5 – 17** ।।

(भद्रमुख, वक्तुकामा स्थिताऽस्मि । न च मे वचनावकाशोऽस्ति । कथमिति –

नापेक्षितो गुरुजनो,ऽनया न चात्र पृष्टा बन्धवः ।
एकैकेन वरिते किं भण्यताम् एकम् एकस्मिन् ।। **5 – 17** ।।)[73]

राजा – (साशङ्काकुलम् आकर्ण्य) अयि, किमिदम् उपन्यस्तम् ।[74]

शकुन्तला– (आत्मगतं,साशङ्कम्) हुं पावो से वअणोवक्खेवो । (हुँ, पावकोऽस्य वचनोपक्षेपः ।)[75]

शाङ्र्गरवः – कथं नाम अत्रभवन्त एव सुतरां लोकयात्रानिष्णाताः ।[76]

सतीमपि ज्ञातिकुलैकसंश्रयाम्
जनोऽन्यथा भर्तृमतीं विशङ्कते ।
अतः समीपे परिणेतुरिष्यते तद्
अप्रियापि प्रमदा स्वबन्धुभिः ।। **5 – 18** ।।[77]

राजा –किम् अत्रभवती मया परिणीतपूर्वा ? ।[78]

शकुन्तला – (सविषादमात्मगतम्) हिअअ, संवदिदा खु दे आसङ्का । (हृदय, संवर्द्धिता खलु त आशङ्का ।)[79]

शाङ्र्गरवः – राजन् ! ,
किं कृतकार्यद्वेषाद् धर्मं प्रति विमुखता राज्ञः ।[80]

राजा–कुतोऽयम् असत्कल्पनाप्रसङ्गः ? । [81]

शाङ्र्गरवः – मूर्च्छन्त्यमी विकाराः प्रायेणैश्वर्यमत्तेषु ।। **5 – 19** ।।[82]

राजा–विशेषेणाधिक्षिप्तोऽस्मि ।[83]

गौतमी – (शकुन्तलां प्रति) जादे, मा मुहुत्तअं लज्ज, अवणयिस्सं दाव दे अवगुण्ठनं । तदो भट्टा तुमं अहिजाणइस्सदि त्ति । (जाते, मा मुहूर्तकं लज्जस्व । अपनेष्यामि तावत् तेऽवगुण्ठनम् । ततो भर्ता त्वाम् अभिज्ञास्यतीति ।) [84]

(गौतमी यथोक्तं करोति)[85]

राजा–(शकुन्तलां निर्वर्णयन् सविस्मयम् आत्मगतम्)[86]

इदमुपनतमेवं रूपम् अक्लिष्टकान्ति
प्रथमपरिगृहीतं स्यान्न वेत्यध्यवस्यन् ।
भ्रमर इव विभाते कुन्दमन्तस्तुषारम्
न च खलु परिभोक्तुं नापि शक्नोमि हातुम् ।। **5 – 20** ।।[87]

परिजनः – (जनान्तिकम्)अहो धम्मावेक्खिदा भट्टिणो । ईदिसं णाम सुहोवणदं इत्थीरदणं पेक्खिअ को अण्णोविआरेदि । (अहो धर्मापेक्षिता भर्तुः । ईदृशं नाम सुखोपनतं स्त्रीरत्नं प्रेक्ष्य कोऽन्यो विचारयति ।)[88]

शाङ्र्गरवः – राजन्, किम् एवम् जोषम् आस्यते ? ।[89]

राजा–भोस्तपस्विन्, चिन्तयन्नपि न खलु स्वीकरणम् अत्रभवत्याः स्मरामि ।तत्कथमनभिव्यक्त-सन्धिलक्षणम् आत्मानं क्षेत्रिणम् अनाशंसमानः प्रतिपत्स्ये ।[90]

शकुन्तला– (अपवार्य) हद्धी कधं परिणए य्येव सन्देहो । भग्गा दाणिं मे दूरारोहिणी आसा । (हा धिक्, कथं परिणय एव सन्देहः । भग्नेदानीं मे दूरारोहिण्याशा ।)[91]

शाङ्र्गरवः –मा तावत् ।

कृताभिमर्शाम् अवमन्यमान-
स्सुतां त्वया नाम मुनिर्विमान्यः ।
जुष्टं प्रतिग्राहयता स्वम् अर्थं
पात्रीकृतो दस्युरिवासि येन ।। **5 – 21** ।।[92]

शारद्वतः – शाङ्र्गरव, विरम त्वमिदानीम् । शकुन्तले, वक्तव्यमुक्तमस्माभिः । सोऽयमत्रभवान् इदमाह । तद् दीयताम् अस्मै प्रतिवचनम् ।[93]

शकुन्तला – अय्यउत्त[5] ......, (इत्यर्धोक्ते) (आर्यपुत्र .... ।) [94]

(आत्मगतम्) अधवा, संसइदो दाणिं मे समुदाआरो । (अथवा, संशयितो इदानीं मे समुदाचारः ।)[95]

(**प्रकाशम्**) पोरव, जुत्तं णाम पुरा अस्समपदे सब्भावुत्ताण हिअअं इमं जणं समयपुरवं पदारिअ, इदिसेहिं अक्खरेहिं पच्चाचक्खिदुं । (पौरव, युक्तं नाम पुराश्रमपदे सद्भावोत्तान-हृदयम् इमं जनं समयपूर्वम् प्रतार्येदृशैरक्षरैः प्रत्याख्यातुम् ।)[96]

राजा–(कर्णौ स्पृष्ट्वा) शान्तंपापम् । [97]

व्यपदेशम् आविलयितुं किम्
ईहसे माम् च पातयितुमास्त ।
कूलङ्कषेवसिन्धुः प्रसन्न-
-मोघं तटरुहं च ।। **5 – 22** ।।[98]

शकुन्तला – जदि परमत्थदो परपरिग्गहणसङ्किणा तए एवं वुत्तं । दा अहिण्णाणेण गुरुणा तुह सन्देहं अवनइस्सं । (यदि परमार्थतः परपरिग्रहणशङ्किना त्वयैवमुक्तम् । तदभिज्ञानेन गुरुणा तव सन्देहम् अपनेष्यामि ।)[99]

राजा–उदारम् । [100]

शकुन्तला –(मुद्रास्थानम् परामृश्य) हद्धी, अङ्गुलीअसुण्णा मे अङ्गुली । (तापसीं पश्यति) (हा धिक्, अङ्गुलीयशून्या मेऽङ्गुली ।)[101]

गौतमी–ण खु दे सक्कावदारे सचितित्थोदअं अवगाहमाणाए पब्भट्ठो अङ्गुलीओ । (न खलु ते शक्रावतारे शचीतीर्थोदकम् अवगाहमानायाः प्रभ्रष्टोऽङ्गुलीयकः ।) [102]

राजा– (सस्मितम्) इदम् तद् यौतुकं प्रत्युपन्नं स्त्रीणाम् इति यदुच्यते ।[103]

शकुन्तला – एत्थ दाव विहिणा दंसिदं पहुत्तणं, अवरं दे कधयिस्सं । (अत्र तावद्विधिना दर्शितं प्रभुत्वम्, अपरं ते कथयिष्यामि ।)[104]

राजा –श्रोतव्यमिदानीं संवृत्तम् । [105]

शकुन्तला – ण खु तत्थइक्कदिअसे णवमालिआमण्डवके णलिणीपत्तभाअणगदं उदअं तव हत्थसण्णिहिदं आसी ।(न खलु तत्रैकदिवसे नवमालिकामण्डपके नलिनीपत्रभाजनगतमुदकं तव हस्तसन्निहितम् आसीत् ।) [106]

राजा – शृणुमस्तावत् ।[107]

शकुन्तला – तक्खणं च मम सो किदअपुत्तओ हरिणओ उवत्थिदो । तदो तए अअं दाव पढुमं पिवदु त्ति अणुकम्पिणा उवच्छन्दिदो । ण उण दे अवरिइदस्स हत्थब्भासो उवगदो । पच्छा तस्सिं य्येव

---

[5]इतः पूर्वम्- शकुन्तलायाः स्वगतोक्तिरूपेण"इदं अवत्थान्तरं गदे तादिसे मुहुत्तरागे, किं वा सुमराविदेण सम्पदंतेण । अधवा, अत्ता दाणिं मे सोधणीओत्थि,विवदिस्सं एदं।" इति यद्वाक्यं वर्तते, तत्प्रक्षिप्तं प्रतिभाति ।

उदएमए गिहीदे पणअपकासपुरवंतुमं पहसिदो सि, भणिदं च तए, सव्वो सगन्धे विससिदि, दुवेविएत्थआरण्णआ त्ति। (तत्क्षणं च मम स कृतकपुत्रको हरिणक उपस्थितः। ततस्त्वयायं तावत् प्रथमं पिबत्वित्यनुकम्पिनोपच्छन्दितः। न पुनस्तेऽपरिचितस्य हस्ताभ्यास उपगतः। पश्चात् तस्मिन्नेवोदके मया गृहीते, प्रणयप्रकाशपूर्वं त्वंप्रहसितोऽसि, भणितं च त्वया सर्वस्सगन्धे विश्वसिति। द्वावप्यत्रारण्यकाविति।) [108]

राजा–(विहसन्) एभिरात्मकार्यनिर्वत्तिनीनां योषितामनृतवाङ्मधुभिराकृष्यन्ते विषयिणः।[109]

गौतमी – महाभाअ, णारहसि इत्तिकं मन्तइदुं। तवोवणसंवड्ढिदो खु अअं जणो अणभिण्णो केदवस्स। (महाभाग, नार्हस्येतावन्मन्त्रयितुम्। तपोवनसंवर्द्धितः खलु अयं जनोऽनभिज्ञः कैतवस्य।)[110]

राजा–तापसवृद्धे,

स्त्रीणामशिक्षितपटुत्वम् अमानुषीषु
सन्दृश्यते किम् उत याः परिबोधवत्यः।
प्राग् अन्तरिक्षगमनात् स्वम् अपत्यजातम्
अन्यद्विजैः परभृतः किल पोषयन्ति॥ **5 – 23**॥[111]

शकुन्तला – (सरोषम्) अणय्य[6], अत्तणो हिअआणुमाणेण सव्वं पेक्खसि। को अण्णो धम्मकञ्चुअपवेसिणो तणच्छणन्नकूवोपमस्स तवाणुकारी भविस्सदि।(अनार्य, आत्मनो हृदयानुमानेन सर्वं प्रेक्षसे, कोऽन्यो धर्मकञ्चुकप्रवेशिनस्तृणच्छन्नकूपोपमस्य तवानुकारीभविष्यति।) [112]

राजा–भद्रे[7], दुःषन्तचरितं प्रजासु प्रथितम्।न चापीदं दृश्यते[8]।[115]

शकुन्तला –सुट्ठु दाव सच्छन्दआरिणी कदम्हि जा अहं इमस्स पुरुवंसपच्चएण हिअअसत्थधारस्स मुहमहुणो हत्थब्भासं उवगदा। (सुष्ठु तावत् स्वच्छन्दचारिणी कृतास्मि, याहं अस्य पुरुवंशप्रत्ययेन हृदयशस्त्रधरस्य मुखमधुनो हस्ताभ्याशम् उपगता।)[117]

(इति मुखमावृत्य रोदिति।) [118]

शाङ्र्गरवः– इत्थम् अप्रतिहतं चापलं दहति। अतः खलु,[119]

परीक्ष्य सर्वं कर्तव्यं विशेषात् संविदः क्रियाः।
अज्ञातहृदयेष्वेवं वैरीभवति सौहृदम्॥ **5 – 25**॥[120]

राजा–अयि भोः, किमत्रभवतीप्रत्ययाद् एवास्मान् अतिबलेन क्षिण्वन्ति भवन्तः।[121]

शाङ्र्गरवः –श्रुतं भवद्भिरधरोत्तरम्। [122]

आ जन्मनः शाठ्यम् अलक्षितो यः,
तस्याप्रमाणं वचनं जनस्य।
पराभिसन्धानमधीयते यैर्
विद्येतिते सन्तु किलाप्तवाचः॥ **5 – 26**॥[123]

राजा–हन्त भोस्सत्यवादिन्, अभ्युपगतं तावदस्माभिः। एवं विधावयम्। किं पुनरिमाम् अभिसन्धाय लभ्यते।[124]

शारद्वतः – विनिपातः।[125]

---

[6]का.-पाठे नास्तीदं पदम्। मै.-पाठे सुरक्षितमिदं संबोधनं प्रसंगोचितं प्रतिभाति। अतोऽत्रेदं स्वीक्रियते।
[7]इतः पूर्वम्- स्वगतोक्तिरूपेण राज्ञो मुखे "न तिर्यगवलोकि चक्षुरतिलोहितं केवल0" इति श्लोकः प्राप्यते, किन्तु पूर्वापरसन्दर्भे सो न प्रासंगिकः प्रतीयते। अतो निष्कास्यते। (प्रक्षिप्त-श्लोक-संख्या- 22)
[8]का.-मै.-बं.-पाठेष्वितः परं "तुम्हे य्येव पमाणं जाणीध0" इति प्राकृत-गाथा। (प्रक्षिप्त-श्लोक-संख्या-23)

राजा– तं नाहं प्रार्थये । [126]
शारद्वतः – भो राजन्, किमुत्तरोत्तरैः, अनुष्ठितगुरुनिदेशाः स्मः । सम्प्रतिप्रतिनिवर्तामहेवयम्,[127]

तदेषा भवतः पत्नी त्यज वैनां गृहाण वा ।
उपयन्तुर्हि दारेषु प्रभुता सर्वतोमुखी ।। **5 – 27** ।।[128]

गौतमि,गच्छ गच्छाग्रतः । (सर्वे प्रस्थिताः)[129]
शकुन्तला – (सदैन्यम्) हुं इमिणा दाव केतवेण विप्पलब्धम्हि । तुम्हे वि मं परिच्चइदुमिच्छध । ता कागदी ।(इति गौतमीम् अनुगच्छति ।) (हुं अनेन तावत् कैतवेन विप्रलब्धाऽस्मि । यूयमपि मां परित्यक्तुम् इच्छथ, तत्का गतिः ।)[130]
गौतमी– (स्थित्वा) वच्छ साङ्गरव, अणुगच्छदि एसा करुणपरिदेविणी सउन्तला । पच्चादेसकलुसे भत्तारे किंवा पुत्तिआ मे करेदु । (वत्स शाङ्र्गरव, अनुगच्छत्येषा करुणपरिदेविणी शकुन्तला प्रत्यादेशकलुषे भर्तरि किं वा पुत्रिका मे करोतु ।)[131]
शाङ्र्गरवः – (पुरोधसा संज्ञितः प्रतिनिवृत्त्य) आः पुरोभागे, किम् इदम् स्वातन्त्र्यम् अवलम्ब्यते ।[132]
(शकुन्तला भीता वेपते)[133]
शाङ्र्गरवः – शृणोतु भवती ।[134]

यदि यथा वदति क्षितिपस्तथा
त्वम् असि किं पितृशोकदया त्वया ।
अथ तु वेत्सि शुचि व्रतमात्मनः
पतिगृहे तव दास्यमपि क्षमम् ।। **5 – 28** ।।[135]

तिष्ठ, साधयामो वयम् । [136]
राजा –भोस्तपस्विन् , किमत्रभवतीम् विप्रलभसे । पश्य, [137]

कुमुदान्येव शशाङ्क-
स्सविता बोधयति पङ्कजान्येव ।
वशिनां हि परपरिग्रह-
संश्लेषपराङ्मुखी वृत्तिः ।। **5 – 29** ।।[138]

शाङ्र्गरवः – राजन्, अथ पूर्वपरिग्रहोऽन्यासङ्गाद् विस्मृतो भवेत्, तदा कथम् अधर्मभीरुः । [139]
राजा– (सोमरातं प्रति[9]) भवन्तम् एव गुरुलाघवं प्रक्ष्यामि । [140]

मूढः स्याम् अहमेषा वा वदेन् मिथ्येति संशये ।
दारत्यागी भवाम्यहो परस्त्रीस्पर्शपांसुलः ।। **5 – 30** ।।[141]

पुरोधाः –देव, विचारय, यदि तावद् एवम् क्रियते ।[142]

राजा –अनुशास्तु मां भवान् ।[143]

पुरोधाः – अत्रभवती तावद् आप्रसवाद् आपन्नसत्त्वा मद्गृहे तिष्ठतु । भूतमिदम् उच्यते – त्वं साधुभिरादिष्टः प्रथमं चक्रवर्तिनं जनयिष्यसीति । स चेन्मुनिदौहित्रस्तल्लक्षणोपपन्नो भविष्यति इति ततःप्रतिनन्द्य शुद्धान्तमेनां प्रवेशयिष्यसीति । विपर्यये पितुरस्यास्समीपगमनम् उपस्थितम् एव ।[144]

राजा–यथा गुरुभ्यो रोचते ।[145]

पुरोधाः– वत्से, अनुगच्छ माम् । [146]
शकुन्तला –(रुदती)भअवदि वसुहे, देहि मे विअरं । (भगवति वसुधे, देहि मे विवरम् ।)[147]

---
[9]इयमस्मद्-योजना ।

(इति निष्क्रान्ता सह सकलैः पुरोधसा च) [148]

राजा–(शापव्यवहितस्मृतिः शकुन्तलाम् एव चिन्तयति ।) [149]

।। नेपथ्ये ।।

आश्चर्यम् आश्चर्यम् ।[150]

राजा–(कर्णं दत्त्वा) किं नु खलु स्यात् । [151]

(प्रविश्य **पुरोहितः**)देव, अद्भुतम् खलु संवृत्तम् ।[152]

राजा –किमिव ।[153]

पुरोधाः–परिवृत्तेषु कण्वशिष्येषु,

सा निन्दन्ती स्वानि भाग्यानि
बाला बाहूत्क्षेपं क्रन्दितुं च प्रवृत्ता ।[154]

राजा –किं च, [155]

पुरोधाः– स्त्रीसंस्थानं चाप्सरस्तीर्थमाराद्
आक्षिप्यैव ज्योतिरेनाम् तिरोऽभूत् ।। **5 – 31** ।।[156]

(सर्वे विस्मिताः)[157]

राजा –भगवन्, प्रागेव सोऽस्माभिरर्थः प्रत्यादिष्ट एव। किं वृथा तर्केणान्विष्टेन । विश्रमामि ।[158]

पुरोधाः–विजयस्व । (इति निष्क्रान्तः)[159]

राजा–(सखेदम्) वसुमति, पर्याकुलोऽस्मि । शयनभूमिम् आदेशय ।[160]

प्रतीहारी–(सादरम्) इदो इदो देवो । (इत इतो देवः ।) (परिक्रामति)[162]

राजा –(आत्मगतम्)

कामं प्रत्यादिष्टां स्मरामि न परिग्रहं मुनेस्तनयाम् ।
बलवत् तु दूयमानं प्रत्यायतीव सा हृदयम् ।। **5 – 32** ।।[163]

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)[164]

।। इति पञ्चमोऽङ्कः ।।

।। षष्ठोऽङ्कः ।।

(ततः प्रविशति नागरिकस्यालः, पश्चाद् बद्धं पुरुषमादाय रक्षिणौ च) [1]

रक्षिणौ – (पुरुषं ताडयित्वा) अले कुम्भिलआ, कहेहि कहिं तए एशे महामणिपत्थलुक्किण्ण णामक्खले लाअकीअङ्गुलीअए समासादिदे । (अरे कुम्भिलक, कथय कुत्र त्वयैषा महामणिप्रस्तरोत्कीर्ण-नामाक्षरो राजकीयाङ्गुलीयकस्समासादितः ।) [2]

पुरुषः – (भयं नाटयित्वा) पसीदन्तु पसीदन्तु भादुअमिस्सा । हगे खु ईदिसस्स कम्मणो कले ? । (प्रसीदतु, प्रसीदतु भ्रातृकमिश्राः । अहम् खलु ईदृशस्य कर्मणः कुर्वे ? ।) [3]

प्रथमः – किं णु खु शोहणो बम्हणे त्ति कलिअ लञ्ञा पदिग्गहे दिण्णे । (किं नु खलु शोभनो ब्राह्मण इति कृत्वा राज्ञा प्रतिग्रहो दत्तः ।) [4]

पुरुषः – जाणअ, दाणिं हगे सक्कावदालवासिके धीवले । (जानक, इदानीम् अहम् शक्रावतारवासिको धीवरः ।) [5]

द्वितीयः – पाडच्चल, किं खु दे अम्हेहिं जादी पुच्छिदा । (पाटच्चर, किं खलु तेऽस्माभिर्जातिः पृष्टा ।) [6]

स्यालः – सूचअ, कधेदु सव्वं अणुक्कमेण । मा णं अन्तरा पडिबन्धिट्ठ । (सूचक, कथयतु सर्वमनुक्रमेण । मा एनम् अन्तरा प्रतिबन्धिष्ठ ।) [7]

रक्षिणौ – जं आउत्ते आणवेदि । (पुरुषं प्रति) भण भण । [8]

पुरुषः – से हगे जालपडिसादेहिं मश्चबन्धणोवाएहिं कुडुम्बभलणं कलेमि । (सोऽहं जालपडिसादिभि-र्मत्स्यबन्धनोपायैः कुटुम्बभरणं करोमि ।) [9]

स्यालः – (प्रहस्य) विशुद्धो दाणिं दे आजीओ । (विशुद्ध इदानीं त आजीवः ।) [10]

पुरुषः – भट्टा,

सहजं किल जं पि णिन्दिदं ण हि तं कम्म विवज्जणीअए ।
पशुमालककम्म दालुणे अणुकम्पामिदु एव सोत्तिए ।। 6 – 1 ।।
(सहजं किल यदपि निन्दितं न हि तत्कर्म विवर्जनीयकम् ।
पशुमारककर्म्मदारुणोऽनुकम्पामृदुरेव श्रोत्रियः ।। 6 – 1 ।।) [11]

स्यालः – तदो तदो । (ततस्ततः) [12]

पुरुषः – अधेक्कदिअशे खण्डशो लोहिदमच्छे मए कप्पिदे । जाव तस्स उदलब्भन्तला एदं रअण-भासुलं अङ्गुलीअं पेक्खामि ।। पश्चा इध णं विक्कआअ दंशअन्ते गहिदे भावमिश्शेहिं । इत्तिके दाव एदश्श आगमे । अधुणा मालेध कुट्टेध वा । (अथैकदिवसे खण्डशो रोहितमत्स्यो मया कल्पितः यावत् तस्योदराभ्यन्तर एतद् रत्नभासुरम् अङ्गुलीयकं प्रेक्षे । पश्चाद् इहैतद् विक्रयाय दर्शयन् गृहीतो भावमिश्रैः । एतावान् तावद् एतस्यागमः, अधुना मारयत कर्तयत वा ।) [13]

स्यालः – (अङ्गुलीयकम् आघ्राय) जाणअ, मच्छोदरसण्ठिदं ति णत्थि संदेहो । तधा अअं से विसगन्धो, आगमो दाणिं एदस्स विमरिसिदव्वो । ता एध राअउलं येव गच्छम्ह । (जानक, मत्स्योदर-संस्थितम् इति नास्ति सन्देहः । तथायम् अस्य विस्रगन्धः, आगम इदानीमेतस्य विमर्ष्टव्यः । तद् एतम् राजकुलम् एव गच्छामः ।) [14]

रक्षिणौ – गश्च णाध गण्ठिभेदअ । (सर्वे परिक्रामन्ति) (गच्छ नाथ ग्रन्थिभेदक ।) [15]

स्यालः – सूचअ, इद मं गोउलदुव्वारे अप्पमत्ता पडिवालेद, जाव इमं जहागमं अङ्गुलीअअं भट्टिणो उवणिअ तदीअसासणं पडिच्छअ णिक्कमामि । (सूचक, इह मां गोकुल[1]द्वारेऽप्रमत्तौ प्रतिपालयतं

---

[1] प्राकृतप्रकाशे "(अयुक्तस्यानादौ) इत्यधिकारे, कगचजतदपयवां लोपः । (अ. 2- सू. 2)" इत्यनेन गोकुल-शब्दात् ककारस्य लोपे सति "गोउल" इति प्राप्यते, यथा बकुलः – बउल इति भवति ।

यावद् इदं यथागमं अङ्गुलीयकं भर्तुरुपनीय तदीयशासनं प्रतीष्य निष्क्रमामि ।) [16]

उभौ – पविसदु आउत्ते सामिपसादाअ । (प्रविशत्वाबुत्तस्स्वामिप्रसादाय) [17]

(स्यालो निष्क्रान्तः ।) [18]

प्रथमः – जाणआ, चिलाअदि आउत्ते । (जानक, चिरायत्याबुत्तः ।) [19]

द्वितीयः – णं अवशलोवशप्पअणिआ लाआणो । (ननु अवसरोपसर्पणीया राजानः ।) [20]

प्रथमः – वअश्शा, फुलन्ति मम हत्था इमश्श वशणं पिणद्धुं । (वयस्य, स्फुरतो मम हस्तावस्य व्यसनं पिनद्धुम् ।) [21]

(पुरुषं निर्दिशति) [22]

पुरुषः – णालहदि भादुभादुके अकालमालके भविदुम् । (नार्हति भ्रातृभ्रातृकोऽकालमारको भवितुम् ।) [23]

द्वितीयः – (विलोक्य) आगच्छदु अम्हाणं ईशले, पदिगिण्हिअ लाअशाशणं । (पुरुषं प्रति) शउलाणं मुहं पेक्खशि, अध वा गिद्धशिआलाणं बली भविश्शशि । (आगच्छतु अस्माकमीश्वरः, प्रतिगृह्य राजशासनम् । शकुलानां मुखं प्रेक्षसेऽथवा गृध्रशृगालानां बलिर्भविष्यसि ।) [24]

(प्रविश्य) **स्यालः –** सिग्घं सिग्धं एदम् । (इत्यर्धोक्ते) (शीघ्रं शीघ्रम् एतम् ।) [25]

पुरुषः – हा हदे म्हि । (हा हतोऽस्मि ।) (इति विषादं नाटयति) [26]

स्यालः – मुञ्चेध रे मुञ्चेध जालोवजीविणं । उववण्णो से किल अङ्गुलीअअस्स आगमो । अम्हसामिणा येव मे कधिदं । (मुञ्चतं रे मुञ्चतं जालोपजीविनम् । उपपन्नोऽस्य किल अङ्गुलीयकस्यागमः । अस्मत्स्वामिनैव मे कथितम् ।) [27]

रक्षिणौ – जं आणवेदि आउत्ते । (यद् आज्ञापयत्याबुत्तः ।) [28]

प्रथमः – जमवशदिं गदुअ गुडखण्डं च दइअ पडिणिअत्ते । (पुरुषं मुञ्चति) (यमवसतिं गत्वा, गुडखण्डं च दत्त्वा[2] प्रतिनिवृत्तः ।) [29]

पुरुषः – (पुरुषः स्यालं प्रणम्य) भट्टा, तव केलके मे जीविदे । (भर्तः, त्वदीयो मे जीवितः[3] ।) [30]

स्यालः – उत्थेहि । एस भट्टिणा अङ्गुलीअअ-मुल्लसम्मिदो पारितोसको वि दे दाविदो । (उत्तिष्ठ । एष भर्त्राङ्गुलीयकमूल्यसम्मितः पारितोषिकोऽपि ते दापितः ।) [31]

पुरुषः – (सहर्षम् प्रगृह्य) अणुगिहिदो म्हि । (अनुगृहीतोऽस्मि ।) [32]

प्रथमः – तं णाम अणुगिहिदे जं शूलादो अवदालिअ हत्थिकन्धे पडिच्छिदे । (तथा नामानुगृहीतो यच्छूलाद् अवतार्य हस्तिस्कन्धे प्रतिष्ठापितः ।) [33]

द्वितीयः – आउत्त, पालिदोस कधेदि महालह-लअणेण तेण अङ्गुलीअएण भट्टिणो पढमबहुमदेण होदव्वम् । (आबुत्त, पारितोषिकः कथयति महार्घरत्नेन तेनाङ्गुलीयकेन भर्तुः प्रथमबहुमतेन भवितव्यम् ।) [34]

स्यालः – ण अ तस्सिं महालह-लअणं त्ति बहुमाणं भट्टिणो तक्केमि । (न च तस्मिन् महार्घरत्नम् इति बहुमाणं भर्तुः तर्कयामि ।) [35]

उभौ – किं खु । (किं खलु) [36]

स्यालः – तक्केमि तस्स दंसणेण कोवि अहिलइदो जणो भट्टिणा सुमरिदो त्ति, जदो तं [पेक्खिअ] मुहूत्तं पकिदिगम्भीरो वि पय्युस्सुअमनो संवुत्तो । (तर्कयामि तस्य दर्शनेन कोऽप्यभिलषितो जनो भर्त्रा स्मृत इति । यतस्तद् प्रेक्ष्य मुहूर्तं प्रकृतिगम्भीरोऽपि पर्युत्सुकमनास्संवृत्तः ।) [37]

---

[2] का.-पाठ एव यमसदनात्प्रतिनिवर्तनस्य समुपलभ्यतेऽयं हेतुः । स च संग्राह्यः पाठः ।

[3] देव.-पाठ एव "अथ कीदृशो मे आजीव" इति । एतच्चासङ्गतम् ।

द्वितीयः – साधु मन्तिदं णाम आउत्तेण । (साधु मन्त्रितं नामावुत्तेन ।) [38]

प्रथमः – णं भणामि इमश्श कदे मच्छालिआ-शत्तुणो त्ति । (पुरुषं सासूयं[4] पश्यति) (ननु भणाम्यस्य कृते मत्स्यलिका-शत्रोरिति ।) [39]

पुरुषः – भट्टा, इदो अद्धं तुम्हाणं शुमणोमुल्लं होदु । (भर्तः, इतोऽर्धम् युष्माकं सुमनोमूल्यं भवतु ।) [40]

उभौ – इत्तिके जुज्जदि । (एतावत् युज्यते ।) [41]

स्यालः – धीवल, महत्तलए हि सम्पदं पिअवअस्सकोसि मे संवुत्तो । कादम्बिलिसक्खिअं च अम्हाणं पढमसोहिदं इच्छिअदि । ता एहि सुण्डिअसालं गच्छम्ह । (धीवर, महत्तरको हि साम्प्रतं प्रियवयस्यकोऽसि मे संवृत्तः । कादम्बरीसाक्षिकं च अस्माकं प्रथमसौहृदम् इष्यते । तद् एहि शुण्डिकशालां गच्छामः ।) [42]

(इति निष्क्रान्ताः) [43]

॥ **प्रवेशकः** ॥ [44]

॥ ततः प्रविशत्याकाशयानेनाऽक्षमाला ॥ [45]

अक्षमाला – णिव्वत्तिदं मए पय्याअणिव्वटत्तणीअं अच्छरा-तित्थ-सण्णीज्झं । ता जाव इमस्स राएसिणो उदन्तं पच्चक्खीकरेमि । मेणआ-सम्बन्धेण सरीरभूदा मे सउन्तला । ताए अ एतण्णिमित्तं य्येव संदिट्ठपूरव म्हि । (परिक्रम्य पुरस्समन्ताद् अवलोक्य च) किं णु खु उसवंदिणे वि णिरूसवारम्भं विअ राअउलं दीसदि । अध वा, अत्थि मे विभवो पणिधानेन सव्वं जाणिदुं । किं तु सहिए आदरो मे आणिदव्वो । भोदु, इमाणां दाव उज्जाणवलिणं तिरक्करिणीपच्छण्णा पासपरिवत्तिणी भविअ उवालभिस्से । (तथा करोति) । (निर्वर्तितं मया पर्यायनिर्वतनीयम् अप्सरस्तीर्थसान्निध्यम् । तद् यावद् अस्य राजर्षेरुदन्तं प्रत्यक्षीकरोमि । मेनकासम्बन्धेन शरीरभूता मे शकुन्तला । तया चैतन्निमित्तम् एव सन्दिष्टपूर्वास्मि । किं नु खलूत्सवंदिनेऽपि निरुत्सवारम्भमिव राजकुलं दृश्यते । अथ वास्ति मे विभवः प्रणिधानेन सर्वं ज्ञातुम् । किन्तु सख्यादरो म आनीतव्यः । भवतु, एषां तावदुद्यानपालिनीनां तिरस्करिणी-प्रच्छन्ना पार्श्वपरिवर्तिनी भूत्वोपालभिष्ये ।) [46]

(ततः प्रविशति चूताङ्कुरम् अवलोकयन्त्युद्यानपालिका[5]
तस्याश्च पृष्टतोऽपरा) [47]

प्रथमा – कधं उवत्थिदो मधुमासो[6] । [48]

आअम्बहरिअवेण्टं ऊससिअं विअ वसन्तमासस्स ।
दिट्ठं चूअङ्कुरअं छणमङ्गलअं णिअच्छामि[7] ॥ 6 – 2 ॥
आताम्रहरितवृन्तम्[8] उच्छ्वसितमिव वसन्तमासस्य ।

---

[4] एतस्मादेव कारणाद् धीवरः स्वकीयस्य पारितोषिकात् किमपि द्रव्यं रक्षकाय / नागरिकाय प्रददाति ।

[5] का.-पाठेषु सर्वत्र "चेटी"ति प्राप्यते । किन्तु कोकिला मधुमक्षिका चात्रोद्यान-पालिका-रूपेण ते स्त्रीवेश-धारिण्यौ प्रस्ताविते स्यातामिति प्रतीयते, निसर्गप्रधानत्वादस्य नाटकस्य । न स्यातामेते सामान्ये चेट्यौ ।

[6] मैथिल-पाठानुरोधात्स्वीकृतमिदं गद्यवाक्यम् । इत आरभ्य (48 उक्ति-क्रमांकात्) 53 पर्यन्तं पुनर्गठितः पाठ्यांशः प्रायो मैथिलपाठानुसारी दीयते ।

[7] केवलं बं.-पाठे समुपलभ्यते परिशुद्धा पथ्याऽऽर्या, नान्यत्र । अतो बं.-पाठानुरोधादियं प्रदीयते ।

[8] दाक्षिणात्य-पाठेऽत्र "चूतं हर्षितपिककमि"ति नवीनार्या प्रदीयते । (प्रक्षिप्त-श्लोक-संख्या-24)

दृष्टम् चूताङ्कुरं क्षणमङ्गलं पश्यामि ।। 6 – 2 ।। [49]

द्वितीया – (उपसृत्य) हला परहुदिए, किं णेदं एआइणी मन्तेसि । (हले परभृतिके, किम् इदानीम् एकाकिनी मन्त्रयसि ।) [50]

प्रथमा – सहि महुअरिए, चूदकलिअं[9] पेक्खिअ उम्मत्ता परहुदिआ भोदि । तव उण कालो मदविब्भमुग्गीअदाणं । सहि, अवलम्बस्स जाव अग्गपादपडिट्ठापिदा भविअ कामदेवस्स अच्चणं करेमि । (सखि मधुकरिके, चूतकलिकां प्रेक्ष्योन्मत्ता परभृतिका भवति । तव पुनः कालो मदविभ्रमोद्गीतानाम् । सखि, अवलम्बस्व यावद् अग्रपादप्रतिष्ठापिता भूत्वा कामदेवस्यार्चनं करोमि[10] ।) [51]

द्वितीया [11] – जदि ममा वि अद्धं अच्चणअफलस्स । (यदि ममाप्यर्धम् अर्चनकफलस्य ।) [52]

प्रथमा [12] – हला, अभणीदे पि एदं भोदि । जदो एक्कम् येव णो दुधात्थिदं सरीरम् । (हले अभणितेऽप्येतद् भवति, यत एकम् एव नो द्विधास्थितं शरीरम् ।) [53]

(सख्यावलम्बितं कृत्वा[13] चूतभङ्गं नाटयति) [54]

अम्महे, चूदपसवो एसो बन्धणभङ्गसुरहि वादि । (कपोतकं कृत्वा) णमो भअवदे मअरद्धजाअ । (अहो[14], चूतप्रसव एष बन्धनभङ्ग-सुरभिर्वाति । नमो भगवते मकरध्वजाय ।) [55]

अरिहसि मे चूअङ्कुर दिण्णो कामस्स गहिअधनुअस्स ।
सण्ठविअ-जुवइ-लक्खो पच्छपच्छाखदिदो सरो होदुं ।। **6 -3** ।।
(अर्हसि मे चूताङ्कुर दत्तः कामस्य गृहीतधनो- ।
स्संस्थापितयुवतिलक्षः पश्चात् प्रतिस्खलितश्शरो भवितुम् ।। **6 -3** ।।) [56]

(चूताङ्कुरं क्षिपति) [57]

कञ्चुकी – (प्रविश्य रुषितः कञ्चुकी) मा तावद् अनात्मज्ञे, देवेनाप्रमुखत एव प्रतिषिद्धे वसन्तोत्सवे त्वमत्र मञ्जरीभङ्गम् आरभसे । [58]

उभे – (भीते) पसीददु अय्यो । अगहीदत्था खु अम्हे । (प्रसीदत्वार्यः । अगृहीतार्थाः खलु वयम्[15] ।)[59]

कञ्चुकी – भवतु, पुनर्न एवम् वर्तितव्यम् । [60]

उभे – अय्य, कोदूहल्लं जं इमिणा जणेण सोदव्वं ता कधेदु, अय्यो किं णिमित्तं भट्टिणा वसन्तकोमुदी पडिसिद्ध त्ति । (आर्य, कौतुहल्यं यद् अनेन जनेन श्रोतव्यं तत् कथयत्वार्यः किं निमित्तं भर्त्रा वसन्तकौमुदी प्रतिषिद्धेति ।) [61]

अक्षमाला –ऊसवपिआ राआणो । एत्थ गुरुणा कारणेण होदव्वं । (उत्सवप्रिया राजानः । अत्र गुरुणा

---

9 का.-मै.-बं.-पाठेषु "चूदलतिअं=चूतलतिकामि"ति प्राप्यते । किन्तु आम्रमञ्जरी चूतलतिकेति पदवाच्या न भवति । अतो दाक्षि.-देव.-पाठानुरोधादत्र "चूदकलिअं=चूतकलिकामि"ति स्वीकृतम् ।

10 परभृतिकामवलम्ब्य मधुकरिकावतिष्ठेदित्येव तर्कसंगतं प्रतिभाति । अत्र मैथिल-पाठ एव श्रद्धेयः प्रतीयते ।

11 का.-बं.-दाक्षि.-देव.-पाठेषूक्तिरियं प्रथमाया मुखे वर्तते । तादृशी योजना तु न समीचीना प्रतिभाति ।

12 का.-बं.-दाक्षि.-देव.-पाठेषूक्तिरियं द्वितीयाया मुखे वर्तते । तादृशी योजना तु न समीचीना प्रतिभाति ।

13 मैथिल-पाठे " सख्यवलम्बितकेन नाट्येने " ति ।, बंगीय-पाठे " सख्यामि " ति सप्तमी ।

14 इतः परम् "अप्रतिबुद्धोऽपी"ति शब्दः प्रक्षिप्तः प्रतिभाति । अतश्च निष्कासितः ।

15 का.-मै.-बं.-दाक्षि.-देव.-पाठेष्वितः परं "चूतानां चिरनिर्गतापि कलिका0" इति श्लोकः प्राप्यते । किन्तु 57 87, एवं 89 इत्युक्ति-क्रमांकेषु पूर्वापरविरोधादयं प्रक्षिप्त एवेति सिध्यति । (प्रक्षिप्त-श्लोक-संख्या-25)

कारणेन भवितव्यम् ।) [62]

कञ्चुकी – बहुलीभूतम् एतत् । तत् किं न कथ्यते । अस्ति भवत्योः कर्णपथम् आयातं शकुन्तलाप्रत्यादेश-कौलीनम् । [63]

उभे – अय्य, सुदं रट्ठिअमुहादो जाव अङ्गुलीअअदंसणं । (आर्य, श्रुतं राष्ट्रियमुखाद् यावद् अङ्गुलीयकदर्शनम् ।) [64]

कञ्चुकी – तेन हि स्वल्पं कथयितव्यम् । यदा खलु स्वाङ्गुलीयकदर्शनाद् अनुस्मृतं देवेन सत्यम् ऊढपूर्वा मया रहसि तत्रभवती शकुन्तला । मोहात् प्रत्यादिष्टेति, तदा प्रभृत्येव पश्चात्तापपरिगतो देवः । [65] कुतः –

रम्यं द्वेष्टि यथासुखं प्रकृतिभि र्न प्रत्यहं सेव्यते
शय्योपान्तविवर्तनैर्विगमयत्युन्निद्र एव क्षपाः ।
दाक्षिण्येन ददाति वाचम् उचिताम् अन्तःपुरेभ्यो यदा
गोत्रेषु स्खलितं तदा भवति च व्रीडा-विलक्ष्यश्चिरम् ॥ **6 – 4** ॥ [66]

अक्षमाला – पिअं मे । (प्रियं मे ।) [67]

कञ्चुकी – प्रभवतो वैमनस्याद् उत्सवप्रतिषेध इति । [68]

प्रथमा – जुज्जदि । (युज्यते) [69]

(**नेपथ्ये**) [70]

एदु एदु भवं । (एतु एतु भवान् ।) [71]

कञ्चुकी – (कर्णं दत्त्वा) अयं इत एवाभिवर्तते देवः । तत्स्वकर्मानुष्ठीयताम् । (इति निष्क्रान्ते चेटिके) [72]

(ततः प्रविशतः पश्चात्तापसदृशवेषो राजा विदूषकः प्रतीहारी च) [73]

कञ्चुकी – (राजानम् अवलोक्य) अहो सर्वास्ववस्थासु रमणीयत्वम् एवाकृतिविशेषाणाम् । समुत्सुकोऽपि शकुन्तलां प्रति प्रियदर्शनो देवः । [74] , यः एषः –

प्रत्यादिष्टविशेषमण्डनविधिर्वामप्रकोष्ठे श्लथं
बिभ्रत् काञ्चनम् एकमेव वलयं श्वासोपरक्ताधरः ।
चिन्ताजागरणप्रतान्तनयनस्तेजोगुणाद् आत्मनः
संस्कारोल्लिखितो महामणिरिव क्षीणोऽपि नालक्ष्यते ॥ **6 – 5** ॥ [75]

अक्षमाला – थाणे खु पञ्चादेसविमाणिदा वि सउन्तला जं इमस्स किदे किल तम्मदि । (स्थाने खलु प्रत्यादेश-विमानितापि शकुन्तला यदस्य कृते किल ताम्यति ।) [76]

प्रतीहारी – एदु एदु महाराओ । (एतु एतु महाराजः ।) [77]

राजा – (ध्यानमन्दं परिक्रम्य) [78]

प्रथमं सारङ्गाक्ष्या प्रियया
प्रतिबोध्यमानमपि सुप्तम् ।
अनुशयदुःखायेदं हत-
हृदयं सम्प्रति विबुद्धम् ॥ **6 – 6** ॥[79]

अक्षमाला – ईदिसाइं से तवस्सिणीए भागधेआइं । (ईदृशान्यस्यास्तपस्विन्या भागधेयानि ।) [80]

विदूषकः – (अपवार्य) लङ्घिदो एसो भूओ सउन्तलावादेण । ण आणे कधं किच्छिदव्वो भविस्सदि । (लङ्घित एष भूयः शकुन्तलावातेन । न जाने कथं चिकित्सितव्यो भविष्यति ।) [81]

कञ्चुकी – (उपगम्य) जयतु जयतु देवो महाराजः । मया तावद् राज्ञः प्रत्यवेक्षिताः प्रमदवनभूमयः यथाकामम् अध्यास्ताम् विनोदस्थानानि देवः । [82]

राजा – (प्रतीहारीं प्रति) वसुमति, मद्वचनाद् अमात्यपिशुनं ब्रूहि । चिरप्रबोधान्न सम्भावितम् अस्माभिरद्य धर्मासनमध्यासितुम् । यत् प्रत्यवेक्षितमार्येण पौरकार्यं तत् पत्रकमारोप्य दीयतामिति । [83]

प्रतीहारी – जं देवो आणवेदि । (यद् देव आज्ञापयति ।) (इति निष्क्रान्ता) [84]

राजा – पार्वतायन, त्वमपि स्वनियोगम् अशून्यं कुरु । [85]

कञ्चुकी – तथा । (इति निष्क्रान्तः) [86]

विदूषकः – किदं भवदा णिम्मक्खिअं । सम्पदं सिसिरविच्छेदे रमणीए इमस्सिं पमदवणे सुहं विहरिस्सामो । (कृतं भवता निर्मक्षिकम् । साम्प्रतं शिशिरविच्छेदे रमणीयेऽस्मिन् प्रमदवने सुखं विहरिष्यामः ।) [87]

राजा – वयस्य, यदुच्यते रन्ध्रोपरिपातिनोऽनर्था इति, तद् अव्यभिचारि[16] । पश्य, [88]

मुनिसुताप्रणयस्मृतिरोधिना
मम च मुक्तमिदं तमसा मनः ।
मनसिजेन सखे, प्रहरिष्यता
धनुषि चूतशरश्च निवेशितः ।। 6 – 7 ।। [89]

विदूषकः – दिट्ठ जाव । इमं दण्डअं चूदमम्मधए पाडए । (तिष्ठ यावत् । इमं दण्डकं चूतमन्मथके पातये[17] ।) [90]

राजा – (सस्मितम्) भवतु, दृष्टं ब्रह्मवर्चसम् । सखे, अत्रोपविष्टः प्रियायाः किंचिद् अनु{प}कारिणीषु लतासु दृष्टिं विलोभयामि । [91]

विदूषकः – णं खु भअदा मेधाविणी लिविकरी सन्दिट्ठा । माहवीमण्डवे इमं खणं पडिवालइस्सं । तहिं मे चित्तफलए सुहत्थलिहिदं तत्थभोदीए सउन्तलाए पडिकिदिं आणेहि त्ति । (ननु खलु भवता मेधाविनी लिपिकरी सन्दिष्टा, माधवीमण्डप इमं क्षणं प्रतिपालयिष्यामि । तत्र मे चित्रफलके स्वहस्तलिखितं तत्रभवत्याः शकुन्तलायाः प्रतिकृतिम् आनयेति ।) [92]

राजा – ईदृशं मे हृदयसंस्थानम् । तत् तम् एवादेशय माधवीमण्डपम् ।[93]

विदूषकः – एदु भवं । (परिक्रामतः) (एतु भवान् ।) [94]

(अक्षमालाऽनुगच्छति) [95]

विदूषकः – (विलोक्य) एसो मणिसिलापट्टकसणाहो माहवीमण्डवको विवित्तदाए णिसद्दं सागदेण विअ पडिच्छदि पिअवअस्सं । उववसिम्ह । णिसीददु भवं । (उभौ प्रविश्योपविष्टौ) (एष मणिशिलापट्टकसनाथो माधवीमण्डपको विविक्ततया निश्शब्दं स्वागतेनेव प्रतिच्छति प्रियवयस्यम् । उपविशामः । निषीदतु भवान् ।) [96]

अक्षमाला – (लतामाश्रित्य स्थिता[18]) [97]

राजा – (स्मरणमभिनीय) सखे माधव्य, सर्वम् इदं स्मरामि शकुन्तलायाः प्रथमदर्शनवृत्तान्ते, यत् कथितवान् अस्मि भवते, स भवान् प्रत्यादेशदिवसे मत्समीपगो नासीत् । प्रथमममपि न त्वया कदाचित् संकथासु तत्रभवत्याः कीर्तितं नाम । न खलु अहमिव मिथस्संविदं स्मृतोऽसि । [98]

विदूषकः – ण विसुमरामि । किं तु सव्वं कहिअ तए [य्ये]व वुत्तं । परिहासविअप्पो एसो, ण भूदत्थो त्ति ।

---

[16] इतः परं "उपहितस्मृतिरङ्गुलीमुद्रया0" इति श्लोकः प्राप्यते, स च प्रक्षिप्तः । (प्रक्षिप्त-श्लोक-संख्या-26)
[17] विदूषकस्यानयैवोक्त्या सह पूर्वोक्तश्लोकस्यान्तिमचरणस्य सम्बन्धो वर्तते । न तूपहितस्मृतिरिति श्लोकस्य ।
[18] मैथिल-पाठे "लतासंस्थिता भूत्वा प्रेक्षिष्ये तावत् सख्याः प्रतिकृतिमि" त्यादिभिर्वचनैः स्वस्यागमनस्य प्रयोजनं विनिवेद्यते ।, बंगीय-पाठेऽपि तादृशं वाक्यं श्रूयते ।, काश्मीर-पाठे संक्षेपीकरणस्याशयो दृश्यते ।

रहस्सभेदभीरुणा मए वि मिप्पिण्ड-मन्द-बुद्धिणा तधा येव गिहिदम् । अवि अ, भविदव्वदा बलवदी । (न विस्मरामि । किन्तु सर्वं कथयित्वा त्वयैव उक्तम् । परिहासविकल्प एष, न भूतार्थ इति । रहस्यभेदभीरुणा मयापि मृत्पिण्डमन्दबुद्धिना तथैव गृहीतम् । अपि च, भवितव्यता बलवती ।) [99]

अक्षमाला –एवं णेदं । (एवमेतत् ।) [100]

राजा – (ध्यात्वा) सखे, परित्रायस्व माम्, परित्रायस्व माम् । [101]

विदूषकः – किं णेदं । ईदिसं उवणदं । कदा उण सप्पुरिषा सोअबद्धधिय्या होन्ति । णं पवादेण वि गिरिओ णिप्पकम्पा । (किम् एतत् । ईदृशम् उपनतम् । कदा पुनस्सत्पुरुषाः शोकबद्धधैर्या भवन्ति । ननु प्रवातेनाऽपि गिरयो निष्प्रकम्पाः ।) [102]

राजा – वयस्य, निराकरणविप्लवायाः प्रियायास्समवस्थाम् अनुस्मृत्य बलवद् अस्वस्थोऽस्मि । [103] सा मया,

ततः प्रत्यादिष्टा स्वजनमनुगन्तुं व्यवसिता
स्थिता तिष्ठेत्युच्चैर्वदति गुरुशिष्ये गुरुसमे ।
पुनर्दृष्टिं बाष्पप्रसरकलुषाम् अर्पितवती
मयि क्रूरे यत् तत् सविषमिव शल्यं दहति माम् ।। **6 – 8** ।। [104]

अक्षमाला – अम्महे, ईदिसी कट्ठावत्था । इमस्स सन्तावेण अहं रमे । (अहो ईदृशी कष्टावस्था । अस्य सन्तापेनाहं रमे ।) [105]

विदूषकः – अत्थि देव तक्को । केण तत्थभोदी आकासगामिणा अवहित त्ति । (अस्ति देव तर्कः । केन तत्रभवत्याऽकाशगामिनाऽपहृतेति ।) [106]

राजा – क इव देवताभ्योऽन्यः सम्भाव्यते । मेनका किल सख्यास्ते जन्मप्रतिष्ठेति श्रुतवान् अस्मि । तत्सखीभिस्ताम् [हृताम् इति] एव हृदयम् आशङ्कते । [107]

अक्षमाला – अम्मो, मोहो खु एसो रमणीओ, उण पडिबोहो ।
(अहो मोहः खल्वेष रमणीयः, पुनः प्रतिबोधः ।) [108]

विदूषकः – जदि एवं ता अत्थि खु समागमो वि कालेन तत्थभवदीए ।
(यद्येवं तदस्ति खलु समागमोऽपि कालेन तत्रभवत्या ।) [109]

राजा – कथमिव । [110]

विदूषकः – ण खु मादापिदरो भत्तुविरहिदं दुहिदरं चिरं पेक्खिदुं पारेदि ।
(न खलु मातापितरौ भर्तृविरहितां दुहितरं चिरं प्रेक्षितुं पारयेते ।) [111]

राजा – वयस्य,

स्वप्नो नु माया नु मतिभ्रमो वा
क्लिष्टं नु तावत् फलमेव पुण्यम् ।
आसन्नवृत्तेस्तद् अतीतम् एष,
मनोरथानाम् अतटप्रपातः ।। **6 – 9** ।। [112]

विदूषकः – भो, मा एवं भण । णं खु अङ्गुलीअअं येव णिदरसणं । एवं येव संभाविणो चिन्तणीया समागमा होन्ति । (भोः मैवं भण । ननु खल्वङ्गुलीयकम् एव निदर्शनम् । एवमेव संभाविनोऽ-चिन्तनीयास्समागमा भवन्ति ।) [113]

राजा – (अङ्गुलीयं विलोक्य) अये, इदं तद् असुलभस्थानभ्रंशि शोचनीयम् । [114]

तव सुचरितम् अङ्गुलीय नूनं
प्रतनु ममेव विभज्यते फलेन ।

अरुणनखमनोहरासु तस्याश्च्युतमसि
लब्धपदं यद् अङ्गुलीषु ।। **6 – 10** ।।[115]

अक्षमाला – (आत्मगतम्) सहि, दूरे वत्तसे । एआइणि दाव कण्णसुहं अनुभवामि ।
(सखि, दूरे वर्तस, एकाकिनी तावत् कर्णसुखमनुभवामि ।) [116]

विदूषकः – भो वअस्स, इदं अङ्गुलीअअं केण उग्घादेण तत्थभोदिए हत्थसंसग्गं पाविदं ।
(भो वयस्य, इदम् अङ्गुलीयकं केनोद्घातेन तत्रभवत्या हस्तसंसर्गम् प्रापितम् ।) [117]

राजा – श्रूयताम् । यदा तपोवनात् स्वनगरगमनाय प्रस्थितं मां प्रिया सबाष्पमिदम् आह, कियच्चिरेणार्यपुत्रोऽस्माकं संस्मरिष्यतीति ।[118]

विदूषकः – तदो तदो । (ततः ततः ।) [119]

राजा – पश्चाद् इमां नाममुद्रां तदङ्गुलौ निवेशयता मया प्रत्यभिहितम् । [120]

एकैकमत्र दिवसे दिवसे मदीयं
नामाक्षरं गणय, गच्छसि यावदन्तम् ।
तावत् प्रिये, मदवरोधगृहप्रवेशी
नेता जनस्तव समीपमुपेष्यतीति ।। **6 – 11** ।। [121]

तच्च मोहात्तथा दारुणम् अनुष्ठितम् ।[122]

अक्षमाला – रमणीओ दे विहिणा दंसिदो मग्गो । (रमणीयस्ते विधिना दर्शितो मार्गः ।) [123]

विदूषकः – अध कधं दासीए पुत्तस्स रोहिदमच्छस्स बलिसं विअ एदं अंगुलीअअं मुहे पविट्ठम् ।
(अथ कथं दास्याः पुत्रस्य रोहितमत्स्यस्य बडीशम् इवैतद् अंगुलीयकं मुखे प्रविष्टम् ।) [124]

राजा – शचीतीर्थसलिलं किल वन्दमानायास्ते सख्या गङ्गास्रोतसि परिभ्रष्टम् । भवतु, उपालप्स्ये तावदेतत् । [125]

कथं नु तं बन्धुरकोमलाङ्गुलिं
करं विहायासि निमग्नमम्भसि ।

अथ वा –

अचेतनं नाम गुणान् न लक्षयेन्
मयैव कस्माद् अवधीरिता प्रिया ।। **6 – 12** ।।[126]

अक्षमाला – पुव्वावरविरोधी एसो वुत्तन्तो वट्टदि । (पूर्वापरविरोध्येष वृत्तान्तो वर्तते ।) [127]

राजा – अकारणपरित्यक्ता कदा नु प्रेक्षणीया भविष्यति । [128]

(ततः प्रविशति फलकहस्ता लिपिकरी) [129]

लिपिकरी – (समन्ताद् अवलोक्य) एसो खु भट्टा जाव णं उपसप्पामि । (उपसृत्य) जअदु जअदु भट्टा । इअं चित्तगदा भट्टिणी । (एषः खलु भर्ता, यावद् एनम् उपसर्पामि । जयतु जयतु भर्ता । इयं चित्रगता भर्त्री ।) [130]

(चित्रफलकं दर्शयति[19]) [131]

विदूषकः – (विलोक्य) हे हे भो, सभावमहुरा आकीदि खु । साहु वअस्स साहु । किं बहुणा । सन्तानुप्पवेस संकाए आलवणकुदूहलं मं जणअदि । (हे हे भोः, स-भावमधुरा आकृतिः खलु । साधु वयस्य साधु । किं बहुना । स्वान्तानुप्रवेशशङ्कयालपनकुतूहलं मां जनयति ।) [132]

अक्षमाला – अहो वअस्सस्स वत्तिकारेहाए णिउणदा । जाणे सही अग्गदो मे तिट्ठदि । (अहो वयस्यस्य

[19] मै.-पाठ इतः परं राजा भणति यदहो रूपमस्यालेख्यस्य । तथा हि- "दीर्घापाङ्गविसारि नेत्रयुगलम्0" इत्यादि । स च श्लोकः प्रक्षिप्तः । विप्रलब्धावस्थायां स्वकीयस्य चित्रालेखनस्य प्रशंसानर्हत्वात् । (प्रक्षिप्त-श्लोक-संख्या-27), ततश्च "अस्यास्तुङ्गमिव स्तनद्वयं0" इत्यपि श्लोकः प्रक्षिप्तः । (प्रक्षिप्त-श्लोक-संख्या-28)

वर्तिकारेखाया निपुणता । जाने सख्यग्रतो मे तिष्ठति[20] ।) [133]

राजा – (निःश्वस्य)

साक्षात् प्रियाम् उपगताम् अपहाय पूर्वं
चित्रार्पितामहमिमां बहु मन्यमानः ।
स्रोतोवहां बहुनिकामजलाम् अतीत्य
जातोऽस्मि रे प्रणयवान् मृगतृष्णिकायाम् ।। **6 – 13** ।। [134]

अक्षमाला – अअं य्येव सव्वं पडिवण्णो जम्हि वत्तुकामा । (अयमेव सर्वं प्रतिपन्नो यद् अस्मि वक्तुकामा ।) [135]

विदूषकः – (निर्वर्ण्य) भो तिण्हो अत्थभोदीए(ओ) दीसन्ति । सव्वाओ दंसणीआ । कदमा इत्थ दीसदे सउन्तला । (भोः तिस्रोऽत्रभवत्यो दृश्यन्ते । सर्वा दर्शनीयाः । कतमा इह दृश्यते शकुन्तला ।) [136]

अक्षमाला – मोहदक्खो तवस्सी । अवस्सं ण से पच्चक्खा सही । (मोहदक्षस्तपस्वी । अवश्यं नास्य प्रत्यक्षा सखी ।) [137]

राजा – त्वं तावत् कतमां तर्कयसि । [138]

विदूषकः – (चिरं विलोक्य) तक्केमि जा एसा अवसेअसिणिद्ध पल्लवं असोअलदिअं संसिदा सिहिलकेस-बन्धोव्वमन्तकुसुमेण बद्धसेअबिन्दुणा वदणकेण विसेस-णमिद-सा[हा]हिं बाहुलदाहिं ऊससिद-णीविणा वसणेण ईसि परिसन्ता विअ आलिहिदा एसा अत्थभोदी सउन्तला । इदराओ सहीओ । (तर्कयामि यैषावसेकस्निग्धपल्लवाम् अशोकलतिकाम् संश्रिताशिथिलकेश-बन्धोद्वमत् कुसुमेन बद्धस्वेदबिन्दुना वदनकेन विशेष-नमित-शाखाभ्यां बाहुलताभ्यामुच्छ्वसित-नीविना वसनेनेषत्-परिश्रान्तेवालिखितैषात्रभवती शकुन्तला । इतरे सख्यौ ।) [139]

राजा – निपुणो भवान् । अस्त्यत्र मे भावचिह्नम् । [140]

स्विन्नाङ्गुलीनिवेशो रेखाप्रान्तेषु दृश्यते मलिनः ।
अश्रु च कपोलपतितं लक्ष्यमिदं वर्तिकोच्छ्वासात् ।। **6 – 14** ।।[141]

मेधाविनि, अवलिखितम् एतद् विनोदनम् अस्माभिस्तद् गच्छ, वर्तिकास्तावद् आनय । [142]

लिपिकरी – अय्य माधव, अवलम्भ चित्तफलअं जाव गच्छामि । (इति विदूषकाय दत्त्वा निष्क्रान्ता) (आर्य माधव्य, अवलम्बस्व चित्रफलकं, यावद् गच्छामि ।) [143]

विदूषकः – किं अवरं इत्थ अभिलिहिदव्वं । (किमपरम् इहाभिलिखितव्यम् ।) [144]

अक्षमाला – असंसअं, जो जो सहीए मे अभिरुइदो पदेसो तं आलिहिदुकामो भविस्सदि त्ति तक्केमि । (असंशयम् । यो यस्सख्या मेऽभिरुचितः प्रदेशस्तं तम् आलिखितुकामो भविष्यतीति तर्कयामि ।) [145]

राजा – माधव्य, श्रूयताम् –

कार्या सैकतलीनहंसमिथुना स्रोतोवहा मालिनी
पादान्ते निभृतं निषण्णचमरो गौरीगुरोः पावने ।
शाखालम्बितवल्कलस्य च तरोर्निर्मातुमिच्छाम्यधः
शृङ्गे कृष्णमृगस्य वामनयनं कण्डूयमानां[21] मृगीम् ।। **6 – 15** ।। [146]

विदूषकः – (आत्मगतम्) तधा तक्केमि पूरिदमणेण चित्तफलअं कुच्चालआणं तवसाणं त्ति । (तथा तर्कयामि

---

[20] मै.-पाठ इतः परं "यद्यत् साधु न चित्रेऽस्मिन् क्रियते तत्तदन्यथा0" इति क्षेपकः ।(प्रक्षिप्त-श्लोक-संख्या-29)

[21] तृतीयांके यदा शकुन्तलाया नेत्रं कर्णोत्पलरेणुना कलुषितं भवति, तदा दुःषन्तेन तस्य प्रमार्जनं वदनमारुतेन कृतमिति प्रसंगस्य / दृश्यविशेषस्य स्मारणं समर्थनञ्चानेन श्लोकेन भवति ।

पूरितमनेन चित्रफलकं कूर्चालकानां तापसानाम् इति ।) [147]

राजा – माधव्य, अन्यच्च शकुन्तलायाः प्रसाधनम् अभिप्रीतम् अत्र विस्मृतम् अस्माभिः । [148]

विदूषकः – किं विअ । (किमिव ।) [149]

अक्षमाला – वणवासस्स तस्सा अ सोअमल्लस्स जं अणुसदिसं भविस्सदि त्ति । (वनवासस्य तस्याश्च सौकुमार्यस्य यद् अनुसदृशं भविष्यतीति ।) [150]

राजा –

कृतं न कर्णार्पितबन्धनं सखे
शिरीषमागण्डविलम्बिकेसरम् ।
न वा शरच्चन्द्रमरीचिकोमलं
मृणालसूत्रं रचितं स्तनान्तरे ।। **6 – 16** ।। [151]

विदूषकः – किं णु अत्थभोदी रत्तकुवलअसोहिणा अग्गहत्थेण मुहं ओवारिअ चकिदचकिदा विअ ट्ठिदा । (किं नु अत्रभवती रक्तकुवलयशोभिनाग्रहस्तेन मुखमपवार्य चकितचकितेव स्थिता ।) (दृष्ट्वा) [157] हे हे भो, एसो दासीए पुत्तो कुसुमपाडच्चरो महुअरो अत्थभोदीए वअणकमलं अभिलसदि । (हे हे भोः, एष दास्याः पुत्रः कुसुमपाटच्चरो मधुकरोऽत्रभवत्या वदनकमलम् अभिलषति ।) [152]

राजा – ननु निवार्यताम् एष धृष्टः । [153]

विदूषकः – भवं य्येव अविणीदाणुसासी वारणे पभवदि । (भवान् एवाविनीतानुशासी वारणे प्रभवति ।) [154]

राजा – युज्यते । अयि भोः, कुसुमलताप्रियातिथे ! किं इतः परिपतनखेदम् अनुभवसि । [155]

एषा कुसुमनिषण्णा तृषितापि सती भवन्तम् अनुरक्ता ।
प्रतिपालयति मधुकरी न खलु मधु त्वया विना पिबति ।। **6 – 17** ।। [156]

अक्षमाला – अभिजादं खु वारिदो । (अभिजातं खलु वारितः ।) [157]

विदूषकः – पडिसिद्धवामा एसा जादी । (प्रतिषिद्धवामैषा जातिः ।) [158]

राजा – एवं भोः, न मे शासने तिष्ठसि । श्रूयताम् तर्हि सम्प्रति । [159]

अक्लिष्टबालतरुपल्लवलोभनीयं,
पीतं मया सदयमेव रतोत्सवेषु ।
बिम्बाधरं दशसि चेद् भ्रमर प्रियाया-
स्त्वां कारयामि कमलोदरबन्धनस्थम् ।। **6 – 18** ।। [160]

विदूषकः – एवं तिक्खदण्डस्स कधं ते ण भाईस्सदि । (प्रहस्य) एस(सो) उम्मत्तको खु । अहं पि ईदिसस्स संसग्गेण ईदिसवण्णो विअ संवुत्तो । (एवं तीक्ष्णदण्डस्य कथं ते न भेष्यति । एष उन्मत्तकः खलु । अहमपीदृशस्य संसर्गेण ईदृशवर्ण इव संवृत्तः ।) [161]

अक्षमाला – ममा वि अत्तणो अनन्तरं गुणेहि जा अहं दाणिं पडिबुद्धा । (ममाप्यात्मनोऽनन्तरं गणय याहमिदानीं प्रतिबुद्धा ।) [162]

राजा – प्रिये, स्थितोऽहम् एतावति । [163]

अक्षमाला – अहो धीरे वि जणे रसो पदं करेदि । (अहो धीरेऽपि जने रसः पदं करोति ।) [164]

विदूषकः – भो चित्तम् खु एदम् । (भोः चित्रम् खलु एतत् ।) [165]

राजा – (सविषादम्) वयस्य, किमिदम् अनुष्ठितम् पौरोभाग्यम् । [166]

दर्शनसुखम् अनुभवत-
स्साक्षाद् इव तन्मयेन हृदयेन ।
स्मृतिकारिणा त्वया मे
पुनरपि चित्रीकृता कान्ता ।। **6 – 19** ।। (रोदिति) [167]

अक्षमाला – वअस्स, सुमरिदं तए पच्चादेसविमाणणं सउन्तलाए सहीए, दिट्ठं खु पच्चक्खं अम्हेहिं । (वयस्य, स्मृतं त्वया प्रत्यादेशविमाननं शकुन्तलायाः सख्याः, दृष्टं खलु प्रत्यक्षम् अस्माभिः ।) [168]

लिपिकरी – (प्रविश्य लिपिकरी) भट्टा, देवीए कुलप्पभाए परिजणेण अन्तरा अवच्छिण्णो दे वत्तिका-करण्डओ । (भर्तः, देव्याः कुलप्रभायाः परिजनेन[22] अन्तरावच्छिन्नस्ते वर्तिकाकरण्डकः ।) [169]

राजा – भवतु, वयमप्यक्षमास्सम्प्रति वर्तिकाकर्मणि । [170]

अक्षमाला – बहुमाणा असे कुलप्पभा । अह वा, ण एदम् किं चि । विपञ्चीए खु असण्णिधाने एकतन्तुरपि अग्घदि । (बहुमान्याऽस्याः कुलप्रभा[23] । अथ वा, नैतत् किञ्चित् । विपञ्च्याः खल्वसंनिधान एकतन्तु[24]रप्यर्घति ।) [171]

राजा – वयस्य, पश्य, कथम् अविश्रामदुःखम् अनुभवामः । [172]

प्रजागरात् खिलीभूतस्तस्याः स्वप्नसमागमः ।
बाष्पोऽपि न ददात्येनाम् द्रष्टुं चित्रगतामपि ।। **6 – 20** ।। [173]

लिपिकरी – भट्टा, इदं पि दाणिं चित्तपडिकिदं पिङ्गलिआमिस्सीओ अवहट्टिदं यदन्ति (जं अत्थि) । (भर्तः, इदमप्यिदानीं चित्रप्रतिकृतं पिङ्गलिकामिश्राभिः अवघट्टितं यदस्ति ।) [174]

विदूषकः – छिण्णा दाणिं से आसा । (छिन्ना इदानीम् अस्य आशा ।) [175]

राजा – हुं । (स्तनान्तरे हस्तं निक्षिपति) [176]

।। नेपथ्ये ।। [177]

जअदु जअदु भट्टिणी । (जयतु जयतु भर्त्री ।) [178]

विदूषकः – (कर्णं दत्त्वा) अवेध भो, मेधाविणिं मिगीं विअ अनुसरन्ती उवत्थिदा अन्तेउरव्वग्गी पिङ्गलिआ । (अपेत भोः, मेधाविनीं मृगीम् इवानुसरन्त्युपस्थितान्तःपुर-व्याघ्री पिङ्गलिका[25] ।) [179]

राजा – वयस्य, इमाम् रक्षेमाम् प्रियाप्रतिकृतिम् । [180]

विदूषकः – अत्ताणअं त्ति भणाहि । (आत्मानमिति भण ।) [181]

अक्षमाला – सहि एसा पदिकिदी वि दे पडिवक्खस्स अलङ्घणीआ करीअदि । (सखि, एषा प्रतिकृतिरपि ते प्रतिपक्षस्यालङ्घनीया क्रियते ।) [182]

विदूषकः – (फलकमादाय) एसो णं तहिं गोएमि जत्थ पारावदिं वज्जिअ अवरो ण पेक्खदि । (द्रुतपदं निष्क्रान्तः) (एष एनं तत्र गोपयामि यत्र पारावतीं वर्जयित्वाऽपरो न प्रेक्षते[26] ।) [183]

(प्रविश्य पत्रहस्ता प्रतीहारी) [184]

---

[22] मै.-पाठेषु राज्ञः पूर्वपरिणीता राज्ञी वसुमत्येव वर्तिकाकरण्डकमाच्छिनत्ति । केवलं काश्मीर-पाठे नास्ति तादृशमालेखनम्, तदवधेयम् । मैथिल-पाठादेव समारब्धः पूर्वपरिणीतायाः संघर्षः । ततश्चान्यैः पाठैस्तस्या-ऽनुसरणं कृतम् ।

[23] मै.-पाठ एव राज्ञो मुखादुच्यते "वयस्य, उपस्थिता देवी बहुमानगर्वितेति । का.-पाठे नास्ति तादृशं वचः ।

[24] केवलं का.-पाठे समुपलभ्यमानेयमुपमा ध्यानार्हा । दुःषन्तस्य कृते शकुन्तला तु विपञ्ची वीणेवाभिमता, तस्याश्चाभाव एवेयमं कुलप्रभा केवलमेकतन्तुवाद्यस्वरूपा वर्तते । अनया चोपमया शकुन्तलाविषयकप्रणय-स्यापूर्वत्वं संसूच्यते, प्रमाणीक्रियते च तदक्षमालयेत्यपि ध्यानार्हम् ।।

[25] का.-पाठे राज्ञ्यः दासी पिङ्गलिकैवान्तःपुरव्याघ्रीरूपेणोल्लिखिता । तदनन्तरं मै.-पाठेषु विदूषकमुखात् सा वसुमत्येवान्तःपुरव्याघ्रीरूपेणोल्लिख्यते ।

[26] मै.-पाठे विदूषकस्य मुखे "यदि भवान् अन्तःपुरकूटपाशान्मोक्ष्यसे, तदा मां मेघप्रतिछन्नप्रासादे शब्दापये" त्यधिकं निरूप्यते । का.-पाठे नास्ति कुत्राप्यन्तःपुरकूटपाशः, अन्तःपुरवागुरा, अन्तःपुरकलहेत्यादि । अतो मैथिल-पाठादेव विविधैः प्रक्षेपैः समारभ्यते पूर्वपरिणीतानां पत्नीनां संघर्ष इति सुतरां सिध्यति ।

जअदु जअदु देवो । (जयतु जयतु देवः) [185]

राजा – वसुमति, न खलु देव्यागता । [186]

प्रतीहारी – भट्टा, पत्तकहस्तं मं पेक्खिअ पडिणिवुत्ता । (भर्तः, पत्रकहस्तां मां प्रेक्ष्य प्रतिनिवृत्ता ।) [187]

राजा – कालज्ञा कार्योपरोधं मे परिहरति । [188]

प्रतीहारी – देव, अमच्चो विण्णवेदि । अत्थजादस्स गणणाबहुलदाए एक्कं येव पूरकय्यं अवेक्खिदं । तं देवो सोढुं अरिहदि । (देव, अमात्यो विज्ञापयति । अर्थजातस्य गणनाबहुलतयैकमेव पौरकार्यम् अपेक्षितम् । तद् देवस्सोढुम् अर्हति ।) [189]

राजा – मेधाविनि, वाच्यताम् । [190]

लिपिकरी – जं भट्टा आणवेदि । (यद् भर्ता आज्ञापयति ।) (पत्रकं प्रसार्य वाचयति) "विदितम् अस्तु देवपादानां, यथा धनवृद्ध इति यथार्थनामा वणिग् वारिपथोपजिवी नौ-व्यसने विपन्नः । स चानपत्यः । तस्य कोटिशतसंख्यातं वसु । तदिदानीं राजार्थमापद्यते । श्रुत्वा राजा प्रमाणमिति ।" [191]

राजा – (आकम्पितः) कष्टा खल्वनपत्यता । वसुमति, महाधनत्वाद् बहुपत्नीकेन तत्रभवता भवितव्यम् । विचार्यतां यदि कदाचिद् आपन्नसत्त्वा कापि तस्य भार्या स्यात् । [192]

प्रतीहारी – देव, इदाणीमेव केसवसेट्ठिणो दुहिदा णिव्वुत्तपुंसवणा जाआ सुणीअदि । (देव, इदानीमेव केशवश्रेष्ठिनो दुहिता निर्वृत्तपुंसवना जाया श्रूयते ।) [193]

राजा – ननु स गर्भः पित्र्यं रिक्थम् अर्हति । गच्छ एवम् आर्यपिशुनं ब्रूहि । [194]

प्रतीहारी – जं देवो आणवेदि । (यद् देव आज्ञापयति ।) (प्रस्थिता) [195]

राजा – एह्येहि तावत् । [196]

प्रतीहारी – (निवृत्य) इअम्हि । (इयमस्मि ।) [197]

राजा – अपि च, तत्रभवान् वक्तव्यः । किम् अनेन सन्ततिरस्ति नास्ति वेति । [198]

येन येन वियुज्यन्ते प्रजाः स्निग्धेन बन्धुना ।
स स पापाद् ऋते तासां दुःषन्त इति घोष्यताम् ।। **6 – 21** ।। [199]

प्रतीहारी – इदं णाम इत्थ घोसिदव्वम् । (निष्क्रम्य पुनः प्रविश्य च) देव, काले घुट्ठमिव अहिणन्दिदं देवसासणं महाअणेण । (इदम् नामात्र घोषितव्यम् । देव, काले घुष्टम् इव अभिनन्दितं देवशासनं महाजनेन ।) [200]

राजा – एवं, (दीर्घं निःश्वस्य) एवं सन्ततिच्छेदनिरवलम्बानां मूलपुरुषाणाम् अवसाने सम्पदः परम् उपतिष्ठन्ते । ममाप्यन्ते पुरुवंशश्रिय एष एव वृत्तान्तः । [201]

प्रतीहारी – पडिहदं आसङ्किदम् । (प्रतिहतम् आशङ्कितम् ।) [202]

राजा – धिङ् माम् उपस्थितश्रेयोऽवमानिनम् । [203]

अक्षमाला – असंसअं सहिं य्येव हिदए करिअ णिन्दिदो णेण अत्ता । (असंशयं सखीम् एव हृदये कृत्वा निन्दितोऽनेनात्मा ।) [204]

राजा -
संरोपितेऽप्यात्मनि धर्मपत्नी
त्यक्ता मया नाम कुलप्रतिष्ठा ।
कल्पिष्यमाणा महते फलाय
वसुन्धरा काल इवोप्तबीजा ।। **6 – 22** ।।[205]

लिपिकरी – (जनान्तिकम्) इमं पत्तकं पेसअन्तेण किं स्मारिदं अमच्चेण जं पेक्खिअ दाव भट्टिणो जलावसेको संवुत्तो । (विचिन्त्य) अध वा, ण सो अबुद्धिपुरवं पवट्टदि । (इमं पत्रकं

प्रेषयता किं स्मारितम् अमात्येन, यत् प्रेक्ष्य तावत् भर्तुर्जलावसेकः संवृत्तः । अथवा, न सो-ऽबुद्धिपूर्वकं प्रवर्तते ।) [206]

राजा – अहो दुःषन्तस्य संशयम् आरूढाः पिण्डभाजः । [207]

अस्मात् परं बत यथाश्रुतसंभृतानि
को नः कुले निवपनानि करिष्यतीति ।
नूनं प्रसूतिविकलेन मया प्रमुक्तं
धौताश्रुशेषम् उदकं पितरः पिबन्ति ।। **6 – 23** ।।[208]

अक्षमाला – सदिसं खु दे, ववधान-दोसेण अन्धआरो होदि । (सदृशं खलु ते, व्यवधानदोषेणान्धकारो भवति ।) [209]

प्रतीहारी –देव, अलं सन्तापितेन । वअत्थो पहु अवरासु देवीसु अणुरूवपुत्तजम्मणा पुव्वपुरिसाणां अरिणो भविस्सदि त्ति[27] । (देव, अलं सन्तापितेन । वयःस्थः प्रभुरपरासु देवीष्वनुरूपपुत्रजन्मना पूर्वपुरुषाणाम् अनृणो भविष्यतीति ।) [210]

राजा –(शोकावेगनाटितकेन) सर्वथा, [211]

आमूलशुद्धसंतति कुलमेतत् पौरवं प्रजावन्ध्ये ।
मय्यस्तमितमनार्ये देश इव सरस्वतीस्रोतः ।। **6 – 24** ।।[212]

(संमोहं गतः) [213]

परिजनः – (ससंभ्रमम् अवलोक्य) समस्ससदु समस्ससदु भट्टा । (समाश्वासितु समाश्वासितु भर्ता ।) [214]

अक्षमाला – इदाणिं य्येव णं णिव्वुदं करेए । अधवा महदीहिं उण देवदाहिं एदं दंसिदम् । ण सक्कं मए अणणुण्णादाए हत्थसंसग्गं णेदुं । भोदु, जण्णभाओस्सुआओ देवाओ य्येव तहा करइस्सन्ति जधा एसो राएसि ताए सहधम्मचारिणीए समागमिस्सदि । [215]

(नभोऽवलोक्य[28]) [216]

(सहर्षम्) करयिस्सन्ति कधं य्येव, तहि पेक्खामि । जाव इमिणा वुत्तान्तेण पिअसहिं समस्सासेमि । [217]

(उद्भ्रान्तकेन निष्क्रान्ता) [218]

(इदानीमेवैनं निर्वृतं कुर्वे । अथवा महतीभिः पुनर्देवताभिरेतद् दर्शितम् । न शक्यं मयाननुज्ञातया हस्तसंसर्गं नेतुम् । भवतु, यज्ञभागोत्सुका देवा एव तथा करिष्यन्ति यथैष राजर्षि-स्तया सहधर्मचारिण्या समागमिष्यति ।। करिष्यन्ति कथमेव, तत्र प्रेक्षे । यावद् अनेन वृत्तान्तेन प्रियसखीं समाश्वासयामि ।) [219]

(**नेपथ्ये**) [220]

अब्बम्हण्णं अब्बम्हण्णं भो । अब्बम्हण्णं ।

(अब्रह्मण्यम् अब्रह्मण्यम् भोः । अब्रह्मण्यम्) [221]

राजा – (शनैः प्रत्याश्वस्य ।) (कर्णं दत्त्वा) अये माधव्यस्येवार्तनादः ।[222]

लिपिकरी – तवस्सी, पिङ्गलिआमिसीणं मुहे पडिदो भविस्सदि । (तपस्वी पिङ्गलिकामिश्राणां मुखे

---

[27] इतः परं स्वगतोक्तिरूपेण "न मे वचनं प्रतिगृह्णाति । अथवानुरूपमेवौषधमातङ्कं निवारयती"ति वाक्यं वर्तते, तच्च प्रक्षिप्तत्वाद् दूरीकर्तव्यम् ।

[28] केवलं का.-पाठ एव समुपलभ्यत एतादृशी रंगसूचना । नासूचितस्य पात्रस्य प्रवेशो निर्गमोऽपि वेति वचनानुसारं मातलेरागमनं संसूच्यतेऽत्र । न प्राप्यत एतादृशी दृश्य-योजनाऽन्यत्र कुत्रापि । तेन का.-पाठ एव ज्यायान् श्रद्धेयश्च ।।

पतितो भविष्यति ।) [223]

राजा – वसुमति, गच्छ मद्वचनाद् अनिषिद्धपरिजनां देवीम् उपालभस्व[29] । [224]

प्रतीहारी – तथा । (इति निष्क्रान्ता) [225]

(नेपथ्ये) [226]

अब्बम्हण्णं अब्बम्हण्णं भो । (अब्रह्मण्यम् अब्रह्मण्यम् भोः ।) [227]

राजा – परमार्थभीत एव भिन्नस्वरो ब्राह्मणः । कः कोऽत्र भोः । [228]

कञ्चुकी – (प्रविश्य) आज्ञापयतु देवः । [229]

राजा – किम् एष माधव्यो माणवकः क्रन्दति । [230]

कञ्चुकी – देव, यावद् अवलोकयामि । (निष्क्रम्य संभ्रमात् पुनः प्रविष्टः) [231]

राजा – पार्वतायन, न खलु किञ्चिद् अत्ययिकम् / अत्याहितम् । [232]

कञ्चुकी – नैवम् । परित्रायतां सुहृदं महाराजः[30] । [233]

(नेपथ्ये) [234]

अयि, धाव भो । (अयि, धाव भोः ।) [235]

राजा – (सहसोत्थाय) (गतिभङ्गेन परिक्रामन्) वयस्य, न भेतव्यम् । न भेतव्यम् । [236]

(नेपथ्ये) [237]

विदूषकः – कधम् दाणिं ण भाइस्सं । एसो मं को वि पच्छामोडिदसिरोधरं इक्खुं विअ थीरभङ्गं य्येव करेदुं इच्छदि । (कथमिदानीं न भेष्यामि । एष मां कोऽपि पश्चान्मोटितशिरोधरम् इक्षुम् इव स्थिरभङ्गम् एव कर्तुम् इच्छति ।) [238]

राजा – (सदृष्टिक्षेपम्) धनुर्धनुस्तावत् । [239]

यवनी – (प्रविश्य शाङ्गर्हस्ता यवनी) जअदु जअदु भट्टा । एदं सरासणं हत्थावापसहिदम् । (जयतु, जयतु भर्ता । एतच्छरासनं हस्ताचापसहितम् ।) [240]

राजा – (सशरं धनुरादत्ते ।) [241]

(नेपथ्ये) [242]

एष त्वाम् अभिनवकण्ठशोणितार्थी,
शार्दूलः पशुमिव हन्मि वेष्टमानम् ।
आर्तानाम् भयमपनेतुम् आत्तधन्वा
दुःषन्तस्तव शरणं भवत्विदानीम् ।। **6 – 25** ।। [243]

राजा – (सरोषम्) कथं माम् एवम् उद्दिशति । तिष्ठ तिष्ठ कुलपांसन, अयम् इदानीं न भवसि । (चापमादाय) पार्वतायन, सोपानमार्गम् आदेशय । [244]

कञ्चुकी – इत इतो देवः । (सर्वे सत्वरम् उपसर्पन्ति) [245]

---

[29] का.-मै.-बं.-पाठेषूक्तिद्वयमिदं (223 एवं 224) प्राप्यते । तदवधेयम् ।, (दाक्षि.-देव.-पाठयोस्तन्नास्ति ।)

[30] का.-मै.-बं.-पाठेष्वितः परं कञ्चुकिनो मुखे श्लोकद्वयं प्राप्यतेः- "प्रागेव जरसा कम्पस्सविशेषं तु साम्प्रतं0" इति । (प्रक्षिप्त-श्लोक-संख्या-30), ततश्च "तस्याग्रभूमेर्गृहनीलकण्ठैरनेक0" इति । (प्रक्षिप्त-श्लोक-संख्या-31) । (दाक्षि.-देव.-पाठयोरस्यैव श्लोकस्यार्थो गद्येन वाक्येन निरूप्यते) ।, एवञ्च राज्ञो मुखे "अहन्यहन्यात्मन एव तावज्ज्ञातुं प्रमादस्खलितं0" इति । (प्रक्षिप्त-श्लोक-संख्या-32), अप्रासङ्गिकत्वात्सर्वे चैते निष्कासिताः । विदूषकस्यार्तस्वरस्य सम्भावितं कारणं यन्मेधाविन्योक्तं, राज्ञा च यथाऽनिषिद्धपरिजनायै देव्यै संदिष्टं, स एव मूलपाठः स्यात् । मूलपाठस्य संरक्षणेन सहैव केनापि कविंमन्यमानेन रंगकर्मिणा स्वकवित्वं प्रदर्शयितुं विदूषकग्रहणस्य कारणान्तरं परिकल्प्य प्रक्षिप्ताश्चैते त्रयः श्लोकाः । राज्ञो गृहाः केनापि प्रकाशेतरमूर्तिना सत्त्वेनाऽभिभूयन्त इत्यादिकं सर्वमनुपकारकम्, अप्रासंगिकञ्च । अतस्त्याज्यञ्च ।।

राजा – (समन्तात् विलोक्य) शून्यं खल्विदम् । [246]

(नेपथ्ये) [247]

विदूषकः – अभिधाव भो, अहं भवं पेक्खामि । एसो भवं मं न पेक्खदि । मज्जारगिहीदो विअ उन्दुरो णिरासो म्हि जीविदे संवुत्तो । (अभिधाव भोः, अहं भवन्तं प्रेक्षे । एष भवान् माम् न प्रेक्षते । मार्जारगृहीत इवोन्दुरो निराशोऽस्मि जीविते संवृत्तः ।) [248]

राजा – भोः तिरस्करिणीगर्वित, मदीयम् अस्त्रं त्वां पश्यति । स्थितो भव । मा च वयस्यसम्पर्काद् विश्वासोऽभूत् । एष त्वदर्थं तमिषुम् संदधे । [249]

यो हनिष्यति वध्यं,
त्वां रक्ष्यं रक्षिष्यति द्विजम् ।
हंसोऽपि क्षीरमादत्ते त-
न्मिश्रा वर्जयत्यपः ।। **6 – 26** ।। [250]

(अस्त्रं सन्धत्ते) [251]

(प्रविश्य सम्भ्रान्तो विदूषकमुत्सृज्य मातलिर्विदूषकश्च) [252]

मातलिः – आयुष्मान्,

कृताः शरव्या हरिणा तवासुराः
शरासनं तेषु विकृष्यताम् इदम् ।
प्रसादसौम्यानि सतां सुहृज्जने
पतन्ति चक्षूंषि न दारुणाः शराः ।। **6 – 27** ।। [253]

राजा – (अस्त्रमुपसंहरन्) अये मातलिः । स्वागतम् देवराजसारथये । [254]

विदूषकः – (निकटमेत्य) भो अहं णेण पसुमारेण मारिदो इमम्हि । साअदेण अभिनन्दासि । (भोः अहम् अनेन पशुमारेण मारितः अस्मि । स्वागतेन अभिनन्दसि ।) [255]

मातलिः – (सस्मितम्) आयुष्मन्, श्रूयतां यदस्मि हरिणा भवत्सकाशं प्रेषितः । [256]

राजा – अवहितोऽस्मि । [257]

मातलिः – अस्ति कालनेमिप्रसूतिर्दुर्जयो नाम दानवगणः ।[258]

राजा – श्रुतपूर्वो मया नारदात् । [259]

मातलिः –

सख्युस्ते स किल शतक्रतोरवध्यः
तस्य त्वं रणशिरसि स्मृतो निहन्ता ।
उच्छेत्तुं प्रभवति यन्न सप्तसप्तिः
तन् नैशं तिमिरमपाकरोति चन्द्रः ।। **6 – 28** ।। [260]

तद् भवान् गृहीतचाप एवेदानीम् ऐन्द्रं रथम् अधिरुह्य विजयाय प्रतिष्ठताम् ।[261]

राजा – अनुगृहीतम् अनया मघवतस्सम्भावनया । अथ भवद्भिर्माधव्यं प्रति किमेवं प्रयुक्तम् ।[262]

मातलिः – (सस्मितम् विदूषकम् अवलोक्य) तदपि कथ्यते । कुतोऽपि निमित्तान् मनस्तापाद् आयुष्मान् मया विक्लवो दृष्टः । पश्चात् कोपयितुम् आयुष्मन्तं तथा कृतवान् अस्मि । [263]
कुतः –

ज्वलति चलितेन्धनो-
ऽग्निर्विकृतः पन्नगः फणां कुरुते ।
प्रायस्स्वं महिमानं
क्षोभात् प्रतिपद्यते जन्तुः ।। **6 – 29** ।। [264]

राजा – (जनान्तिकम्) वयस्य माधव्य, अनतिक्रमणीया दिवस्पतेराज्ञा । तदत्र परिगतार्थं कृत्वा मद्

वचनाद् अमात्यपिशुनं ब्रूयाः – [265]

त्वन्मतिः केवला तावत् परिपालयितुं प्रजाः ।
अधिज्यमिदम् अन्यस्मिन् कर्मणि व्यापृतं धनुः ॥ **6 – 30** ॥ [266]

विदूषकः – जं भवं आणवेदि । (यद् भवान् आज्ञापयति ।) (इति निष्क्रान्तः ।) [267]

मातलिः – इत इत आयुष्मान् । [268]

(इति परिक्रम्य निष्क्रान्ताः सर्वे) [269]

॥ इति षष्ठोऽङ्कः ॥

।। अथ सप्तमोऽङ्कः ।।

(ततः प्रविशति नाकलासिका[1]) [1]

नाकलासिका –आणत्तं हि गुरुणा णारएण जधा – एदेसु य्येव दिवसेसु मच्चलोआदो उत्तिण्णेण राएसिणा दुस्सन्तेण भअवदो पुरन्दरस्स पिअआरिणा दाणव-वह-णिमिद्दं गन्तव्वं । जाव अभि[च्चि]अ इमं आपुच्छिअमाणो णिक्खिवदि ताव य्येव मए विबुहपच्चक्खं मङ्गलणिमित्तं किं पि पेक्खणअं दरसइदव्वं । ता तुमं कं पि लासिअं अण्णेसिअ सङ्गीदसालाअं आगच्छत्ति । ता जाव लासिअं अण्णेमि । (परिक्रम्यावलोक्य च) का पुण एसा गिहीदवरणा पच्छा हरिसिदुक्कण्ठिदा विअ इदो एवागच्छदि । (निपुणमवलोक्य) कधं पिअसही चूदमञ्जरी । ता जाव एदाए सह उवज्झाअ-समीपं गच्छामि । (इति प्रतिपालयति) (आज्ञप्तं हि गुरुणा नारदेन यथैतेष्वेव दिवसेषु मर्त्यलोकाद् उत्तीर्णेन राजर्षिणा दुःषन्तेन भगवतः पुरन्दरस्य प्रियकारिणा दानववधनिमित्तं गन्तव्यं, यावद् अभ्यर्च्येममापृच्छ्यमानं निक्षिपति तावदेव मया विबुधप्रत्यक्षं मङ्गलनिमित्तं किमपि प्रेक्षणकं दर्शयितव्यम् । तत् त्वं कामपि लासिकाम् अन्वेष्य सङ्गीतशालायामागच्छेति । तद् यावल्लासिकाम् अन्वेषयामि । का पुनरेषा गृहीतवर्णा पश्चाद् हर्षितोत्कण्ठेवेत एवागच्छति । कथं प्रियसखी चूतमञ्जरी । तद् यावद् एतया सहोपाध्यायसमीपं गच्छामि ।) [2]

।। ततः प्रविशति यथानिर्दिष्टा लासिका सविस्मयं सहर्षं च ।। [3]

अहो, महप्पभावो राएसी दुस्सन्तो । (सासूयम्) अहो महाबलो सो हदो दुज्जओ दाणवबलो । (विचार्य) अहवा, दुस्सन्तो य्येव, जेण सारधि-दुदीएण य्येव अणेअ पहरण साहस्सइं विकिरन्तो खणेण य्येव णिहदो सो दुज्जअदाणवबलो ।। [4]

(नृत्यति) [5]

(अहो महाप्रभावो राजर्षिर्दुःषन्तः । अहो महाबलस्स हतो दुर्जयो दानवबलः । अथवा दुःषन्तः एव, येन सारथिद्वितीयेनैवानेक-प्रहरण-साहसानि विकिरन्(रता) क्षणेनैव निहतः स दुर्जयदानव-बलः ।) [6]

प्रथमा – (उपसृत्य) सहि चूदमञ्जरिए उक्कण्ठिदा विअ लक्खीअसि । (सखि चूतमञ्जरिके, उत्कण्ठितेव लक्ष्यसे ।) [7]

द्वितीया – (विलोक्य) कधं पारिजाअमञ्जरी । सहि, सव्वं कधयिस्सं । तुअं दाव कहिं पत्थिद त्ति पुच्छिस्सं । (कथं पारिजातमञ्जरी[2] । सखि, सर्वं कथयिष्यामि । त्वं तावत् कुत्र प्रस्थितेति प्रक्ष्यामि ।) [8]

प्रथमा – सहि, सङ्खेवेण कधइस्सं । अहं खु राएसिणो दुस्सन्तस्स दाणवविजअ-ववदेसेण अज्ज मङ्गल-णिमित्तं किं पि पेक्खणअं दंसीअदि त्ति, उवज्झाअस्स आणाए उभे य्येव सआसं । (सखि,

---

[1] केवलं का.-पाठे समुपलभ्यमानोऽयं प्रवेशको विदुषां मतेन प्रक्षिप्तः । डॉ. एस. के. बेलवल्करमहाशयेन तस्य मौलिकता स्वीकृता, यतो हि- यथैव कालिदासस्यान्ययोर्नाटकयोः संगीत-नृत्ययोः समावेशस्तथैवात्रापि भवितुमर्हतीति तेषां मतिः । मदीयेन मतेन तु यावत्पर्यन्तम् "अविषयगमनमि"ति प्राकृतगाथायाः पाठशुद्धिर्न जायते, न च ज्ञायते तस्याः स्वारस्यं / प्रयोजनं तावत्पर्यन्तमस्य प्रवेशकस्य प्रक्षिप्तत्वं न घोषितव्यम् ।

[2] नाटकेऽस्मिन् 1. अनसूया-प्रियंवदा, 2. परभृतिका-मधुकरिका, 3. मेधाविनी-पिङ्गलिका, 4. संयता-सुव्रतादीनां स्त्रीयुगलं नैकत्र प्रयुक्तम् । तद्-दृष्ट्वाऽस्मिन् प्रवेशकेऽपि वर्तमानं पारिजातमञ्जरी-चूतमञ्जर्योः स्त्रीयुगलमपि मौलिकं स्यादिति प्रतीयते । तेनाप्ययं प्रवेशकः कदाचिन्मूलपाठे भवेदित्यनुमातुं शक्यते । एवञ्च, पारिजातमञ्जरी-पदेन मेनकात्मजा शकुन्तला, चूतमञ्जरी-पदेन च पार्थिवो दुःषन्तः संसूच्यते । स्वर्ग-पृथिव्योर्मेलनं द्योतयितुं नासिकाद्वयस्यात्र नर्तनं प्रस्तूयतेतरामिति दिक् ।।

सङ्क्षेपेण कथयिष्यामि, अहं खलु राजर्षेर्दुःषन्तस्य दानवविजयव्यपदेशेनाद्य मङ्गलनिमित्तं किमपि प्रेक्षणकं दर्शयत इति उपाध्यायस्याज्ञया उभे एव सकाशम् --- -- -- ।) [9]

द्वितीया – (सोत्कण्ठम्) आसि अवसरो एदस्स दाणिं पुणो मच्चलोअं पत्थिदे एदस्सिं महाराए कस्स दंसीअदि । (आसीदवसर एतस्य । इदानीं पुनर्मर्त्यलोकं प्रस्थित एतस्मिन् महाराजे कस्य दृश्यते ।) [10]

प्रथमा – (साशङ्कम्) सहि, किं महेन्दस्स मनोरहाइं सम्पादिअ गदो, आद अण्णदि त्ति ।
(सखि, किम् महेन्द्रस्य मनोरथान् सम्पाद्य गत, उतान्यथेति ।) [11]

द्वितीया – सहि, सुणु । अज्ज य्येव गोसग्गसमए णवरं दुज्जयदाणवजीविअसव्वस्ससेसं गिहितुण एव अ तिदसविलासिणि सरसहिअआइं अवणिं अहिपडिदो अदो अ मए हरिसोकण्ठाणं कारणं ।
(सखि, शृणु । अद्यैव गोसर्गसमये केवलं दुर्जयदानवजीवितसर्वस्वशेषं गृहीत्वा, एवञ्च, त्रिदश-
-विलासिनीसरसहृदयान्यवनिम् अभिप्रस्थितः । अतश्च मे हर्षोत्कण्ठानां कारणम् ।) [12]

प्रथमा – सहि तए पिअं णिवेदिदं जं य्येव उवज्झाएण पुरुवंसराएसिणो पुरओ कय्यं कादुं आणत्तं । तं य्येव गीअं कादुण इत्थ य्येव करेम्ह । (सखि, त्वया प्रियं निवेदितं यद् एवोपाध्यायेन पुरुवंशराजर्षेः पुरतः कार्यं कर्तुम् आज्ञप्तम् । तदेव गीतं कृत्वाऽत्रैव कुर्वः ।) [13]

द्वितीया – जं दे रोअदि, य्येव ता ज य्येव गीअं मए लविदं, तए वा, सह णच्छम्म ।
(यत्ते रोचते, एवं तत् यदेव गीतं मया लपितं, त्वया वा, सह नृत्यावः ।) [14]

प्रथमा – सहि, एवं करेम्ह । (उभे गायतः) [15]

अविसअगमणं कंचन अण्णं अ सराअमालि महुसमओ ।
अण्णं कुणइं विसण्णं पाडीइमाणं भूमीए ।। 7 – 1 ।।

(सखि, एवं कुर्वः ।

अविषयगमनं कंचनान्यं च सरागम् आलिं मधुसमयः ।
अन्यं करोति विषण्णं पात्यमानं भूम्याः(भूम्याम्) ।। 7 – 1 ।।) [16]

(इत्यन्ते नर्तित्वा निष्क्रान्ते ।) [17]

(प्रवेशकः) [18]

(ततः प्रविशति रथयानेन रथाधिरूढो राजा दुःषन्तो मातलिश्च) [19]

राजा – मातले, अनुष्ठितनिदेशोऽपि मघवतस्सत्क्रियाविशेषाद् अनुपयुक्तमिवात्मानं समर्थये । [20]

मातलिः – आयुष्मान् उभयमप्यपरितोषम् । कुतः – [21]

उपकृत्य हरेस्तथा भवा-
ल्लँघु सत्कारम् अवेक्ष्य मन्यते ।
गणयत्यवदानम्मितां भवत—
स्सोऽपि न सत्क्रियाम् इमाम् ।। 7 – 2 ।। [22]

राजा – मा मैवम् । स खलु मनोरथानाम् अप्यतिभूमिवर्ती विसर्जनावसरे सत्कारः । मम हि दिवौकसां समक्षम् अर्धासनोपवेशितस्य । [23]

अन्तर्गतप्रार्थनम् अन्तरस्थं
जयन्तमुद्वीक्ष्य कृतस्मितेन ।
प्रमृज्य वक्षो हरिचन्दनाक्तं
मन्दारमाला हरिणा पिनद्धा ।। 7 – 3 ।। [24]

मातलिः – किमिव नायुष्मान् परमेश्वराद् अर्हति । पश्य – [25]

सुखपरस्य हरेरुभयैः कृतं
त्रिदिवम् उद्धृतदानवकण्टकम् ।
तव शरैरधुना नतपर्वभिः
पुरुषकेसरिणश्च पुरा नखैः ।। 7 – 4 ।। [26]

राजा – अत्र शतक्रतोरेव महिमा । पश्य, [27]

सिद्ध्यन्ति कर्मसु महत्स्वपि यन्नियोज्याः
संभावनागुणम् अवेहि तमीश्वराणाम् ।
किं प्राभविष्यद् अरुणस्तमसां वधाय
तं चेत् सहस्रकिरणो धुरि नाकरिष्यत् ।। 7 – 5 ।। [28]

मातलिः – सदृशं तवैतत् । (स्तोकम् अन्तरमतीत्य) आयुष्मान्, इतः पश्य, नाकपृष्ठप्रतिष्ठितस्य सौभाग्यम् आत्मयशसः । [29]

विच्छित्तिशेषैस्सुरसुन्दरीणां
वर्णैरमी कल्पलतान्तरेषु ।
संचिन्त्य गीतिक्षमम् अर्थतत्त्वं
दिवौकसस्त्वच्चरितं लिखन्ति ।। 7 – 6 ।। [30]

राजा – मातले, असुरसंप्रहारोत्सुकेन पूर्वं दूरम् अधिरोहता न लक्षितो मया स्वर्गमार्गः । तत् कतमस्मिन् पथि मरुतां वर्तामहे । [31]

मातलिः –
त्रिस्रोतसं वहति यो गगनप्रतिष्ठां
ज्योतींषि वर्तयति चक्रविभक्तरश्मिः ।
तस्य व्यपेतरजसः प्रवहस्य वायो-
र्मार्गो द्वितीयहरिविक्रमपूत एषः ।। 7 – 7 ।। [32]

राजा – ततः खलु मे सबाह्यान्तःकरणोऽन्तरात्मा प्रसीदति । (रथाङ्गे विलोक्य) शङ्के मेघपथम् अवतीर्णौ स्वः । [33]

मातलिः – (सस्मितम्) कथम् अवगम्यते । [34]

राजा –
अयम् अरिविवरेभ्यश्चातकैर्निष्पतद्भिः
हरिभिरचिरभासां तेजसा चानुलिप्तैः ।
गतमुपरि घनानां वारिगर्भोदराणां
पिशुनयति रथस्ते शीकरक्लिन्ननेमिः ।। 7 – 8 ।। [35]

मातलिः – क्षणम् ऊर्ध्वम् आयुष्मान् नात्माधिकारभूमौ वर्तिष्यते । [36]

राजा – (अधोऽवलोक्य) मातले, वेगावरणाद् आश्चर्यदर्शनः खलु सम्पद्यते मनुष्यलोकः । [37] तथा,

शैलानाम् अवरोहतीव शिखरादुन्मज्जतां मेदिनी
पर्णेष्वन्तरलीनतां विजहति स्कन्धोदयात् पादपाः ।
सन्धानं तनुभावनष्टसलिला व्यक्ता व्रजन्त्यापगाः
केनाप्युत्क्षिपतेव पश्य भुवनं मत्पार्श्वम् आनीयते ।। 7 – 9 ।। [38]

मातलिः – (सबहुमानम् आलोक्य) अहो उदग्ररमणीया पृथिवी । [39]

राजा – मातले, कतमोऽयं पूर्वापरसमुद्रावगाढः कनकनिष्यन्दशोभी सान्ध्य इव मेघपरिघः सानुमान् आलोक्यते । [40]

मातलिः – आयुष्मान् एष हेमकूटो नाम किम्पुरुषपर्वतः, परं तपस्विनां सिद्धिक्षेत्रम् । पश्य, [41]

स्वायम्भुवो मरीचेर्यः प्रबभूव प्रजापतिः ।
सुरासुरगुरुः सोऽस्मिन् सपत्नीकस्तपस्यति ।। 7 – 10 ।। [42]

राजा – (सादरम्) तेन हि अनतिक्रमणीयानि श्रेयांसि । प्रदक्षिणीकृत्य भगवन्तं [गन्तुम्] इच्छामि यावत् । [43]

मातलिः – प्रथमः कल्पः । (अवतरणं नाटयित्वा) एताववतीर्णौ स्वः । [44]

राजा – (सविस्मयम्) मातले,

उपोढशब्दा न रथाङ्गनेमयः
प्रवर्तमानं च न दृश्यते रजः ।
अभूतलस्पर्शतया निरुद्धति-
स्तवावतीर्णोऽपि रथो न लक्ष्यते ।। 7 – 11 ।। [45]

मातलिः – एतावान् एव शतमन्योरायुष्मतश्च विशेषः । [46]

राजा – कतमस्मिन् प्रदेशे मारीचाश्रमः ।[47]

मातलिः – (हस्तेन दर्शयन्)

वल्मीकार्धनिमग्नमूर्तिरुरगत्वग्ब्रह्मसूत्रान्तरः
कण्ठे जीर्णलताप्रतानवलयेनात्यर्थसंपीडितः ।
अंसव्यापि शकुन्तनीडनिचितं[3] बिभ्रज्जटामण्डलं
यत्र स्थाणुरिवाचलो मुनिरसावभ्यर्कबिम्बं स्थितः ।। 7 12 ।।[48]

राजा – नमोऽस्मै कष्टतपसे । [49]

मातलिः – (संयतप्रग्रहं कृत्वा) एतावदिति परिवर्धितमन्दारवृक्षकं प्रजापतेस्तपोवनं प्रविष्टौ स्वः ।[50]

राजा – अहो विस्मयः । स्वर्गाद् अधिकनिवृत्तिस्थानम् । अधिक(अमृत)ह्रदमिवावगाढोऽस्मि ।[51]

मातलिः – (रथं स्थापयित्वा) अवतीर्यताम् । [52]

राजा – (साभिनयम् अवतीर्य) भवान् कथम् इदानीम् । [53]

मातलिः - समययन्त्रितोऽयम् आस्ते रथः । वयमप्यवतरामः । [54]
(तथा कृत्वा) इत इत आयुष्मान् । [55]

(उभौ परिक्रम्य) [56]

मातलिः – आयुष्मन्, दृश्यन्ताम् अत्रभवतां सिद्धर्षीणां तपोवनभूमयः । [57]

राजा – ननु विस्मयाद् उभयमप्यवलोकयामि । [58]

प्राणानाम् अनिलेन वृत्तिरुचिता सत्कल्पवृक्षे वने
तोये हैमसहस्रपत्रसुभगे नक्तंदिवं सद्व्रतम् ।
ध्यानं रत्नशिलागृहेषु विबुधस्त्रीसंनिधौ संयमो
यत्काङ्क्षन्ति तपोभिरन्यमुनयस्तस्मिंस्तपस्यन्त्यमी ।। 7 – 13 ।।[59]

मातलिः – उत्कर्षिणी खलु महतां प्रार्थना । (परिक्रामतः) [60]

मातलिः – (आकाशे) वृद्धशाकल्य, किं व्यापारो भवान् । (कर्णं दत्त्वा) किं ब्रवीषि । एष दाक्षायण्या पतिव्रतापुण्यम् अधिकृत्य पृष्टः । तस्यास्तद् व्याकरोतीति प्रतिपाल्यावसरः खलु प्रस्तावः । (राजानं दृष्ट्वा) अस्मिन् नशोकपादपे तावद् आयुष्मान् आस्ताम् । यावत् त्वां प्रजापतय

---

[3] कोऽयं स्यान्मुनिः ? किमयं "शकुन्त-नीड-निचित0" इति पदेन शकुन्तलायाः पिता विश्वामित्रो वर्ण्यते ?!

आवेदयामि । [61]

राजा – यथा भवान् मन्यते । (स्थितः), [62]

(निष्क्रान्तो मातलिः ।) [63]

राजा – (निमित्तं सूचयित्वा) [64]

मनोरथाय नाशंसे बाहो स्फुरसि किं वृथा ।
पूर्वावधीरितं श्रेयो दुःखं हि परिवर्तते ।। 7 – 14 ।।[65]

(नेपथ्ये)

मा खु मा खु चवलदं करेहि । सिङ्घ..... । कधं कधं य्येव अत्तणो पकिदिं दंसेसि । [66]
(मा खलु मा खलु चपलतां कुरु । सिंह .... । कथं कथमेवात्मनः प्रकृतिं दर्शयसि ।)

राजा – (कर्णं दत्त्वा) अभूमिरियम् अविनयस्य । को नु खल्वविनयात् निषिध्यते । (शब्दानुसारेणाऽवलोक्य) (विस्मयाभिनयपूर्वकम्) अये, अनुरुध्यमानस्तापसीभ्याम् अबालसत्त्वो बालः ।[67]

अव(र्ध)पीतस्तनं मातुरामर्दक्लिष्टकेसरम् ।
विलम्बितं सिंहशिशुं करेणाहत्य कर्षति ।। 7 – 15 ।।[68]

(ततः प्रविशति यथानिर्दिष्टकर्मा तापसीभ्याम्[4] अनुरुध्यमानो बालः ।) [69]

बालः – जिम्भ जिम्भ, ले सिङ्घ । दन्ताइं दे गणइस्सं । (जृम्भ जृम्भ, रे सिंह, दन्तानि ते गणयिष्यामि ।) [70]

तापसी – अविणीद, किं ति णो अवच्चणिव्विसेसाइं सत्ताइं विप्पकरोसि । पवट्टदि [दे] संरम्भो । थाणे क्खु इसिजणेण सव्वदमणो त्ति किदणामधेओ सि । (अविनीत, किमिति नोऽपत्य-निर्विशेषाणि सत्त्वानि विप्रकरोषि । प्रवर्तते [तव] संरम्भः । स्थाने खल्वृषिजनेन सर्वदमन इति कृतनामधेयोऽसि ।) [71]

राजा – किं नु खलु बालेऽस्मिन् नौरस इव पुत्रे स्निह्यति मे मनः । (विचिन्त्य) नूनमनपत्यता मां वत्सलयति ।[72]

द्वितीया – एसा केसरिणी तुमं लङ्घेदि, जदि से पुत्तकं ण मुञ्चेसि । (एषा केसरिणी त्वाम् लङ्घयति यद्यस्याः पुत्रकं न मुञ्चसि ।) [73]

बालः – (सस्मितम्) अम्महे, बलिअं खु भीदे म्हि । (इत्यधरं दशति) (अहो बलीयः खलु भीतोऽस्मि ।) [74]

राजा –
महतस्तेजसो बीजं बालोऽयं प्रतिभाति मे ।
स्फुलिङ्गावस्थया वह्निरेधोपेक्ष इव स्थितः ।। 7 – 16 ।।[75]

प्रथमा – वच्छक, मुञ्च एदं बालं मइन्दं । अण्णं दे कीलणकं दाइस्सं । (वत्सक, मुञ्चैतम् बालं मृगेन्द्रम् । अन्यं ते क्रीडनकं दास्यामि ।) [76]

बालः – कहिं शे । देहि मे एणं । (कुत्र सः । देहि म एनम्) (इति दक्षिणहस्तं प्रसारयति) [77]

राजा – कथं चक्रवर्तिलक्षणम् अनेन धार्यते । तथा ह्यस्य, [78]

---

[4] प्रथमायास्तापस्या नाम संयतेति । द्वितीयायाश्च नाम सुव्रतेति ।

प्रलोभ्यवस्तुप्रणयप्रसारितो
विभाति जालग्रथिताङ्गुलिः करः ।
अलक्ष्यपत्रान्तरम् इद्धरागया
नवोषसा भिन्नमिवैकपङ्कजम् ।। 7 – 17 ।। [79]

प्रथमा – सुव्वदे, ण सक्को एसो आआसमित्तेण सअमिदुं । ता गच्छ । मम केरए उडए इसि [मङ्कण-अस्स] इसिकुमारअस्स वण्णअचित्तिदो मिट्टिआमऊरओ चिट्ठदि । तं से उवाहर । (सुव्रते, न शक्य एष आश्वासमात्रेण संयमितुम् । तद् गच्छ । मामक उडजे ऋषि [मङ्कनकस्य] कुमारकस्य वर्णकचित्रितो मृत्तिकामयूरकस्तिष्ठति । तम् अस्योपाहर ।) [80]

द्वितीया–तधा । (तथा) (इति निष्क्रान्ता) [81]

बालः – ताव इमिणा य्येव कीलयिस्सं । (तावद् अनेनैव क्रीडिष्यामि ।) [82]

(तापसी विलोक्य हसति) [83]

राजा – स्पृहयामि दुर्ललितकायास्मै । (निश्श्वस्य) [84]

आलक्ष्यदन्तमुकुलान् अनिमित्तहासै-
रव्यक्तवर्णरमणीयवचः प्रवृत्तीन् ।
अङ्काश्रयप्रणयिनस्तनयान् वहन्तो
धन्यास्तदङ्गरजसा परुषीभवन्ति ।। 7 – 18 ।।[85]

तापसी – (साङ्गुलितर्जनम्) भोदु । ण मं गणअसि । (पार्श्वम् अवलोक्य) को एत्थ इसिकुमारकाणं । (राजानं दृष्ट्वा) भद्दमुह, एहि मोएहि दाव इमिणा दुम्मोहहत्थग्गेण डिम्बकलिणा बाधीअमाणं बालमइन्दअं । (भवतु, न मां गणयसि । कोऽत्र ऋषिकुमारकाणाम् । भद्रमुख, एहि मोचय तावद् अनेन दुर्मोचहस्ताग्रेण डिम्बकरिणा बाध्यमानं बालमृगेन्द्रम् ।) [86]

राजा – तथे- (त्युपगम्य) अयि महर्षिपुत्र, [87]

एवमाश्रमविरुद्धवृत्तिना
संयमी किमिति जन्मदस्त्वया ।
सत्त्वसंश्रयसुखोऽपि दूष्यते
कृष्णसर्पशिशुनेव चन्दनः ।। 7 – 19 ।।[88]

तापसी – भोदु । ण खु अअं इसिकुमारओ । (भवतु । न खलु अयम् ऋषिकुमारकः ।) [89]

राजा – आकारसदृशं चेष्टितम् एवास्य कथयति । स्थानप्रत्ययात् तु वयम् अतर्किणः ।

(सिंहं मोचयित्वा, यथाभ्यर्थितम् अनुष्ठितम् । बालस्पर्शम् अनुभूयात्मगतम् ।) [90]

अनेन कस्यापि कुलाङ्कुरेण
स्पृष्टस्य गात्रेषु सुखं ममैवम् ।
कां निर्वृतिं चेतसि तस्य कुर्याद्
यस्यायम् अङ्गात् कृतिनः प्रसूतः ।। 7 – 20 ।। [91]

तापसी – (उभावलोक्य) अच्छरीअं अच्छरीअं । (आश्चर्यम् आश्चर्यम् ।) [92]

राजा – किम् इव । [93]

तापसी – अस्स बालस्स असम्बद्धे वि भद्दमुहे संवादिणी आकिदि त्ति विम्हिद म्हि । अवि अ, अच्चन्त-परिइदस्स विअ अप्पडिलोमो एसो दे संवुत्तो । (अस्य बालस्यासम्बद्धेऽपि भद्रमुखे संवादिन्या-

कृतिरिति विस्मिताऽस्मि । अपि च, अत्यन्तपरिचितस्येवाप्रतिलोम एष ते संवृत्तः ।) [94]

राजा – (बालम् उपलालयन्) न चेन्मुनिकुमारोऽयम्, अथ कोऽस्य व्यपदेशः ।

तापसी – पोरवो इति । (पौरवः इति)[5] [95]

राजा – (अपवार्य[6]) कथम् एकान्वयोऽयमस्माकम् । अतः खलु मदनुकारिणम् अत्रभवती मन्यते ।
(प्रकाशम्) अस्त्येतत् पौरवाणाम् अन्त्यं कुलव्रतम् । [96]

भवनेषु सुधासितेषु पूर्वं
क्षितिरक्षार्थम् उशन्ति ते निवासम् ।
नियतैकमुनिव्रतानि[7] पश्चात्
तरुमूलानि गृहीभवन्ति तेषाम् ।। 7 – 21 ।। [97]

न पुनरात्मगत्या मानुषाणाम् एष विषयः । [98]

तापसी – णं जधा भद्दमुहो भणादि । अच्छरासम्बन्धेण पुणो इमस्स बालस्स जणणी एत्थ य्येव गुरुणो तवोवणे पसूदा । (ननु यथा भद्रमुखो भणति – अप्सरसम्बन्धेन पुनरस्य बालस्य जनन्यत्रैव गुरोस्तपोवने प्रसूता ।) [99]

राजा – (आत्मगतम्) दत्तं द्वितीयमिदमाशङ्काजननम् । (प्रकाशम्) तत्रभवती किमाख्यस्य राजर्षेः पत्नी । [100]

तापसी – को तस्स धम्मदारपरिच्चाइणो णामधेअं गिण्हीसदि । (कस्तस्य धर्मदारपरित्यागिनो नामधेयं ग्रहीष्यति ।) [101]

राजा – (अपवार्य[8]) इयं खलु कथा मामेव लक्षीकरोति । किं तावद् अस्य शिशोर्मातरं नामतः पृच्छेयम् । अथवा, अन्याय्यः परदारव्यवहारः । [102]

(प्रविश्य मृन्मयमयूरहस्ता द्वितीया) [103]

तापसी – सव्वदमण, सउन्तलावण्णं पेक्ख[9] । (सर्वदमन, शकुन्तलावण्यं पश्य ।) [104]

बालः – (सदृष्टिक्षेपम्) कहिं अज्जू । (कुत्रार्या माता) [105]

(उभे प्रहसिते) [106]

प्रथमा – णामसादिस्सेण छलिदो मादुअच्छलओ । (नामसादृश्येन छलितो मातृवत्सलकः ।) [107]

द्वितीया – वच्छ, सउन्तला भणादि । इमस्स कित्तिम-मऊरस्स रमणीअदं पेक्खत्ति । (वत्स, शकुन्तला भणति । अस्य कृत्रिम-मयूरस्य रमणीयतां प्रेक्षस्वेति ।) [108]

राजा – (अपवार्य[10]) किं शकु[न्त]लेति मातुराख्या । सन्ति पुनर्नामसादृश्यानि । अपि नाम मृगतृष्णिकेव नायमन्तेन प्रस्तावो विषादाय कल्पते । [109]

---

[5] काश्मीर-पाठे दाक्षि.-पाठे च पुरुवंश इति । किन्तु पूर्वापरसन्दर्भेषु सर्वत्र दुष्यन्तः पौरव इति शब्देनैव सम्बोध्यते । (1. कः पौरवे शासति वसुमतीम्0, 2. पोरव, रक्ख विणअं । इत्यादिषु स्थलेषु)

[6] अपवार्यत्वेनेयं रंगसूचना मैथिल-पाठाद् गृहीता ।

[7] का.-दा.-पाठयोः " नियतैकयतिव्रतानी " ति ।, किन्तु रघुवंशे " वार्धक्ये मुनिवृत्तीनामि " ति वचनात् ।

[8] अपवार्यत्वेनेयं रंगसूचना मैथिल-पाठाद् गृहीता ।

[9] का.-पाठे "सव्वदमण, सउन्तला---" इत्येव प्राप्यते ।, किन्तु मै.-पाठस्यात्र ग्रहणं करणीयम्, अभिनवगुप्तेनापि "तापसी – सर्वदमन, शकुन्तलावण्यं पश्य" इत्यस्यैव ग्रहणात् । (द्रष्टव्यम् ना. शा., षोडशाध्यायानुबन्धाः 16-6 इत्यत्राभिनवभारती, पृ. 350)

[10] इयमपि रंगसूचना"ऽपवार्ये"त्येव भवितुमर्हति ।

बालः – अत्ताके, लोअदि मे भद्दालके एहे मऊले । (अत्ताके, रोचते मे भद्रालक एष मयूरः ।[110]

(क्रीडणकमादत्ते) [111]

द्वितीया – (आलोक्य ससंभ्रमम्) अम्मो, रक्खाकरण्डकं से मणिबन्धे ण दीसदि । (अहो रक्षा-करण्डकमस्य मणिबन्धे न दृश्यते ।) [112]

राजा – अलमावेगेन । नन्वयम् अस्य सिंहशावकमर्दात् परिभ्रष्टम् । (आदातुमिच्छति) [113]

उभे – मा खु णं आलबिट्ठा । कधं .... गिहीदं येव णेण । (सविस्मयम्) (मा खल्वेनमालम्बिष्ठाः । कथं गृहीतमेवानेन ।) [114]

(उरो-निहितहस्ते परस्परम् अवलोकयतः) [115]

राजा – किमर्थं प्रतिषिद्धोऽस्मि ।[116]

प्रथमा – सुणादु अय्यो । महाप्पहावा एसा खु अवराइदा णाम महोसहि इमस्स दारअस्स जादकम्मसमए भअवदा मारीएण दिण्णा । एदं किल मादापिदरो अत्ताणअं वा वज्जिअ अवरो भूमिपदिदं ण गिण्हादि । (शृणोत्वार्यः । महाप्रभावैषा खल्वपराजिता नाम महौषधिरस्य दारकस्य जातकर्मसमये भगवता मारीचेन दत्ता, एताम् किल मातापितरावात्मानं वा वर्जयित्वा--ऽपरो भूमिपतितां न गृह्णाति ।) [117]

राजा – अथ गृह्णाति, किं भवति । [118]

प्रथमा – तदो सप्पो भविअ अण्णं दंसेदि । (ततस्सर्पो भूत्वाऽन्यं दशति ।) [119]

राजा – अथ भवतीभ्यां कदाचिदस्याः प्रत्यक्षीकृता विक्रिया ।[120]

उभे – अणेअसो । (अनेकशः) [121]

राजा – (सहर्षम्) तत्किम् खल्विदानीं पूर्णमपि मनोरथं नाभिनन्दामि । [122]

(बालं परिष्वजते) [123]

द्वितीया – सञ्जदे, एहि, इमं वुत्तान्तं णिअमणिव्वुदाए सउन्तलाए णिवेदेम्ह । (संयते, एहि इमं वृत्तान्तं नियमनिर्वृतायै शकुन्तलायै निवेदयामः ।) [124]

प्रथमा – एवम् करेम्ह । (इति निष्क्रान्ते तापस्यौ) [125]

बालः – मुञ्च मं, जाव अज्जूसकासं गच्छामि । (मुञ्च मां, यावद् मातृसकाशं गच्छामि ।) [126]

राजा – पुत्रक, मयैव सह मातरं नन्दयिष्यसि । [127]

बालः – मम खु तादे दुश्शन्ते, ण तुवं । (मम खलु तातो दुःषन्तो, न त्वम् ।) [128]

राजा – (सस्मितम्) एष विवाद एव मां प्रत्याययति । [129]

(ततः प्रविशति एकवेणीधरा शकुन्तला) [130]

शकुन्तला –विआरकाले वि पकिदित्थं तं सव्वदमणस्स ओसहिं सुणिअ ण मे आसासो अत्तणो भाअधेएसु । अह वा, जधा मे अक्खमालाए आचक्खिदं तदा(धा) सम्भावो एदं । (विकारकालेऽपि प्रकृतिस्थां तां सर्वदमनस्यौषधिं श्रुत्वा न म आश्वास आत्मनो भागधेयेषु । अथवा, यथा मेऽक्षमालया आख्यातं, तथा सम्भाव्यत एतत् ।) (परिक्रामति) [131]

राजा – (शकुन्तलां दृष्ट्वा) अये इयमत्रभवती शकुन्तला । [132]

वसने परिधूसरे वसाना
नियमक्षाममुखी कृतैकवेणिः ।

अतिनिष्करुणस्य शुद्धशीला
मम दीर्घं विरहव्रतं बिभर्ति ।। 7 – 22 ।। [133]

शकुन्तला – (राजानं दृष्ट्वा) ण क्खु अय्यउत्तो विअ । ता को णु खु एसो किदरक्खामङ्गलं दारअं मे हत्थसंसग्गेण दुसेदि । (न खल्वार्यपुत्र इव । तत् को नु खल्वेष कृतरक्षामङ्गलं दारकं मे हस्तसंसर्गेण दूषयति ।) [134]

बालः – (मातरमुपेत्य) अज्जुए, एस कोवि परो, को मं माणुसो पुत्तके त्ति आलवदि । (अज्जुके, एष कोऽपि परः । को मां मानुषः पुत्रक इत्यालपति ।) [135]

राजा – प्रिये, क्रौर्यमपि मे त्वयि प्रयुक्तम् अनुकूलपरिणामं संवृत्तम् । यतोऽहमिदानीं त्वया प्रत्यभिज्ञातम् आत्मानमिच्छामि । [136]

शकुन्तला – (सहर्षम्) अय्यउत्त[11] य्येव एसो । (आर्यपुत्र एवैषः ।) [137]

राजा –

स्मृतिभिन्नमोहतमसो दिष्ट्या
प्रमुखे स्थितासि मे सुमुखि ।
उपरागान्ते शशिन-
स्समुपनतो रोहिणीयोगः ।। 7 – 23 ।।[138]

शकुन्तला – जअदु जअदु ..... ।[12] (जयतु जयतु .... ।) [139]

(इत्यर्धोक्ते बाष्पकण्ठी बाष्पं विहरति) [140]

राजा – प्रिये,

बाष्पेण प्रतिषिद्धेऽपि जयशब्दे जितं मया ।
यत्ते दृष्टम् असंस्काराल्लोलालकम्[13] इदं मुखम् ।। 7 – 24 ।। [141]

बालः – अज्जुए । को वा एसो । (अज्जुके, क एवैषः ।) [142]

शकुन्तला – वच्छ, भाअधेआणि मे पुच्छ । (रोदिति) (वत्स, भागधेयानि मे पृच्छ ।) [143]

राजा – (प्रणिपत्य) [144]

सुतनु हृदयात् प्रत्यादेश-व्यलीकम् अपैतु ते
किमपि मनसस्सम्मोहो मे तदा बलवान् अभूत् ।
स्रजमपि शिरस्यन्धः क्षिप्तां धुनोत्यहिशङ्कया
प्रबलतमसाम् एवं प्रायः शुभेष्वपि वृत्तयः ।। 7 – 25 ।।[145]

शकुन्तला – उत्थेदु अय्यउत्तो । णं मम सुहपदिबन्धअं पुराकिदं तेसु दिअसेसु परिणामाभिमुहआसि । जेण साणुक्कोसो वि अय्यउत्तो मए तधाविओ संवुत्तो । (उत्तिष्ठत्वार्यपुत्रः । ननु मम सुखप्रतिबन्धकं पुराकृतं तेषु दिवसेषु परिणामाभिमुखम् आसीद् । येन सानुक्रोशोऽप्यार्यपुत्रो

---

[11] इतः पूर्वम्- "हिअअ, समस्सस समस्सस । पहरिअ णिव्वुत्तमच्छरेण अणुकम्पिदम्हि देव्वेण ।" इत्येका स्वगतोक्तिरपि वर्तते । किन्तु सा प्रक्षिप्ता प्रतिभाति ।

[12] काश्मीर-पाठे, दाक्षि.-पाठे च " आर्यपुत्र " इत्यधिकं पठ्यते । मै.-बं.-पाठयोर्नास्त्ययं शब्दः । यतो ह्यत्रोत्तरवर्तिनि श्लोके जयेत्यस्यैवोल्लेखो विद्यते ।

[13] विरहिण्याः शकुन्तलायाः कृते मैथिल-पाठान्तरमेव समीचीनं प्रतिभाति ।, का.-पाठे"ऽसंस्कारपाटलौष्ठमि" ति विशेषणं न प्रसंगोचितम्, अतस्त्याज्यम् ।

मयि तथाविधस्संवृत्तः ।) [146]

(राजोत्तिष्ठति) [147]

शकुन्तला – अध कधं अय्यउत्तेण सुमरिदो अअं जणो । (अथ कथमार्यपुत्रेण स्मृतोऽयं जनः ।) [148]

राजा – उद्धृतशल्यविष(श)दः करोमि, करिष्यामि । [149]

मोहान् मया सुतनु पूर्वम् उपेक्षितस्ते
यो बाष्पबिन्दुरधरं परिधावमानः ।
तं तावद् आकुलित-पक्ष्म-विलग्नम् अद्य
कान्ते प्रमृज्य विगतानुशयो भवामि ।। 7 – 26 ।। [150]

(यथोक्तमनुतिष्ठति) [151]

शकुन्तला – (प्रमृष्टबाष्पा, नाममुद्रां दृष्ट्वा) अय्यउत्त, णणु तं अङ्गुलीअं । (आर्यपुत्र, ननु तद् अङ्गुलीयम् ।) [152]

राजा – अथ किम् । अस्माद् अद्भुतोपलम्भान् मया स्मृतिर्लब्धा । [153]

शकुन्तला – सुमुहिकादुं खणेण जं तदा अय्यउत्तस्स पच्चक्खकरणे दुल्लहं मे संवुत्तम् । (सुमुखीकर्तुं क्षणेन यत् तदार्य्यपुत्रस्य प्रत्यक्षकरणे दुर्लभं मे संवृत्तम् ।) [154]

राजा – तेन ह्यृतुसमागमाशंसि प्रतिपाद्यतां लता कुसुमम् । [155]

शकुन्तला – ण से वीससामि । अय्यउत्तो एव णं धारेदु । (नास्य विश्वसामि । आर्यपुत्र एवैनद् धारयतु ।) [156]

(प्रविश्य) **मातलिः –** दिष्ट्या धर्मपत्नीसमागमेन पुत्रमुखदर्शनेन चायुष्मान् वर्धते । [157]

राजा – सुहृत्संपादितत्वाद् उत्तरफलो हि मनोरथः । मातले, न खलु विदितोऽयम् आखण्डलस्यार्थः । [158]

मातलिः – (सस्मितम् । किमीश्वराणां परोक्षम् [14]। एहि, भगवांस्ते मारीचो दर्शनं वितरति । [159]

राजा – शकुन्तले, अवलम्ब्यतां पुत्रः । त्वां पुरस्कृत्य भगवन्तं द्रष्टुमिच्छामि ।[160]

शकुन्तला – अरिहामि अय्यउत्तेण सह समीवं गन्तुम् । (अर्हाम्यार्यपुत्रेण सह, समीपं गन्तुम्?।) [161]

राजा – आचरितमेतद् अभ्युदयकालेषु । एहि एहि । (सर्वे परिक्रामन्ति) [162]

(ततः प्रविशत्यदित्या सार्धम् अर्धासनस्थो मारीचः) [163]

मारीचः – (राजानम् अवलोक्य) दाक्षायणि, [164]

पुत्रस्य ते रणशिरस्ययम् अग्रगामी
दुःषन्त इत्यभिहितो भुवनस्य भर्ता ।
चापेन यस्य विनिवर्तितकर्म जातं
तत्कोटिमत् कुलिशम् आभरणं मघोनः ।। 7 – 27 ।।[165]

अदितिः – संभावणीआ से खु आकिदि । (सम्भावनीयास्य खल्वाकृतिः ।) [166]

मातलिः – भूतलपते, एतौ पुत्रप्रीतिपिशुनेन चक्षुषा दिवौकसां पितरावक्लोकयतः । तदुपसर्पतु । [167]

राजा – मातले,

---

[14] काश्मीर-पाठे वाक्यमिदं नास्ति । किन्तु तद् भवितुमर्हति । मै.-पाठानुरोधाद् गृहीतमिदम् ।

प्राहुर्द्वादशधा स्थितस्य मुनयो यत्तेजसः कारणं
भर्तारं भुवनत्रयस्य सुषुवे यद् यज्ञभागेश्वरम् ।
यस्मिन्नात्मभावः परोऽपि पुरुषश्चक्रे भवायास्पदं
ब्रह्मानन्तरविश्वयोनिसहितं द्वन्द्वं तदेतद् वशी ।। 7 – 28 ।। [168]

मातलिः – अथ किम् । [169]

राजा – (प्रणिपत्य) उभावपि वां वासवनियोज्यो दुःषन्तः प्रणमति । [170]

मारीचः – वत्स, चिरं पृथिवीं पालय । [171]

अदितिः – अप्पदिरहो होहि । (अप्रतिरथो भव ।) [172]

शकुन्तला – दारकेण सहिता पादवन्दणं करेमि । (दारकेण सहिता पादवन्दनं करोमि ।) [173]

मारीचः – वत्से, चिरम् अविधवा भव । [174]

आखण्डलसमो भर्ता जयन्तप्रतिमस्सुतः ।
आशीरन्या न ते योज्या पौलोमीमङ्गला भव ।। 7 – 29 ।। [175]

अदितिः – जादे, भट्टिणो बहुमदा होहि । अअं च दे देहओ वच्छओ उभअपक्खं अलंकरेदु । ता उवविसध ।

(जाते, भर्तुर्बहुमता भव । अयं च ते देहजो वत्सक उभयपक्षम् अलङ्करोतु ।
तद् उपविशत ।) [176]

(सर्वे प्रजापतिनाभिहितम् आसनम् उपविशन्ति) [177]

मारीचः – (एकैकम् निर्दिशन्) [178]

दिष्ट्या शकुन्तला साध्वी,
सदपत्यमिदम्, भवान् ।
श्रद्धा वित्तं विधिश्चेति
त्रितयं तत् समागतम् ।। 7 – 30 ।। [179]

राजा – भगवन्, प्राग् अभिप्रेता सिद्धिः, पश्चात् दर्शनम् । इत्यपूर्वो भगवतोऽनुग्रहः ।
पश्यतु भगवान् । [180]

उदेति पूर्वं कुसुमं, ततः फलं,
घनोदयः प्राक् तदनन्तरं पयः ।
निमित्तनैमित्तकयोरयं विधि-
स्तव प्रसादस्य पुरस्तु संपदः ।। 7 – 31 ।।[181]

मातलिः – एवं विश्वगुरवः प्रसीदन्ति । [182]

राजा – भगवन्, इमामाज्ञाकरीं वो गान्धर्वेण विवाहविधिनोपयम्य कस्यचित्कालस्य बन्धुभिरानीतां स्मृतिशैथिल्यात् प्रत्यादिशन् नपराद्धोऽस्मि तत्रभवतः कण्वस्य । पश्चाद् एनाम् अङ्गुलीयक-दर्शनाद् आरूढस्मृतिरूढपूर्वाम् अनुगतोऽस्मि । तच्चित्रमेव मे प्रतिभाति । [183]

यथा गजे नेतरपक्षरूपे(?),
तस्मिन्नतिक्रामति संशयस्स्यात् ।
पदानि दृष्ट्वा तु भवेत् प्रतीति-
स्तथाविधो मे मनसो विकारः ।। 7 – 32 ।।[184]

मारीचः – वत्स, अलम् आत्मापचारशङ्कया । सम्मोहोऽपि त्वय्युपपन्नः । यतः श्रूयताम् – [185]

राजा - अवहितोऽस्मि । [186]

मारीचः – यदैवाप्सरस्तीर्थावतरणात् प्रत्यक्षवैक्लव्यां शकुन्तलाम् आदाय मेनका दाक्षायणीसकाशमागता । तदैव ध्यानादधिगतोऽस्मि । दुर्वाससः शापादियं तपस्विनी सहधर्मचारिणी प्रत्यादिष्टा, नान्यथेति । स चाङ्गुलीयकदर्शनावसरः । [187]

राजा – (सोच्छ्वासम्) एषोऽहं वचनीयान् मुक्तोऽस्मि । [188]

शकुन्तला – (आत्मगतम्) दिट्ठिआ अकामपच्चादेसी अय्यउत्तो । ण उण सत्तं अत्ताणअं सुमरामि । अधवा, ण सुदो धुवं अण्णहिअआए मए सावो । जदो सहीहिं अच्चादरेण सन्दिट्ठम्हि भत्तुणो अङ्गुलीअअं देसहे त्ति । (दिष्ट्याऽकामप्रत्यादेश्यार्यपुत्रः । न पुनश्शप्तम् आत्मानं स्मरामि । अथवा न श्रुतो ध्रुवम् अन्यहृदयया मया शापः । यतस्सखीभ्याम् अत्यादरेण सन्दिष्टाऽस्मि भर्तुर् अङ्गुलीयकं दर्शयेति ।) [189]

मारीचः – वत्से, विदितार्थाऽसि । तदिदानीं सहधर्मचारिणं प्रति न त्वया मन्युः कर्तव्यः । [190] पश्य,

शापाद् इति प्रतिहतस्मृतिलोपरूक्षे
भर्तर्यपेततमसि प्रभुता तथैव ।
छाया न मूर्छति मलोपहतप्रसादे,
शुद्धे तु दर्पणतले सुभगावकाशा[15] ।। 7 – 33 ।। [191]

राजा – यथा भगवान् आह । [192]

मारीचः –वत्स, कच्चिद् अभिनन्दितस्त्वया विधिवदस्माभिरनुष्ठितजातकर्मा पुत्र एष शाकुन्तलेयः । [193]

राजा – भगवन्नत्र खलु मे वंशप्रतिष्ठा । [194]

मारीचः – तथा तत् । भाविनं चक्रवर्तिनं एनम् अवगच्छतु भवान् । [195] पश्य,

रथेनानुद्धातस्तिमितगतिरातीर्णजलधिः
पुरा सप्तद्वीपां जयति वसुधाम् अप्रतिरथः ।
इहायं सत्त्वानां प्रसभदमनात् सर्वदमनः
पुनर्यास्यत्याख्यां भरत इति सर्वस्य भरणात् ।। 7 – 34 ।। [196]

राजा – भगवता कृतसंस्कारे सर्वम् अस्मिन् आशंसामहे । [197]

अदितिः – इमाए आनन्दमणोरहसम्पत्तिए कण्णो वि दाव सुदवित्थारो करिअदु । मेणआ इध य्येव सण्णिहिदा । (अनया आनन्दमनोरथसम्पत्त्या कण्वोऽपि तावच्छ्रुतविस्तारः क्रियताम् । मेनकेहैव सन्निहिता ।) [198]

शकुन्तला – मणोगदं मे मन्तिदं भअवदीए । (मनोगतं मे मन्त्रितं भगवत्या ।) [199]

मारीचः – सर्वमेतत् तपःप्रभावात् प्रत्यक्षं तत्रभवतः कण्वस्य । [200]

राजा – हन्त खलु न स्स(स)मभिक्रुद्धो गुरुः । [201]

मारीचः – तथाप्यसौ प्रियमस्माभिः श्रावयितव्यः । कः कोऽत्र भोः । [202]

(प्रविश्य) **शिष्यः** – भगवन्, अयमस्मि । [203]

---

[15] निखिलाप्युक्तिरियं शकुन्तलामुद्दिश्य कथिता, किन्तु नास्ति तस्याः प्रतिवचनम् । अतोऽनुमीयते यदत्र शकुन्तलायाः किमपि वाक्यं विलुप्तं स्याद् ।, मैथिल-बंगीयादिषु पाठेष्वपि नोपलभ्यते तस्याः प्रतिवचनम् ।

मारीचः – वत्स गालव, मद् वचनाद् इदानीमेव विहायसा गत्या तत्रभवते कण्वाय प्रियम् आवेदय । यथा शकुन्तला दुर्वाससः शापविनिवृत्तिसमुपागतस्मृतिना दुःषन्तेन प्रतिगृहीतेति । [204]

शिष्यः – यदाज्ञापयति भगवान् । (प्रणम्य निष्क्रान्तः) [205]

मारीचः – (राजानं प्रति) वत्स, त्वमपि सापत्यदारः सन्निहितं सख्युराखण्डलस्य रथमारुह्य स्वराजधानीं प्रतिष्ठस्व । [206]

राजा – यदाज्ञापयति भगवान्[16] । [207]

मारीचः – वत्स, तद् उच्यताम् । किं ते भूयः प्रियम् उपहरामि । [208]

राजा – (सहर्षम् प्रणमन्) यद् अतः परं मे भगवान् प्रसादं कर्तुम् अर्हति । [209]

ततः – (**भरतवाक्यम्**)

प्रवर्ततां प्रकृतिहिताय पार्थिव-
स्सरस्वती श्रुतिमहतां[17] महीयताम् ।
ममापि च क्षपयतु नीललोहितः
पुनर्भवं परिगतभक्तिरात्मभूः ।। 7 – 35 ।।[210]

।। इति निष्क्रान्तास्सर्वे ।। [211]

।। इति सप्तमोऽङ्कः ।।[212]
।। समाप्तं चेदम् अभिज्ञानशकुन्तलाख्यं नाटकम् ।।

[16] का.-मै.-बं.-पाठेष्वितः परं मारीचस्य मुखे "क्रतुभिरुचितभागांस्त्व0", "तव भवतु बिडौजाः प्राज्यवृष्टिः0" इति च । उभावपि श्लोकौ प्रक्षिप्तौ ।, (का.-पाठे केवलं प्रथम एव), (प्रक्षिप्त-श्लोक-संख्ये- 33 एवं 34)

[17] "श्रुतिमहती"त्येतस्मिन् पाठभेदेऽपि समाना मौलिकता दरीदृश्यते ।, किन्तु "श्रुतमहताम्" पाठः परवर्तिनि काले समायातः प्रतीयते ।

परिशिष्ट – 3

।। प्रक्षिप्त श्लोक सूचि ।।

क्रम	*अंक*	*प्रथम चरण की पदावली*	*वाचना का नाम*
	1	इसि चुम्बिआइं भमरेहिं0 (परिवर्तित-पाठ)	दाक्षिणात्य
1	1	न खलु न खलु बाणः संनिपात्योऽयमस्मिन्0	मैथिली वाचना
2	1	जन्म यस्य पुरोर्वंशे युक्तरूपमिदं तव0	दाक्षिणात्य
3	1	कठिनमपि मृगाक्ष्या वल्कलं कान्तिरूपम्0	बंगाली
4	1	लोलां ... वाद्यैर्विना नर्तकी0 –श्रीडमरुवल्लभ-पंत की आवृत्ति, पृ. 21	उत्कलीय
5	1	तुरगखुरहतस्तथा हि रेणु0 ।	काश्मीरी-आदि
6	2	न नमयितुमधिज्यमुत्सहिष्ये0 ।	काश्मीरी-आदि
7	2	अनवरतधनुर्ज्यास्फालनक्रूरपूर्वम्0 ।	काश्मीरी-आदि
8	3	अद्यापि नूनं हरकोपवह्निन0	काश्मीरी
9	3	वृथैव संकल्पितशतै0	मैथिली
10	3	संमीलन्ति न बन्धनकोशाः0	मैथिली
11	3	शशिकरविशदान्य0	बंगाली
12	3	अयं स यस्मात् प्रणयावधीरणाम्0	मैथिली
13	3	अपराधमिमं ततः सहिष्ये0	काश्मीरी
14	3	अप्यौत्सुक्ये महति दयितप्रार्थना0	काश्मीरी
15	3	गान्धर्वेण विवाहेन बह्व्योः मुनिकन्यका0	मैथिली
16	3	हरकोपाग्निदग्धस्य दैवेनामृतवर्षिणा0 ।	काश्मीरी
17	3	चारुणा स्फुरितेनायमपरिक्षतकोमलः0 ।	का-मै-बं.
18	3	अपरिक्षतकोमलस्य यावत्0 (परिवर्तति-पाठ)	दाक्षिणात्य
19	3	रहः प्रत्यासत्तिं यदि सुवदना यास्यति0	काश्मीरी
20	4	यात्येकतोस्तशिखरं पतिरोषधीनाम्0	काश्मीरी
21	4	अन्तर्हिते शशिनि सैव कुमुद्वतीम्0	काश्मीरी
---	4	अनुमतगमना शकुन्तला तरुभिः0 (सम्भवतः)	काश्मीरी
22	5	मय्येवमस्मरणदारुणचित्तवृत्तौ0	मैथिली
23	5	तुम्हे य्येव पमाणं जाणीध, धम्मत्थिदिं0	काश्मीरी
24	6	चूतं हर्षितपिककं जीवित0 (परिवर्तित-पाठ)	दाक्षिणात्य
25	6	चूतानां चिरनिर्गतापि कलिका बध्नाति0	काश्मीरी
26	6	उपहितस्मृतिरङ्गुलिमुद्रया0	काश्मीरी
27	6	दीर्घापाङ्गविसारि नेत्र0	मैथिली
28	6	अस्यास्तुंगमिव स्तनद्वयम्0- (श्रीडमरुवल्लभ)	बंगाली-उत्कलीय
29	6	यद्यत् साधु न चित्रेस्मिन्0	मैथिली
30	6	प्रागेव जरसा कम्पः0	काश्मीरी-
31	6	तस्याग्रभूमेर्गृहनीलकण्ठै0	मैथिली
32	6	अहन्यहन्यात्मनः एव0	मैथिली
33	7	क्रतुभिरुचितभागांस्त्व0	काश्मीर
34	7	तव भवतु बिडौजाः प्राज्यवृष्टिः प्रजासु0	मैथिली

परिशिष्ट – 2

।। पाँच रंगावृत्तियों में श्लोकों का स्वीकार / अस्वीकार ।।

इस परिशिष्ट में काश्मीरी रंगावृत्ति से आरम्भ करके मैथिली, बंगाली, दाक्षिणात्य और देवनागरी रंगावृत्ति तक की पाठयात्रा में श्लोक-सम्बन्धी वृद्धि-ह्रास का एवं अमुक श्लोकों के उपस्थिति क्रमांक में हुए परिवर्तनों का जो चित्र दिख रहा है उसको कोष्टकाकार में दिया जाता है । तथा विशेष रूप में पुनर्गठित प्रथम अनुमित पाठ में किन श्लोकों का स्वीकार हुआ है ?- वह भी जोड दिया हैः--

अंक	श्लोक का प्रथम चरण	काश्मीरी-क्रम	मैथिली-क्रम	बंगाली-क्रम	दाक्षिणात्य-क्रम	देवनागरी-क्रम	पुनर्गठित-क्रम
	प्रथमोऽङ्कः ।।						
1	या सृष्टिः स्रष्टुराद्या वहति विधिहुतं	1	1	1	1	1	1
1	आ परितोषाद् विदुषां न साधु	2	2	2	2	2	2
1	सुभगसलिलावगाहाः पाटलि0	3	3	3	3	3	3
1	खणचुम्बिआइँ भमरेहिँ उअह0	4	4	4	4	4	4
1	तवास्मि गीतरागेण हारिणा0	5	5	5	5	5	5
1	कृष्णसारे ददच्चक्षुस्त्वयि 0	6	6	6	6	6	6
1	ग्रीवाभङ्गाभिरामं मुहु0	7	7	7	7	7	7
1	मुक्तेषु रश्मिषु निरायतपूर्व0	8	8	8	8	8	8
1	यदालोके सूक्ष्मं व्रजति सहसा0	9	9	9	9	9	9
1	न खलु न खलु बाणः संनिपात्यो0	--	10	10	(10)	--	--
1	तत्साधु कृतसंधानं प्रतिसंहर0	10	11	11	11	10	10
1	जन्म यस्य पुरोर्वंशे युक्तरूपं0	--	--	--	12	11	--
1	धन्यास्तपोधनानां प्रतिहतविघ्ना0	11	12	12	13	12	11
1	नीवाराः शुककोटरार्भकमुख0	12	13	13	14	13	12
1	कुल्याम्भोभिः पवनचपलैः 0	13	14	14	--	--	13
1	शान्तमिदमाश्रमपदं स्फुरति 0	14	15	15	15	14	14
1	शुद्धान्तदुर्लभमिदं वपुराश्रम0	15	16	16	16	15	15
1	इदं किलाव्याजमनोहरं वपु0	16	17	17	17	16	16
1	इदमुपहितसूक्ष्मग्रन्थिना0	--	18	18	--	--	17
1	सरसिजमनुविद्धं शैवलेनापि0	17	19	19	18	17	18
1	कठिनमपि मृगाक्ष्या वल्कलं0	--	--	20	--	--	--
1	अधरः किसलयरागः कोमल0	18	20	21	19	18	19
1	असंशयं क्षत्रपरिग्रहक्षमा0	19	21	22	20	19	20

1	यतो यतः षट्चरणो भिवर्तते0	--	22	23	--	--	21
1	चलापाङ्गां दृष्टिं स्पृशसि0	20	23	24	21	20	22
1	कः पौरवे वसुमतीं शासति0	21	24	25	22	21	23
1	मानुषीभ्यः कथं नु स्यादस्य0	22	25	26	23	22	24
1	वैखानसं किमनया व्रतमाप्र0	23	26	27	24	23	25
1	भव हृदय साभिलाषं संप्रति0	24	27	28	25	24	26
1	अनुयास्यन् मुनितनयां सहसा0	25	28	29	26	25	27
1	स्रस्तांसावतिमात्रलोहिततलौ0	26	29	30	27	26	28
1	वाचं न मिश्रयति यद्यपि0	27	30	31	28	27	29
1	तुरगखुरहतस्तथा हि रेणुर्विटप0	28	31	32	29	28	---
1	तीव्राघातादभिमुखतरुस्कन्ध0	29	32	33	30	29	30
1	गच्छति पुरः शरीरं धावति0	30	33	34	31	30	31

	द्वितीयोऽङ्कः ।।	का.-क्रम	मै.-क्रम	बं.-क्रम	दाक्षि.-क्रम	देव.-क्रम	पुनर्-गठित
2	कामं प्रिया न सुलभा मनस्तु0	1	1	1	1	1	1
2	स्निग्धं वीक्षितमन्यतो पि नयने	2	2	2	2	2	2
2	न नमयितुमधिज्यमुत्सहिष्ये0	3	3	3	3	3	---
2	अनवरतधनुर्ज्यास्फालन0	4	4	4	4	4	---
2	मेदश्छेदकृशोदरं लघु भवत्यु0	5	5	5	5	5	3
2	गाहन्तां महिषा निपानसलिलं0	6	6	6	6	6	4
2	शमप्रधानेषु तपोवनेषु गूढं0	7	7	7	7	7	5
2	ललितोप्सरोभवं किल मुनेरप	8	9	9	8	8	6
2	निराकृतनिमेषाभिर्नेत्रपंक्ति0	9	8	8	--	--	7
2	चित्ते निवेश्य परिकल्पित0	10	10	10	9	9	8
2	अनाघ्रातं पुष्पं किसलयमलूनं0	11	11	11	10	10	9
2	अभिमुखे मयि संवृतमीक्षितं0	12	12	12	11	11	10
2	दर्भाङ्कुरेण चरणः क्षत0	13	13	13	12	12	11
2	यदुत्तिष्ठति वर्णेभ्यो नृपाणां0	14	14	14	13	13	12
2	अध्याक्रान्ता वसतिरमुना0	15	15	15	14	14	13
2	नैतच्चित्रं यदयमुदधि0	16	16	16	15	15	14
2	अनुकारिणि पूर्वेषां युक्ति0	17	17	17	16	16	15
2	कृत्ययोर्भिन्नदेशत्वाद्0	18	18	18	17	17	16
2	क्व वयं क्व परोक्षमन्मथो मृग0	19	19	19	18	18	17

	तृतीयोऽङ्कः ।।	का.-क्रम	मै.-क्रम	बं.-क्रम	दाक्षि.-क्रम	देव. क्रम	पुनर्-घटित
3	का कथा बाणसंधाने ज्या0	1	1	1	1	1	1
3	जाने तपसो वीर्यं सा बाला0	2	2	2	2	2	2
3	अद्यापि नूनं हरकोपवह्निन0	3	3	3	--	--	--
3	तव कुसुमशरत्वं शीतरश्मि0	4	4	4	3	3	3
3	अनिशमपि मकरकेतुर्मनसो0	--	5	5	--	--	4
3	वृथैव संकल्पशतैरजस्रमनङ्ग0	--	6	6	--	--	--
3	संमीलन्ति न तावद् बन्धनको	--	7	7	--	--	--
3	शक्योऽरविन्दसुरभिः कणवाही	5	8	8	4	4	5
3	अभ्युन्नता पुरस्तादवगाढा0	6	9	9	5	5	6
3	स्तनन्यस्तोशीरं प्रशिथिल0	7	10	10	6	6	7
3	शशिकरविशदान्यास्तथा0	--	--	11	--	--	--
3	क्षामक्षामकपोलमानन0	8	11	12	7	7	8
3	पृष्टा जनेन समदुःखसुखेन0	9	12	13	8	8	9
3	स्मर एव तापहेतुर्निवापयिता0	10	13	14	9	9	10
3	अशिशिरतरैरन्तस्तापैर्विवर्ण0	11	14	15	10	10	11
3	अयं स ते तिष्ठति संगमोत्सुको0	12	15	16	11	11	12
3	अयं स यस्मात् प्रणयावधीरणा	--	16	17	--	--	--
3	उन्नमितैकभ्रूलतमाननमस्याः0	13	17	18	12	12	13
3	तुज्झ ण आणे हिअअं मम0	14	18	19	13	13	14
3	तपति तनुगात्रि मदनस्त्वाम्0	15	19	20	14	14	15
3	संदष्टकुसुमशयनान्याशु0	16	20	21	15	15	16
3	इदमनन्यपरायणमन्यथा0	17	21	22	16	16	17
3	परिग्रहबहुत्वे पि द्वे प्रतिष्ठे0	18	22	23	17	17	18
3	अपराधमिमं ततः सहिष्ये यदि	19	23	24	--	--	--
3	किं शीकरैः क्लमविमर्दिभि0	20	24	25	18	18	19
3	उत्सृज्य कुसुमशयनं नलिनी0	21	25	26	19	19	20
3	अप्यौत्सुक्ये महति दयित0	22	26	27	--	--	--
3	गान्धर्वेण विवाहेन बह्व्यो थ0	--	27	28	20	20	--
3	त्वं दूरमपि गच्छन्ती हृदयं0	23	28	29	--	--	21
3	अनिर्दयोपभोग्यस्य रूपस्य0	24	29	30	--	--	22
3	मणिबन्धनगलितमिदं संक्रान्तो	25	30	31	--	--	23
3	अनेन लीलाभरणेन ते प्रिये0	26	31	32	--	--	24
3	पिपासाक्षामकण्ठेन याचितं0	27	32	33	--	--	25

3	हरकोपाग्निदग्धस्य दैवेनामृत0	28	33	34	--	--	---
3	अयं स ते श्यामलतामनोहरं0	29	34	35	--	--	26
3	चारुणा स्फुरितेनायमपरिक्षत0	30	35	36	--	--	---
3	इदमप्युपकृतिपक्षे सुरभि मुखं0	31	36	37	--	--	27
3	अपरिक्षतकोमलस्य यावत्कुसुम	--	--	--	21	21	--
3	मुहुरङ्गुलिसंवृत्ताधरोष्ठं0	32	37	38	22	22	28
3	तस्याः पुष्पमयी शरीरलुलिता	33	38	39	23	23	29
3	रहः प्रत्यासत्तिं यदि सुवदना0	34	39	40	--	--	--
3	सायंतने सवनकर्मणि संप्रवृत्ते0	35	40	41	24	24	30

	चतुर्थोऽङ्कः ।।	का.-क्रम	मै.-क्रम	बं.-क्रम	दाक्षि. क्रम	देव. क्रम	पुनर्-गठित
4	विचिन्तयन्ती यमनन्यमानसा0	1	1	1	1	1	1
4	कर्कन्धूनामुपरि तुहिनं रञ्जय0	2	2	4	--	--	2
4	पादन्यासं क्षितिधरगुरोर्मूर्ध्नि0	3	3	5	--	--	3
4	यात्येकतो स्तशिखरं पतिरोष	4	4	2	2	2	--
4	अन्तर्हिते शशिनि सैव कुमुद्वती	5	5	3	3	3	--
4	दुःषन्तेनाहितं तेजो दधानां0	6	6	6	4	4	4
4	क्षौमं केनचिदिन्दुपाण्डु तरुणा0	7	7	7	5	5	5
4	यास्यत्यद्य शकुन्तलेति हृदयं0	8	8	8	6	6	6
4	ययातेरिव शर्मिष्ठा पत्युर्बहुमता	9	9	9	7	7	7
4	अमी वेदीं परितः क्लृप्तधिष्ण्या	10	10	10	8	8	8
4	पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं0	11	11	11	9	9	9
4	अनुमतगमना शकुन्तला सा तरु	13	12	12	10	10	11
4	रम्यान्तरः कमलिनीहरितैः सरो	12	13	13	11	11	10
4	उल्ललइ दब्भकवलं मई0	14	14	14	12	12	12
4	संकल्पितं प्रथममेव मया0	15	15	15	13	13	13
4	यस्य त्वया व्रणविरोहणम्0	16	16	16	14	14	14
4	उत्पक्ष्मणोर्नयनयोरुपरुद्धवृत्तिं0	17	17	17	15	15	15
4	पुडइणिवत्तन्तरिअं वाहरिओ0	18	18	18	--	--	16
4	अज्ज पिएण विणा जं गमेइ	19	19	--	16	16	17
4	अस्मान् साधु विचिन्त्य संयमध	20	20	19	17	17	18
4	शुश्रूषस्व गुरून् कुरु प्रियसखी0	21	21	20	18	18	19
4	अभिजनवतो भर्तुः श्लाघ्ये0	22	22	21	19	19	20
4	यदा शरीरस्य शरीरिणश्च पृथ	23	23	--	--	--	21
4	भूत्वा चिराय सदिगन्तमही0	24	24	22	20	20	22

4	अपयास्यति मे शोकः कथं0	25	25	23	21	21	23
4	अर्थो हि कन्या परकीय एव0	26	26	24	22	22	24

	पञ्चमोऽङ्कः ॥	का.-क्रम	मै.-क्रम	बं.-क्रम	दाक्षि क्रम	देव. क्रम	पुनर्-गठित
5	आचार इत्यधिकृतेन मया0	1	1	1	3	3	1
5	क्षणात्प्रबोधमायाति लंघ्यते0	2	2	2	--	--	2
5	भानुः सकृद्युक्ततुरंग एव0	3	4	4	4	4	3
5	मनुः प्रजाः स्वा इव तन्त्रयित्वा	4	3	3	5	5	4
5	अहिणवमहुलोहभाविओ0	5	8	8	1	1	5
5	रम्याणि वीक्ष्य मधुरांश्च0	6	9	9	2	2	6
5	औत्सुक्यमात्रमवसादयति0	7	5	5	6	6	7
5	स्वसुखनिरभिलाषः खिद्यसे0	8	6	6	7	7	8
5	नियमयसि विमार्गप्रस्थिता0	9	7	7	8	8	9
5	किं तावद् व्रतिनामुपोढतपसां0	10	10	10	9	9	10
5	महाभागः कामं नरपतिरभिन्न0	11	11	11	10	10	11
5	अभ्यक्तमिव स्नातः शुचिर0	12	12	12	11	11	12
5	भवन्ति नम्रास्तरवः फलोद्गमै0	13	13	13	12	12	13
5	केयमवगुण्ठनवती नातिपरि0	14	14	14	13	13	14
5	कुतो धर्मक्रियाविघ्नः सतां0	15	15	15	14	14	15
5	त्वमर्हतां प्राग्रहरः स्मृतो0	16	16	16	15	15	16
5	णावेक्खिओ गुरुअणो इमीअ0	17	17	17	16	16	17
5	सतीमपि ज्ञातिकुलैकसंश्रयां0	18	18	18	17	17	18
5	किं कृतकार्यद्वेषाद् धर्मं प्रति0	19	19	19	18	18	19
5	इदमुपनतमेवं रूपमक्लिष्ट0	20	20	20	19	19	20
5	कृतावमर्शामनुमन्यमानः0	21	21	21	20	20	21
5	व्यपदेशमाविलयितुं समीहसे0	22	22	22	21	21	22
5	स्त्रीणामशिक्षितपटुत्वम्0	23	23	23	22	22	23
5	न तिर्यगवलोकितं भवति चक्षु0	24	24	24	--	--	---
5	मय्येव विस्मरणदारुणचित्तवृ	--	25	25	23	23	--
5	तुम्हे य्येव पमाणं जाणध धम्म	25	26	26	--	--	--
5	अतः समीक्ष्य कर्तव्यं विशेषात्0	26	27	27	24	24	24
5	आ जन्मनः शाठ्यमशिक्षितो0	27	28	28	25	25	25
5	तदेषा भवतः पत्नी त्यज वैनं0	28	29	29	26	26	26
5	यदि यथा वदति क्षितिपस्तथा0	29	30	30	27	27	27

5	कुमुदान्येव शशाङ्कः सविता0	30	31	31	28	28	28
5	मूढः स्यामहमेषा वा वदेन्मिथ्ये	31	32	32	29	29	29
5	सा निन्दन्ती स्वानि भाग्यानि0	32	33	33	30	30	30
5	कामं प्रत्यादिष्टां स्मरामि न0	33	34	34	31	31	31

	षष्ठोऽङ्कः ।।	का.-क्रम	मै.-क्रम	बं.-क्रम	दाक्षि. क्रम	देव. क्रम	पुनर्-ग्रथितः
6	शहये किल ये वि णिन्दिदे0	1	1	1	1	1	1
6	आअम्बहरिअवेण्टं ऊससिअं वि	2	2	2	--	2	2
6	चूतं हर्षितपिककं जीवितसदृशं	--	--	--	2	--	--
6	अर्हसि मे चूताङ्कुर दत्तः कामस्य0	3	3	3	3	3	3
6	चूतानां चिरनिर्गतापि कलिका	4	4	4	4	4	--
6	रम्यं द्वेष्टि यथा पुरा प्रकृतिभिः	5	5	5	5	5	4
6	प्रत्यादिष्टविशेषमण्डनविधि0	6	6	6	6	6	5
6	प्रथमं साराङ्गाक्ष्या प्रियया 0	7	7	7	7	7	6
6	मुनिसुताप्रणयस्मृतिरोधिना0	--	8	8	8	8	7
6	उपहितस्मृतिरङ्गुलिमुद्रया0	8	9	9	--	--	--
6	इतः प्रत्यादिष्टा स्वजनमनुगन्तुं	9	10	10	9	9	8
6	स्वप्नो नु माया नु मतिभ्रमो0	10	11	11	10	10	9
6	तव सुचरितमङ्गुरीय नूनं0	11	12	12	11	11	10
6	एकैकमत्र दिवसे दिवसे मदीयं0	12	13	13	12	12	11
6	कथं नु तं कोमलबन्धुरा0	13	14	14	13	13	12
6	दीर्घापाङ्गविसारिनेत्र0	--	15	15	--	--	--
6	अस्यास्तुंगमिव स्तनद्वयमिदं0	--	--	16	--	--	--
6	यद्यत्साधु न चित्रे स्मिन्0	--	16	17	14	14	--
6	साक्षात् प्रियामुपगतामपहाय0	14	17	18	16	16	13
6	स्विन्नांगुलीनिवेशाद् रेखा0	15	18	19	15	15	14
6	कार्या सैकतलीनहंसमिथुना0	16	19	20	17	17	15
6	कृतं न कर्णार्पितबन्धनं0	17	20	21	18	18	16
6	एषा कुसुमनिषण्णा तृषिता0	18	21	22	19	19	17
6	अक्लिष्टबालतरुपल्लव0	19	22	23	20	20	18
6	दर्शनसुखमनुभवतः साक्षादिव0	20	23	24	21	21	19
6	प्रजागरात् खिलीभूत0	21	24	25	22	22	20
6	येन येन वियुज्यन्ते प्रजाः0	22	25	26	23	23	21
6	संरोपिते प्यात्मनि धर्मपत्नी0	23	26	27	24	24	22

6	अस्मात् परं बत यथास्मृति0	24	27	28	25	25	23
6	आमूलशुद्धसंततिकुलमेतत्0	25	28	29	--	--	24
6	प्रागेव जरसा कम्पः सविशेषेण	26	29	30	--	--	--
6	तस्याग्रभागाद् गृहनीलकण्ठै0	27	30	31	--	--	--
6	अहन्यहन्यात्मन एव ताव0	28	31	32	26	26	--
6	एष त्वामभिनवकण्ठशोणिता	29	32	33	27	27	25
6	यो हनिष्यति वध्यं त्वां रक्ष्यं0	30	33	34	28	28	26
6	कृताः शरव्यं हरिणा तवासुरा0	31	34	35	29	29	27
6	सख्युस्ते स किल शतक्रतोरवध्य	32	35	36	30	30	28
6	ज्वलति चलितेन्धनो ग्निर्विप्रकृ	33	36	37	31	31	29
6	त्वन्मतिः केवला तावत् प्रतिपा	34	37	38	32	32	30

	सप्तमोऽङ्कः ।।	का. क्रम	मै. क्रम	बं. क्रम	दाक्षि. क्रम	देव. क्रम	पुन-र्गठित
7	अविअगमणं कंचण अण्णं च	1	--	--	--	--	1
7	उपकृत्य हरेस्तस्या भवाल्लंघु0	2	1	1	1	1	2
7	अन्तर्गतप्रार्थनमन्तिकस्थं0	3	2	2	2	2	3
7	सुखपरस्य हरेरुभयैः कृतं0	4	3	3	3	3	4
7	सिध्यन्ति कर्मसु महत्स्वपि0	5	4	4	4	4	5
7	विच्छित्तिशेषैः सुरसुन्दरीणां	6	5	5	5	5	6
7	त्रिस्रोतसं वहति यो गगनप्रति	7	6	6	6	6	7
7	अयमगविवरेभ्यश्चातकैर्नि0	8	7	7	7	7	8
7	शैलानामवरोहतीव शिखराद्0	9	8	8	8	8	9
7	स्वायंभुवान्मरीचेर्यः प्रबभूव0	10	9	9	9	9	10
7	उपोढशब्दा न रथाङ्गनेमयः0	11	10	10	10	10	11
7	वल्मीकार्धनिमग्नमूर्तिरुरग्0	12	11	11	11	11	12
7	प्राणानामनिलेन वृत्तिरुचिता0	13	12	12	12	12	13
7	मनोरथाय नाशंसे किं बाहो0	14	13	13	13	13	14
7	अर्धपीतस्तनं मातुरामर्दक्लिष्ट0	15	14	14	14	14	15
7	महतस्तेजसो बीजं बालो यं0	16	15	15	15	15	16
7	प्रलोभ्यवस्तुप्रणयप्रसारितो0	17	16	16	16	16	17
7	आलक्ष्यदन्तमुकुलान0	18	17	17	17	17	18
7	एवमाश्रमविरुद्धवृत्तिना0	19	18	18	18	18	19
7	अनेन कस्यापि कुलांकुरेण0	20	19	19	19	19	20
7	भवनेषु सुधासितेषु पूर्वं क्षिति0	21	20	20	20	20	21

7	वसने परिधूसरे वसाना नियम	22	21	21	21	21	22
7	स्मृतिभिन्नमोहतमसो दिष्ट्या0	23	22	22	22	22	23
7	बाष्पेन प्रतिषिद्धे पि जयशब्दे0	24	23	23	23	23	24
7	सुतनु हृदयात् प्रत्यादेशव्यलीक	25	24	24	24	24	25
7	मोहान्मया सुतनु पूर्व0	26	25	25	25	25	26
7	पुत्रस्य ते रणशिरस्ययम्0	27	26	26	26	26	27
7	प्राहुर्द्वादशधा स्थितस्य मुनयो0	28	27	27	27	27	28
7	आखण्डलसमो भर्ता जयन्त0	29	28	28	28	28	29
7	दिष्ट्या शकुन्तला साध्वी0	30	29	29	29	29	30
7	उदेति पूर्वं कुसुमं ततः फलं0	31	30	30	30	30	31
7	यथा गजे साधुसमक्षरूपे0	32	31	31	31	31	32
7	शापादसि प्रतिहता स्मृतिलोप0	33	32	32	32	32	33
7	रथेनानुद्धातस्तिमितगतिना0	34	33	33	33	33	34
7	तव भवतु बिडौजाः प्राज्यवृष्टि	--	34	34	34	--	--
7	क्रतुभिरुचितभागांस्त्वं सुरान्0	35	35	--	--	--	--
7	प्रवर्ततां प्रकृतिहिताय पार्थिवः	36	36	35	35	34	35

निष्कर्षः—

अंक	काश्मीरी	मैथिली	बंगाली	दाक्षिणात्य	देवनागरी	पुनर्गठित
1	30	33	34	31	30	31
2	19	19	19	18	18	17
3	35	40	41	24	24	30
4	26	26	24	22	22	24
5	33	34	34	31	31	31
6	34	37	38	32	32	30
7	36	36	35	35	34	35
योग	**213**	**225**	**225**	**193**	**191**	**198**

सन्दर्भ-ग्रन्थसूचिः-

(क) संस्कृत ग्रन्थाः-

1. अभिज्ञानशकुन्तलम् । (बंगाली वाचना का समीक्षित पाठसम्पादन), सं. रिचार्ड पिशेल, हार्वर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, (प्रथमावृत्ति- 1876, द्वितीयावृत्ति- 1922)
2. अभिज्ञानशकुन्तलम् । (चन्द्रशेखर चक्रवर्ती की सन्दर्भ-दीपिका टीका एवं बंगाली पाठ की समालोचना), सं. वसन्तकुमार म. भट्ट, राष्ट्रीय पाण्डुलिपि मिशन, दिल्ली, 2013
3. अभिज्ञानशकुन्तलम् । (मैथिल-पाठानुगम्), (शङ्कर-नरहरि-कृतव्याख्याद्वयसंयुतम्), सं. श्री रमानाथ झा, मिथिला विद्यापीठ, दरभङ्गा, (बिहार),1957
4. अभिज्ञानशकुन्तलम् । (अंग्रेजी अनुवाद के साथ), सं. शारदा रंजन राय, कलकत्ता, 1908
5. अभिज्ञानशकुन्तलम् । (देवनागरी वाचनानुसारी पाठ), सं. गौरीनाथ शास्त्री, केन्द्रीय साहित्य अकादेमी, दिल्ली, 1983
6. अभिज्ञानशकुन्तलम् । (देवनागरी वाचना का शुद्धतर समीक्षित पाठसम्पादन), सं. पी. एन. पाटणकर, इन्दौर, 1889, 1902
7. अभिज्ञानशकुन्तलम् । (बंगाली वाचनानुसारि), (A Reconstruction of the Abhijnana-sakuntalam), सं. दिलीपकुमार काञ्जीलाल, संस्कृत कॉलेज, कोलकाता-700073, 1980
8. अभिज्ञानशाकुन्तलम् (रूपप्रकाशन-नाम-टीकया सहितम्), सं. डमरुवल्लभ पन्त, कलकत्ता, 1871
9. अभिज्ञानशकुन्तला नाटकम् । (शारदा-पाण्डुलिपियों में संचरित हुई काश्मीरी वाचना का समीक्षित पाठ-सम्पादन), सं. वसन्तकुमार म. भट्ट, प्रका. राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, दिल्ली, 2018.
10. अभिज्ञानशाकुन्तलम् । (किशोरकेलि व्याख्या एवं राष्ट्रभाषानुवाद), सं. कान्तानाथ शास्त्री तेलंग, चौखम्बा संस्कृत सीरीझ आफिस, वाराणसी, 1960
11. अभिज्ञानशाकुन्तलम् । (राघवभट्टकृतार्थद्योतनिकया सनाथीकृतम्), सं. नारायण राम, राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, दिल्ली, 2006
12. अभिज्ञानशाकुन्तलम् । (काटयवेम-कृत-टीकया सहितम्), सं. श्रीचेलमचेर्ल रङ्गाचार्य, आन्ध्रप्रदेश साहित्य अकादेमी, हैदराबाद, 1982
13. अभिज्ञानशाकुन्तलम् । (अभिरामस्य टीकया संभूषितम्), प्रका. श्रीवाणी-विलास मुद्रणालय, श्रीरंगम्, 1917
14. अभिज्ञानशाकुन्तलम् । (श्रीनिवासाचार्यकृतटीकया सहितम्), निर्णय सागर प्रेस, मुंबई, 1966
15. अभिज्ञानशाकुन्तलम् । (घनश्यामकृतसंजीवनटिप्पणसमेतम्), सं. पूनम पंकज रावळ, प्रकाशन - सरस्वती पुस्तक भण्डार, अहमदावाद, 1999
16. अभिज्ञानशाकुन्तलम् । (काश्मीरी वाचना के तथाकथित समीक्षित पाठ के साथ), सं. एस. के. बेलवालकर, (डॉ. वी. राघवन्) साहित्य अकादेमी, दिल्ली, 1965
17. अलंकारमहोदधिः । (नरेन्द्रप्रभसूरिप्रणीतः), सं. लालचन्द्र गांधी, गायकवाड ओरिएन्टल सीरीझ-45, वडोदरा, 1942
18. काव्यप्रकाशः ।, सं. सत्यव्रत सिंहः, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, पुनर्मुद्रित-2009

19. काव्यमीमांसा (राजशेखरकृता), सं. सी. डी. दलाल, ओरिएन्टल इन्स्टीट्युट, वडोदरा, 1934
20. काव्यालंकारसूत्राणि ।, वामनाचार्य-प्रणीतानि ।, सं. बेचन झा, चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, चतुर्थ संस्करण, 1989
21. कालिदास ग्रन्थावली, (हिन्दी अनुवाद के साथ), अनुवादक एवं सम्पादक- श्रीसीताराम चतुर्वेदी, भारत प्रकाशन मन्दिर, अलीगढ, 1963
22. कालिदास ग्रन्थावली । सं. श्रीरेवाप्रसाद द्विवेदी, बी. एच. यु., वाराणसी, 1986
23. कालिदास ग्रन्थावली । (हिन्दी अनुवाद के साथ), सं. श्रीरेवाप्रसाद द्विवेदी, कालिदास अकादेमी, उज्जयिनी, 2008
24. कालिदास-शब्दानुक्रम-कोशः ।, सं. श्रीरेवाप्रसाद द्विवेदी एवं डॉ. सदाशिवकुमार द्विवेदी, कालिदास संस्थान, 28, महामना पुरी, वाराणसी- (221005), 2017
25. दशरूपकम् । (धनिककृतावलोकटीकासहितः), सं. केशवराव मुसलगाँवकर, चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी, चतुर्थ संस्करण, 2009
26. नाट्यशास्त्रम् (अभिनवभारतीसहितम्), भाग-1-2-3, गायकवाड ओरिएन्टल सीरीझ-36, 68, 124, ओरिएन्टल इन्स्टीट्युट, वडोदरा, 1992, 2001, 2003
27. पाइअ-सद्द-महण्णवो (प्राकृत-शब्द-महार्णवः), सं. हरगोविन्द त्रिकमचंद शेठ, चतुर्थ संस्करण, प्रकाशक- श्रीअरिहन्तसिद्ध सूरि ग्रन्थमाला, लुणावा मंगल भुवन, पालीताणा, 2011
28. प्राकृत-प्रकाशः । (भामहकृतमनोरमाव्याख्यासहितः), सं. मथुराप्रसाद दीक्षित, चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, वि. सं. 2063 का पुनर्मुद्रण ।
29. प्राकृत-व्याकरणम् (श्रीसिद्धहेमशब्दानुशासनस्याष्टमोऽध्यायः ।), सं. वज्रसेनविजयजी, श्रीजैन श्वे. मूर्तिपूजक संघ-शिव, मुंबई, 1994, द्वितीयावृत्तिः ।
30. भारतीय प्राचीन लिपिमाला ।, पं. गौरीशंकर हीराचंद ओझा, मुन्शीराम मनोहरलाल, दिल्ली, 1918, (परिवर्धित तृतीय संस्करण 1959).
31. महाभारतम् (आदिपर्वन्), सं. वी. एस. सुकथंकर, समीक्षितावृत्ति का प्रथम-भाग, भाण्डारकर ओरिएन्टल रिसर्च इन्स्टीट्युट, पूना, 1933.
32. रसार्णवसुधाकरः । (सिंहभूपाल-विरचितः), त्रावणकोर संस्कृत सिरीझ-50, त्रिवेन्द्रम्, 1916
33. वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी ।, सं-अनु. (अस्मद्-गुरवः) श्रीबालकृष्ण पञ्चोलिनः, चौखम्बा संस्कृत सीरीझ, वाराणसी, 1969
34. वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी । सं. गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1971
35. शृङ्गारप्रकाशः (भाग 1 एवं 2), सं. श्रीरेवाप्रसाद द्विवेदी एवं डॉ. सदाशिवकुमार द्विवेदी, प्रका. इन्दिरा गाँधी राष्ट्रिय कला केन्द्र, दिल्ली एवं कालिदास संस्थान, वाराणसी, 2007
36. सरस्वतीकण्ठाभरणम् ।, काव्यमाला सिरीझ, मुंबई, 1924
37. सूक्तिमुक्तावली (जल्हण-विरचिता), गायकवाड ओरिएन्टल सिरीझ-85, सं. बी. भट्टाचार्य, एवं श्रीकृष्णमाचार्य (वडताल, गुजरात), वडोदरा,1938
38. हर्षचरितम् (बाणभट्टकृतम्), सं. पी. वी. काणे, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1986

(ख) अंग्रेजी ग्रन्थः-

1. An Alphabetical Index of Sanskrit Manuscripts in the Government Oriental Manuscripts Library, (Vol. 1 & 2), Ed. S. Kuppuswamy Sastru & P. P. Subrahmanya Sastri, Chennai, Re-printed in 2015
2. Ganaratna-Mahodadhi by Vardhamana (flourished in 1140 A. D.), Ed. Julius Eggeling, 1879.
3. Kalidasa Bibliography, Ed. Prof. Satya Pal Narang, Nag Publishers, Delhi, 1975
4. Kalidasa Citations, by Dr. N. R. Subbanna, Meharchand Lachhmandas, Delhi, 1973.
5. Kalidasa : Complete Collection of the Various Readings of the Madras Manuscripts, (Vol. 1-4), Ed. T. Foulkes, Published by the Govt. of Madras, 1904
6. Kalidasa – Lexicon, Ed. By A. Scharpe', published by Rijksuniversiteit Te Gent, De Tempel, Templhof 37, BRUGGE (Belgie),1954
7. Le The'atre Indien, Sylvain Le'vi, Emile Bouillon, Libraire, Editeur, Paris, 1890.
8. Priyadars'ika by Harsha, Ed. A. V. William Jackson, Columbia University Press, New York, 1923
9. Sacontala; Or The Fatal Ring : An Indian Drama by Calidas, Translated from the original Sanscrit and Pracrit, by Sir William Jones, 1789.
10. Sakuntala – Prepared for the English Stage by Kedar Nath Das Gupta in a new version written by Laurence Binyon, with an Introductory Essay by Rabindra Nath Tagore, Its Inner Meaning, Published in Mecmillan & Co.Ltd., 1920. (Reprinted in 1937, 1944, 1945, 1947 & 1953)
11. The Prakrita_Lakshana OR Chanda's Grammar of Ancient Prakrit, (Part-1) Ed. A. F. Rudolf Hoernel, Calcutta, 1880
12. The Recognition of Shakuntala by Kalidasa, Ed. & Translated by Soma deva Vasu deva, Clay Sanskrit Library, New York University Press, 2006
13. The Text of Shakuntala, by Prof. Balavantaray Thakor, Bombay, 1922
14. The Vidushaka, by G. K. Bhat, The New Order Book Co., Ahmedabad, 1959.

(ग) **हिन्दी ग्रन्थः-**

1. अभिज्ञानशाकुन्तल – कृतिसमीक्षा से पाठसमीक्षा । वसन्तकुमार म. भट्ट, संस्कृत अकादेमी, उस्मानिया विश्वविद्यालय, हैदराबाद, 2010
2. अभिज्ञानशाकुन्तल का पाठपरामर्श । वसन्तकुमार म. भट्ट, आर्य गुरुकुल, माउन्ट आबु, 2016
3. कालिदास अपनी बात (भारतीय दृष्टि), श्री रेवाप्रसाद द्विवेदी जी, कालिदास संस्थान, वाराणसी, 2004

4. कालिदास परिशीलन, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, संस्कृत विभाग, हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर, 1988
5. कालिदास की समीक्षा परम्परा, सं. राधावल्लभ त्रिपाठी, हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर, 1988

(घ) पत्रिकाएँ / सामयिकों में प्रकाशित शोध-आलेखः--

1. एस. के. बेलवालकर (1962), "निसर्ग-कन्या शकुन्तला", कालिदास ग्रन्थावली, हिन्दी अनुवाद के साथ, परिशिष्ट भाग में प्रकाशित शोध-आलेख, प्रका. भारत प्रकाशन मन्दिर, अलीगढ, सं. 2011 (ई. स. 1962), तृतीय संस्करण, पृ. 59-69.
2. वसन्तकुमार (2010) म. भट्ट, "अभिज्ञानशकुन्तल – बंगालीवाचना की मौलिकता के समर्थक नवीन प्रमाण" । संस्कृत – विमर्श, (नवशृङ्खला), अङ्क – 4, राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, नव देहली, पृ. 147 – 160 (ISSN – 0975), 2010
3. वसन्तकुमार (2012) म. भट्ट, "अभिज्ञानशाकुन्तल में "अपि च" से सम्बद्ध संक्षेप एवं प्रक्षेप की पहेचान" ।, धीमहि ।, सं. डॉ. दिलीपकुमार राणा, चिन्मय इन्टरनेशनल फाउन्डेशन शोध संस्थान, एरणाकुलम्, अंक-3, 2012.
4. वसन्तकुमार (2012) म. भट्ट, "पाटण में संगृहीत शाकुन्तल की प्राचीनतर पाण्डुलिपि" ।, हैमप्रपा, हेमचन्द्राचार्य उत्तर गुजरात युनिवर्सिटी, पाटण, अंक-3, (2012) पृ. 200 से 213, (ISSN – 2250 – 3064)
5. वसन्तकुमार (2012) म. भट्ट, "अभिज्ञानशाकुन्तल के देवनागरी पाठ में संक्षेपीकरण के पदचिह्न" ।, नाट्यम्, सं. श्री राधावल्लभ त्रिपाठी, डॉ. हरिसिंह गौर युनिवर्सिटी, सागर, अंक-71-74 (पृ. 27 से 57)
6. वसन्तकुमार (2012) म. भट्ट, "अभिज्ञानशाकुन्तल में प्रतीकों से व्यञ्जित होनेवाला नाट्यकार्य" । संस्कृत विमर्श, (नवशृङ्खला), अङ्क – 7, पृ. 70 – 92, राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, नव देहली (ISSN – 0975 – 1769), 2012
7. वसन्तकुमार (2014) म. भट्ट, "हंसपदिका-गीत एवं भ्रमर का प्रतीक", संस्कृत मञ्जरी, (वर्ष-12, अंक-) दिल्ली संस्कृत साहित्य अकादेमी, दिल्ली, (पृ. 89 से 101)
8. वसन्तकुमार (2014) म. भट्ट, "अभिज्ञानशाकुन्तल के पाठविचलन की आनुक्रमिकता" ।, नाट्यम्, सं. श्री राधावल्लभ त्रिपाठी, डॉ. हरिसिंह गौर युनिवर्सिटी, सागर, अंक- 76, (पृ. 26 से 54)
9. वसन्तकुमार (2015) म. भट्ट, "अभिज्ञानशाकुन्तलम् : देवनागरी एवं दाक्षिणात्य वाचनाओं की पाठालोचना" ।, नाट्यम्, सं. श्री राधावल्लभ त्रिपाठी, संस्कृत विभाग, डॉ. हरिसिंह गौर युनिवर्सिटी, सागर, अंक- 77, (पृ. 33 से 58)
10. वसन्तकुमार (2015) म. भट्ट, "कुसुमशयना शकुन्तला : अभिज्ञानशाकुन्तल (अंक-3) के पाठविचलन का क्रम", संस्कृत विमर्श (नवशृङ्खला अंक-10), राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, दिल्ली, (पृ. 109 से 144) 2015

11. वसन्तकुमार (2015) म. भट्ट, "कालिदास एवं विक्रमादित्य" – नवोन्मेश । विक्रम, विक्रम युनिवर्सिटी, उज्जयिनी, कालिदास स्पेश्यल नंबर – 17, 2015

12. वसन्तकुमार (2015) म. भट्ट, "शारदा पाण्डुलिपियों में शकुन्तला के श्लोकों में वृद्धि-ह्रास का विश्लेषण " ।, संबोधि ।, सं. डॉ. जितेन्द्र शाह, एल. डी. इन्स्टीट्युट ओफ इन्डोलोजी, अहमदावाद, अंक-38, पृ. 50 से 69)

13. वसन्तकुमार (2016) म. भट्ट, "हेमचन्द्राचार्य के प्राकृत व्याकरण में अभिज्ञान-शाकुन्तलम्" ।, सम्बोधि । (अंक-39), सं. डॉ. जितेन्द्र बी. शाह, एल. डी.इन्स्टीट्युट ऑफ इन्डोलोजी, अहमदावाद, (पृ. 90 से 97) 2016

14. Belvalkar (1923) S. K.; The Application of a few canons of textual & Higher Criticism to Kalidasa's S'akuntala, Published in Asia Major, Leipzig – 2 (1), 1923, pp. 79-104.

15. Belvalkar (1925) S. K.; The Original Sakuntala, Published in Sir Asutosh Mookherjee Silver Jubilee Vol. 3, Orientia part-2, Calcutta, 1925, pp. 349 –359

16. Belvalkar (1929) S. K.; S'ringaric Eloboration in S'akuntala – Act-3, Published in Indian Studies in Honor of C. R. Lanman, Harvard University Press, 1929, pp. 187-192.

17. Belvalkar (1949) S. K.; Kalidasa's Abhijnanas'akuntala – it's Dramatic Setting, Published in Vikrama Volume, Scindia Oriental Institute, Ujjain, 1949, pp. 45 – 55.

18. Belvalkar (1950) S.K.; Entracte to Act-7, (= Natak and Nartan), by Bulletin of Deccan College Research Institute, Poona, Vol. 20, 1950, pp. 19-24.

19. Belvalkar (1969) S. K.; The Art of Text-editing and Textual Criticism in Sanskrit Literature, Published in Our Heritage, 1969, Vol. 17, pp. 41-49.

---- 888 ----